

आत्मानुशासन प्रवचन

तृतीय भाग

लक्ष्मीनिवासनिलयं विलीनविलयं निधाय हृदि वीरम्।
 आत्मानुशासनमहं वक्ष्ये मोक्षाय भव्यानाम्॥ १॥
 लब्धेन्धनो ज्वलत्यग्निः प्रशाम्यति निरिन्धनः।
 ज्वलत्युभयथाप्युच्चैरहो मोहाग्निरूत्कटः॥५६॥

आत्महितैषी आत्माओंपर अनुशासन इस आत्मानुशासन ग्रन्थमें शान्तिकी ओर झुके आत्मावों पर अनुशासन किया गया है। जगत्के जीव अशान्ति से भरपूर हो रहे हैं। यह मोहरूप अग्नि ऐसी उत्कृष्ट जाज्वल्यमान् है कि इस मोह-अग्निको विषयोंका ईंधन मिले तो यह बढ़ती है और विषयोंका ईंधन न मिले तो यह बढ़ती है यदि विषयोंका ईंधन न मिले तो इस मोह-अग्निसे सब दुःखी हैं। दुनियाकी अग्नि को यदि ईंधन मिले तो जले, ईंधन न मिले तो बुझ जाय, किन्तु मोहाग्निको तृष्णाके विषयका ईंधन मिले तो जले, न मिले तो जले, इसी प्रकार यह जीव दुःखी है। किन्हीं विषयोंकी इच्छा हो, धन वैभवके संचयकी अभिलाषा हो तो इस तृष्णामें यदि वैभव मिल गया तो तृष्णा बढ़ेगी। 100 से हजार हों, लाख हों। और न मिले वैभव तो वैभवके न रहनेके कारण दुःखी है। अब और क्या करे? मिले तो दुःख, न मिले तो दुःख।

संतान व धनके सद्भाव व असद्भाव दोनोंमे क्लेश जैसे जिसके संतान नहीं होती, वे संतानके कारण दुःख महसूस करते हैं और जिनके संतान हो जाय, वे संतानके कारण दुःख महसूस करते हैं। आराम तो कहीं नहीं भोग पाता। जो धनी पुरुष हैं वे तृष्णा कर करके दुःखी होते हैं और जो निर्धन पुरुष हैं वे निर्धनताका ही दुःख मानते रहते हैं। आनन्द तो एक सम्यग्ज्ञानमें है यह बात पूर्ण निर्णय करके रखलो। बिना सम्यकज्ञानके कैसी भी कोई स्थिति हो, किसी भी स्थितिमें यह शान्ति नहीं पा सकता।

यशकी तृष्णाका क्लेश यशके पदोंकी बात देख लो। कोई मनुष्य सबसे पहिले म्युनिसिपिल्टीके मेम्बर होनेका बड़ा चाव रखता है। इससे आगे उसके मनमें इच्छा कुछ नहीं है और हो गया सदस्य तो बड़ा सुख मानता, समारोह मनाता। पर यह सुख बहुत दिनों तक नहीं ठहरता। थोड़े ही दिन बाद उसकी इच्छा और बढ़ने लगी। अब और ऊंची देशकी कमेटियोंके मेम्बर बने, प्रेसीडेन्ट बने, नेता बने, मिनिस्टर बने। बन भी जाय तो वह यह चाहता है कि इस विश्वमें जितने राज्य हैं, उनमें जो एक परिषद है उसका नेता बनूँ और जो कुछ भी यह बनता है, उस उसके कार्यको वह नहीं संभाल पाता है। चाहे छोटा कार्य हो, चाहे बड़ा कार्य हो, व्यग्रता, व्याकुलता ही बनी रहती है।

धनकी तृष्णाका क्लेश ऐसी ही बात धनकी है। खोंचा लगाने वाले लोग 100) का सामान लेकर खोंचा लगाते हैं और उससे अपने घरका गुजारा करते हैं। उनकी दृष्टिमें 100) ही बहुत हैं। यह सोचता है कि 100) हो जायें तो खुदके पैसोंसे माल खरीद लूँ, आरामसे माल मिल जाय, उधार न लेना पड़े, फिर तो कोई कष्ट नहीं है, आरामसे दिन कटेंगे, पर 100) हो जाने पर उसकी दृष्टि ओर आगेकी हो जाती है। अब बड़े व्यापारकी इच्छा है। हजारकी धुन हो गयी, हजारसे लाख। इस तरह यह सब धुन बढ़ती जाती है। धनमें भी यह जीव तृष्णासे दुखी है। अब यश बढ़े, पद मिले।। यों यशकी भी तृष्णा, बहुत बढ़ती है, कहीं ठिकाना नहीं होता। यह तृष्णारूपी अग्नि इतनी विकट है कि इसे ईंधन मिले, विषय वैभव मिले तो इसके कारण समस्त जीवोंको जलना पड़ता है और न मिले तो झूर-झूर कर इसे जलना पड़ता है।

देवगतिमें क्लेश बतावो देवगतिमें कोई जीव जन्म लेता है तो देव होने पर अब उसे क्या कष्ट रहा? हजारों वर्ष में भूख लगे और मन में चिन्तन करते ही कंठसे अमृत झड़ जाय तो भूख शान्त हो गयी। कई कई दिनोंमें श्वांस निकले, इतना उनमें बल है। जैसे अपन लोगों को एक मिनटमें एक बार श्वांस निकलती है ऐसे ही देवोंके 1५-1५ महीनेमें श्वांस निकलती हैं, वे इतने बलिष्ठ हैं, ठंड गरमीकी बाधा ही नहीं है। उन्हें इष्ट देवांगनाएँ मिलती है, नियोग है मनके अनुसार, जहां चाहे क्रीड़ा करते हैं, विहार करते है। कोई कमी तो नहीं है, लेकिन दूसरे देवोंकी बड़ी ऋद्धि देख देखकर, झुर-झुर कर व्याकुल रहा करते हैं।

धर्मश्रममें क्षोभ अब धर्मके कार्यमें देखिये, जो धर्मका कार्य शत प्रतिशत सही है उसमें तो तृष्णा रहती ही नहीं, बुझ जाती है, किन्तु धर्मकी धुनसे धर्मका कार्य तो करते जा रहे हैं, कुछ-कुछ उस मार्ग पर भी चल रहे हैं, पर समाधि इनके प्रकट नहीं हुई तो वहां भी तृष्णा बढ़ती है। अब हमने एक पुस्तक सीख ली, अब इसके आगेकी सीखेंगे। कुछ भी नियम लिया है तो अब इसके आगे का नियम लेंगे। उस प्रसंगमें भी तृष्णाका कुछ रूप चलता है। यह रूप जब तक है, है भला रूप यह, कमसेकम अशुभभावसे बदलकर शुभ भावके लिए तो तृष्णा जगी है। आगे कभी इसहीके प्रसादसे आगे बढ़ बढ़कर जिस क्षणमें धर्मभाव ही प्रकट होगा उस क्षण यह तृष्णा फिर बुझ जायगी। सम्यग्ज्ञानरूपी जलमें ही ऐसी सामर्थ्य है कि इस विकट तृष्णा अग्निको शान्त कर सकती है।

तृष्णाकी चंचलता यह तृष्णा भी ऐसी सम्मिश्रित रहती है कि यह किसी एक बात पर टिकती नहीं है। थोड़ी देरमें यशकी तृष्णा हुई और थोड़ी ही देरमें धनकी तृष्णा हुई, थोड़ी ही देरमें परिजनकी तृष्णा हुई, यों तृष्णाके वश होता हुआ यह जगत् निरन्तर दुःखी रहता है। आनन्द शान्ति पा लेना हम आप सबके सामर्थ्यकी बात है और चाहें तो अभी कर सकते हैं। यद्यपि बहुत बार कुछ शान्तिका उद्यम करें तो भी वह शान्ति स्थिर नहीं रह पाती, क्योंकि ऐसी ही योग्यता है, हम ऐसी ही वासनावोंसे वासित हैं कि फिर अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। लेकिन करना भी तो यही पड़ेगा। दुकानमें, व्यापारमें टोटा भी पड़ जाय, मगर करना तो वही पड़ता है। उसमें तो हिम्मत नहीं

हारते। किसी वर्ष कुछ नुकसान हो गया तो उसे आप क्या बदल लेंगे? अरे करना तो पड़ेगा ही। ऐसे ही हम शान्तिका उद्यम करते हैं और उसमें सफलता नहीं मिलती है। तो हमें यह नहीं सोचना है कि हम अब इस उद्यमको न करेंगे। शान्तिकापुरुषार्थ बेकार है। चाहे कितनी ही बार फिसल जायें, पर निर्मोह और निष्कषाय होनेका पुरुषार्थ करना ही चाहिए।

शान्तिका प्रयोग्य उपाय इस तृष्णारूपी अग्निको हम बाहरी उपायोंसे शान्त नहीं कर सकते हैं। हमारे सुखका उपाय सम्यग्ज्ञान ही है। पूर्वकालमें जिन-जिन महापुरुषोंने शान्ति प्राप्त की है, उन सबने इन ही उपायोंसे शान्ति पायी है। प्रथम तीर्थकर श्री ऋषभदेव हुए हैं, उनके इन्द्र सेवक थे। मनुष्यजन उनको प्रभुके रूपमें मानते थे। घर परिवार राज्य सब से सम्पन्न थे। उन्होंने गृहस्थी का भी मौज लिया। बच्चा बच्चीके लालन पालनमें भी उन्होंने अपना दिल बहलाया, पर ये सब बाह्य सुख हैं। वे बड़ी समृद्धिके बीच रहे, पर कहीं शान्ति न मिली, इसीलिए सर्व साम्राज्य त्यागकर इस सम्यग्ज्ञानका ही उन्होंने आदर किया। कौरव पांडवोंका तो बहुत बड़ा युद्ध हुआ इस राज्यलिप्साके पीछे। अन्तमें कौरवोंके पास कुछ न बचा और पांडवोंको भी सब असार जंचने लगा, तब सब कुछ त्यागकर वे निर्ग्रन्थ हो गए। सारा वैभव जहां का तहां ही रह गया।

ज्ञानसाधनाका प्रसाद इस वैभवके पीछे बड़े विवाद कलह होते रहते हैं। इस विषयवैभवके कारण यह मोहकी अग्नि बुझ नहीं सकती। यह सारा जगत् विषयोंके दावानलसे जल रहा है। इस दावानलको बुझाने में समर्थ ज्ञानका घन (मेघ) ही समर्थ है। ज्ञान-वर्षा हुए बिना तृष्णाकी आग बुझ नहीं सकती। गृहस्थावस्थामें कर्तव्य सभी कर रहे हैं और इस कारण लोगोंका सम्बन्ध भी रखना पड़ता है तथा वहां पोजीशन, धनसंचय सबकी आवश्यकता होती है। लेकिन साथमें यह मंत्रभी ध्यानमें रक्खें कि जहां हम २३, २३॥ घंटा इन्हीं बातोंमें गुजारते हैं तो १ आध घंटा तो इस विशुद्ध धर्मकी सुध लिया करें और सबसे न्यारे अकिञ्चन ज्ञानानन्दस्वरूप परिपूर्ण निज अंतरस्तत्व की सुध लिया करें तो यह जीवन भी सफल होगा, आपका शेष समय भी संतोषसे व्यतीत होगा। हम लोग क्षेत्रवंदना के निमित्त धर्मसाधना बनाते हैं, पूजा पाठ आदि भक्तिके निमित्तसे धर्म साधना बनाते हैं, हम यदि किसी खास-खास प्रसंगोंपर कोई एक-एक नियम, एक-एक संकल्प अपना बढ़ाते और निभाते चले जायें तो कुछ समयमें हम बहुत कुछ अपनेमें प्राप्त कर सकेंगे। हमें इस अवसर पर यह निर्णय बना लेना चाहिए कि हमारा एक आध घंटा प्रतिदिन नियमित धर्मसाधनामें व्यतीत हो। ज्ञानार्जन तत्त्वचिन्तन जिसमें अपने आत्माकी सुध आया करें।

धर्मसाधनामें प्रमाद का कर्तव्य सबसे न्यारा आनन्दस्वरूप यह मैं आत्मा प्रभु स्वभावतः स्वयं समर्थ सत् हूं। आनन्द इस ही में है, बाहरमें आनन्द नहीं मिलता। सब पदार्थ भिन्न हैं, अहित हैं-ऐसी चिन्तनाके माध्यमसे हम अपना एक घंटा प्रतिदिन धर्मसाधनामें लगायें तो हमारा यह दुर्लभ नर-जीवन सफल होगा। बाकी जो २३ घंटा समय है उन समयोंमें भी निराकुलता और शान्ति रहेगी, बुद्धि विशेष काम करेगी, लोगोंसे लोकव्यवहार भी सुन्दर रहेगा। यदि एक घंटा सविधि धर्मसाधना,

में व्यतीत कर दिया तो इसके प्रसादसे हमारा रात दिन का समय भी आनन्दमें व्यतीत होगा। इसे न भूलना चाहिए गृहस्थ पदवी में। जैसे नारकादिक गतियोंमें पाये हुए दुःख का स्मरण अन्तरमें एक वेदना उत्पन्न कर देता है, ऐसे ही पाया हुआ विशुद्ध ज्ञानानुभव का स्मरण अलौकिक आनन्द उत्पन्न कर देता है। हम आपके पास है क्या चीज, एक स्मरण, उपयोग, ज्ञान, इनको हम किस ओर लगायें, बस इसका सही निर्णय बनाना प्रयत्न करना यह विवेक है। हो अवश्य ऐसा साहस कि हम जैसे एक घंटे के समयमें एक अच्छी पद्धतिसे धर्मसाधनाके लिए बैठे हैं तो जो कुछ हैं वैभव, परिजन, कुटुम्ब, मित्र, बस सबको उपयोगसे हटाकर अलग करदें, इतनी हिम्मत हो सके। केवल थोड़े समयका भी वहां धर्मध्यान एक अनूठी पद्धतिसे बनता है।

बेतुकी धर्मसाधना भैया! बेतुकी मनमानी पद्धतिसे तो बहुतसी महिलायें एक साथ चार पांच धर्मसाधनाके काम कर लेती हैं। बच्चेको भी खिला रही हैं, पाठ भी करती जा रही हैं, पूजा भी कर लेती हैं, माला भी जपती जाती हैं, स्वाध्याय भी सुनती जाती हैं। यों अनेक काम कर लेती हैं, पर आप बतावो क्या वहां कुछ भी धर्म किया गया? गृहस्थ भी चलते हैं, मंदिर दर्शनको तो रास्तेमें विचारते हैं कि फलां रास्ते से चलें, बाजार में साग-भाजी खरीदें, फिर मंदिरमें दर्शन कर लेंगे अथवा अमुक वकील साहब मिल जायेंगे तो अपना काम कर लेंगे। यों अनेक बातें मनमें रक्खे हुए मंदिरमें ध्यान कर रहे हों तो वह कैसा ध्यान रहा? चाहिए तो यह था कि मंदिरमें आयें तो जूता भी न पहिनकर आयें। एक पंडितजी ने बताया था कि ऐसे लोगोंकी यों स्तुति होती है। एक श्लोक है त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव। सामने भगवान् की मूर्ति है, पीछे मंदिरका दरवाजा है, जहां पर इस भगतके जूते रखे हैं। अब ध्यान दोनों ओर रहता है, क्योंकि जूते नये हैं ना, सो वह थोड़ी देर जूतोंकी ओर देखकर कहता है त्वमेव माता फिर भगवान् की ओर देखकर कहता है च पिता त्वमेव, फिर जूतोंकी ओर देख कर कहता है त्वमेव बंधुश्च, फिर भगवान्की मूर्तिकी ओर देखकर कहता है सखा त्वमेव। यह हालत होती है। जो इतना साहस बनाकर बैठ सकता है कि इस आध घंटेमें मुझे किसी की बात मनमें नहीं रखना है, वही प्रभुदर्शन कर सकता है।

धर्मसाधनामें आन्तरिक स्वच्छताकी प्राथमिकता जो स्थिति है वह तो मिट न जायेगी, अगर आप आध घंटे सबका ख्याल न रक्खें। तो जो कुटुम्बीजन हैं उनमें मोह न जगे, उनका ख्याल न रक्खें आध घंटे उपयोगमें। धर्मध्यानके अवसर पर भी निरन्तर उन्हें बसाया जा रहा है यों धर्मसाधना न होगी। किसी बड़े आफिसरको अपने घरमें आप बुलावें तो घर की सफाई स्वच्छता और सजावट आप कितनी करते हैं और जब अपने हृदयमें भगवान् को बुलायें और गंदगी रक्खें तो कैसे आपके हृदय में विराज सकते हैं। गंदे घरमें चाहे नेता आजाय, पर गंदे हृदयमें भगवान् नहीं विराज सकते हैं। तो एक आध घंटे अपना स्वच्छ हृदय बनाकर धर्मसाधना करें, आनन्दानुभव करें, यहां यही उत्कृष्ट आनन्द है।

किं मर्माण्यभिदन्न भीकरतरो दुष्कर्म गर्मुद्गणः।
 किं दुःखज्वलनावली विलसितैर्नालेढि देहश्चिरं॥
 किं गर्जद्यमतूर्यभैरवरवान्नाकर्णयन्निर्णायं॥
 येनायं न जहाति मोहविहितां निद्रामभद्रां जनाः॥५७॥

मर्मभेदक प्रसंग इस जीव पर कितनी तो विडम्बना है, विपत्ति है, फिर भी यह मोही जीव नींदको नहीं छोड़ता। पापकर्मरूपी मुगदर इस जीवके मर्मको भेद रहा है, फिर भी अपने चित्तमें भय नहीं मानता। जीवन में रात दिन इस जीवके शांतिका विघात हो रहा है। कौन मनुष्य कब तक शांत रहता है? दिनमें, रातमें, दुकानपर, घरपर, गोष्ठीमें, समाजमें और देशमें कहीं भी तो इसे चैन नहीं है। पापकर्म के उदय ऐसे सता रहे हैं, कुछसे कुछ कल्पनाएं बनाकर यह जीव व्यर्थ ही के दुख अपने ऊपर लेता रहता है।

दुख और शांतिका मार्ग भैया! किसी दुखमें डूबना हो तो उसके लिए भी बहुतसी तरकीब हैं और किसीको शांति पानी हो तो शांतिकी भी तरकीब हैं। किसीकी धनहानि हानि हो जाए तो जिस धनकी हानि हुई है, उस पर दृष्टि रखकर, उसकी तृष्णा बनाकर दुख भी लादा जा सकता है और अपने अनन्त महिमावान् प्रभुके समान अपने स्वरूपका चिन्तन किया जाय, यह मैं तो स्वतः ही सबसे न्यारा परम शक्तिमान् पदार्थ हूं, उसका कहीं भी तो बिगाड़ नहीं है, सारे पदार्थ मुझसे बाहर हैं, उनकी जैसी परिणति है, उनकी तो बात जो भी हो सो हो, उसमें कौनसा बिगाड़ आया? यदि इस ओर चित्त जाये तो लो शान्ति मिल गई, परन्तु मोह पापका जब उदय है तो शान्तिमय विचार नहीं बनते और क्लेशके लायक विचार बनाते हैं।

सांसारिक सुखमें दुःखकी व्यापकता भैया! संसारमें मौज भी हो किसी बातकी तो भी वह क्लेश का ही साधन है। इस सांसारिक सुखमें भी दुःख भरा हुआ है, क्योंकि यह संसारसुख परवस्तुका विचार करके होता है, वे परवस्तु मेरे आधीन नहीं, सांसारिक सुख बड़े पराधीन हैं। कर्मोदय अनुकूल हो, पुण्यका उदय हो तो विषयसाधनोंका योग मिलेगा। इतने पर भी ये समागम, ये साधन कल तक भी रहेंगे, इतना भी कोई विश्वास नहीं है। हम अंदाज तो ऐसा ही करते हैं कि जो मेरी सम्पदा है, वैभव है, यह न बिछुड़ेगा, कैसे बिछुड़ेगा? पर जिनका भी वैभव बिछुड़ता है वह कहकर बिछुड़ता है क्या? जो भी समागम प्राप्त है वे विश्वास के योग्य नहीं हैं। ऐसी तो संसारकी विकट परिस्थिति है, तिस पर भी यह जीव चेतता नहीं। मोहकी निद्रामें ही अचेत रहा करता है, और गर्जना करते हुए यह यमराज जिनकी भेरीमें भयंकर शब्द हैं उनकी भी यह नहीं सुनता। रोज रोज देखते हैं अनेक बालक, जवान और वृद्ध लोगोंको, यों ही गुजर जाते हैं। इतनी अनिष्ट मृत्यु देखते भी जाते हैं और खुद यह यह अनुभव नहीं करते कि यह मैं इसी तरहका अकिञ्चन हूं।

आत्मविपदाका अनीक्षण कोई पुरुष जंगल में किसी वृक्ष पर चढ़ा हुआ हो और जंगलमें चारों ओर आग लग जाये तो वह मूर्ख उस पेड़पर चढ़ा हुआ रौद्रध्यान करेगा, मौज मानेगा दूसरे जलते

हुए जीवोंको देखकर। लो यह खरगोश मरा, लो यह हिरण मरा ऐसा देख देखकर वह खुश होता है और आग चारों ओर से बढ़ती हुई चली आ रही है, फिर भी यह मूरख उस पेड़ पर चढ़ा हुआ खुश हो रहा है। उसे अपने आपका कुछ भी ख्याल नहीं है कि यह आग बढ़ती हुई आयेगी तो मुझे भी भस्म कर देगी। ऐसी ही इस संसारकी स्थिति है। ये संसारी जीव विषयसाधनों में ही मस्त हो रहे हैं। अकल्याणरूप जो मोह है उसमें उत्पन्न हुई जो बेहोशी है, निद्रा है उसको यह नहीं छोड़ता है।

मोहकी विकट निद्रा किसीको नींद आ रही हो, उसे कोई मुदगरसे मारे तो वह तो बड़ी जल्दी जग जाता है। कभी अग्नि लग जाय कपड़े वगैरहमें तो जल्दी जग जाता है, कोई बड़ी भयंकर दशा हो तो जल्दी जग जाता है, किन्तु यह मोह नींदमें मस्त हुआ मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव इसे पापकर्मके मुदगर जीवके अन्तःमर्मको भेद रहे हैं, फिर भी यह मोहनिद्रा को नहीं छोड़ता। दुःखकी आग लगाये हुए चल रहा है। यह जीव दुःख क्लेश की ज्वालामें है फिर भी यह मोहकी नींदमें ही बेहोश हो रहा है। मृत्युके भयंकर शब्द भी सुनाई दे रहे हैं, लेकिन यह अज्ञानी जीव अपनी मोहकी नींद नहीं छोड़ रहा है। जब तक इस मोहनिद्राका विनाश न होगा तब तक शान्तिके पात्र हम नहीं हो सकते।

आनन्दका उपाय भैया! यहाँ आनन्द काहेका? परवस्तु में मोह है उसका सारा क्लेश है, इतनी ही तो जड़ है, क्लेशकी और क्लेश मिटाने का उपाय इतना ही तो है कि निजको निज परको पर जान लें। दुःखका उपाय इतना ही है कि परको अपना लिया जाय कि यह मेरा है। जितना इस मुझ आत्माका स्वरूप है उतनी ही अपनी दृष्टि बन रही है। मैं यह हूँ ऐसी अनुभूति हो, यही है क्लेश मिटानेका उपाय। ऐसी श्रद्धा हो, इसी का नाम है सम्यक्त्व। जब तक सम्यक्त्व नहीं जगता तब तक हम शान्ति का उपाय बना ही नहीं सकते। जब तक अज्ञान बसा हुआ है तब तक अशान्ति ही है। जहाँ अज्ञान है, मोह है, वहाँ क्लेश ही है।

आत्माकी सुधमें लाभ भैया! जरा अपने आत्माकी सुध लो। रात दिनमें यदि आध घंटा भी अपने आपकी सुध ली तो लाभ ही लाभ है। कर्तव्य यह है सबका कि सुबह और शाम इन दोनों समयोंमें शास्त्र स्वाध्याय चिन्तन आदिके द्वारा अपने आत्माकी सुध लेते रहें। दिन भर का भूला हुआ शामको अपनी सुध लेता है और रात भरका भटका हुआ सुबह सुध लेता है। जो अपनी सुध नहीं रखता वह मायाजालमें कुछ इज्जत पाकर, वैभव समृद्धि पाकर कुछ मौज भी मान ले तो भी वह अज्ञानी है।

सर्वत्र यशकी व्यर्थ वाञ्छा यह लोक बहुत विशाल है। समस्त लोकके आगे यह दो हजार मीलकी पृथ्वी जिसमें हम अपनी कीर्ति बढ़ानेकी इच्छा रखते हैं, इसकी माप इतनी भी नहीं है जितनी माप बड़े समुद्रमें एक बूँदकी है। अरे जब समस्त लोकमें हमारा यश नहीं फैल सकता तो जरासी जगहमें जो समुद्रमें एक बूँद बराबर भी नहीं है, इतने में अपने नाम इज्जतकी धुन बनाकर यह अपना दुर्लभ मनुष्य जीवन बिगाड़ रहे हैं। इस मनुष्यजन्मका लाभ तो यह था कि धर्मसाधनासे संसारके संकट सदाके लिए मिटा लेते, पर मोहविषयोंमें ही इस नरजन्मको लगाया। इसका अर्थ यह

है कि जैसे अनन्त जन्म पाये और उन बीते हुए जन्मोंका कोई फल नहीं पाया, जीवन भर विडम्बनाएँ सहीं, अन्तमें मरण किया, फिर नया देह धारण किया, जिस प्रकार जन्ममरण की परम्परा अब तक चली आयी है, उसी प्रकार इस जीवनको भी व्यर्थ ही गवाँ दिया, लाभ कुछ भी नहीं उठा पाया। प्रकृत्या इस जीवमें ऐसी हठ बनती है कि जहां मन राजी होता है उस कामको अवश्य करता है। इसका मन यश के लिए राजी होता है तो यशके काम करता है। कोशिश तो वह यही करता है कि मेरा नाम सर्वत्र फैले और सदाके लिए फैले, पर ऐसा हो कहां सकता? बड़े-बड़े तीर्थकर प्रभुका भी ऐसा नहीं हुआ।

सर्वदा यशकी व्यर्थ वाञ्छा कौन जानता है कि अतीत कालके २४ तीर्थकरोंका नाम क्या है? उनका नाम थोड़े ग्रन्थों में लिखा है सो बांचकर सुना दें किन्तु उससे पहिलेके चौबीस तीर्थकरोंका नाम क्या है? कुछ पता नहीं। वर्तमान तीर्थकरोंमें भी इनेगिने दो तीनका, कोई-कोई नाम ले लेते हैं, तुझे अपना नाम फैलानेकी मनमें है तो ऐसा कर कि अनन्त काल तक तेरा नाम चले। हो कुछ क्वत तो करके दिखा। जब तेरा नाम चंद ही वर्षोंमें मिट जायेगा तो देख अनन्त कालके सामने ये चंद वर्ष कोई मूल्य नहीं रखते। दुनिया भरके जितने समुद्र हैं उन सब समुद्रोंके मुकाबले जैसे एक बूंद कुछ कीमत नहीं रखती है, ऐसी ही अनन्त कालके सामने यह थोड़ा सा १०० वर्ष का समय कुछ मूल्य नहीं रखता है। तू यशकी वाञ्छा त्याग दे।

सर्व जीवोंमें यशकी व्यर्थ वाञ्छा यह जीव चाहता है कि मेरा नाम बहुतसे पुरुषोंमें हो जाय। ठीक है, करले कोशिश। क्या ऐसा हो सकेगा कि सभी पुरुषोंमें उसका नाम हो जाये? कभी न होगा और इस थोड़ी सी जगहके मनुष्योंमें नाम होता है तो कुछ में नाम होता है, कुछमें बदनाम होता है, सबकी यह बात है। कोई यश गाता है तो कोई अपयश गाता है। तू यश और अपयश दोनोंकी परवाह मत कर। जो आत्महितके लिए मार्ग निर्णीत किया है अटल होकर उस मार्गपर चल। मानलो कदाचित् बहुतसे मनुष्योंमें इज्जत नाम हो गया तो अब पशु पक्षियोंमें तो तेरा नाम नहीं चला। कदाचित् कल्पना कर लो कि सब मनुष्य मेरा नाम गाने लगे तो अभी ये गाय, भैंस, घोड़ा, गधा ये तो तेरा नाम नहीं गा रहे। इनमें भी नाम जमा ले तब तारीफ है। क्या ये जीव नहीं हैं? जैसे मनुष्य मायारूप है, इन्द्रजाल है, वास्तविक पदार्थ नहीं है, ऐसे ही ये भी हैं, उन मनुष्योंमें नाम चाहते हो। इन गधा घोड़ोंमें भी नाम हो जाय तब तारीफ है, पर ऐसा कभी हो नहीं सकता। अनन्त जीव हैं। सभी जीवोंमें नाम बने तो नाम फैलाने का यत्न करें। थोड़ीसी अपनी गोष्ठीके अथवा स्वार्थी जनोंने कोई नाम गा दिया, इतनेमें बह गए तो फिर हम शान्तिके पात्र न रह सकेंगे।

न कुछकी वाञ्छामें बरबादी भैया! जब सब क्षेत्रोंमें, सब कालमें, सब जीवोंमें नाम नहीं चल सकता है तो थोड़ेसे यशकी चाह करके अनन्त महिमानिधान इस आत्मभावना को क्यों तिरस्कृत किया जाय? मोहकी नींद छूटे तो शान्तिका मार्ग मिलेगा अन्यथा संसारमें भटकना ही बना रहेगा। जिनपर विश्वास बनाया है। स्त्री पुत्र मित्र धन वैभव ये कुछ काम न आयेंगे, इनको छोड़कर जाना

ही होगा। कोई बहुत बड़ा धनिक है, करोड़पति है, बड़े उसके मित्रजन हैं, परिवारजन हैं, आज्ञाकारी हैं, किन्तु मरण समयमें तो जो कपड़े कमीज बनियान आदि पहिने होगा वह तक भी साथ न जायेगा। केवल किया हुआ कर्तव्य करतूत ही साथ जाती है। यहां का समागम वैभव यह कुछ भी मदद नहीं दे सकता है। बस इस प्रकारकी संसारकी स्पष्ट स्थिति है, किन्तु यह मोही जीव अपने मोहकी नींद को भंग नहीं करता है।

चेतावनी हे आत्मन्! चेत और सावधान बन, अपने आप पर निर्भर रह। ज्ञानभावना ही सब कर्तव्योंमें, तत्वोंमें, पुरुषार्थमें सार है। भेद-विज्ञान करके अपने आपमें ऐसी भावना बनाएँ कि मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप मात्र हूँ, इसके बाहर मेरा कुछ वैभव नहीं। केवल ज्ञान और आनन्द जो मेरा शाश्वतस्वभाव है, वही मेरी समृद्धि है, इससे बाहर मेरी कुछ चीज नहीं है। यह भीतरमें श्रद्धा रहे, चाहे करना कुछ पड़ रहा हो, अन्तरंगमें सच्ची श्रद्धा होगी तो निराकुलता रहेगी, आनन्द पानेके अधिकारी रह सकेंगे। इससे अब महत्त्व दें शुद्ध रत्नत्रयधर्मको, बाहरी जड़ पदार्थोंको महत्त्व न दें। मेरी आत्मा स्वयं आनन्दस्वरूप है, इसका आलम्बन करेंगे तो आनन्द ही प्रकट होगा। एक इस चैतन्यस्वभावी आत्मस्वरूपका आलम्बन करना हम सबको योग्य है। अब यत्र तत्र श्रद्धा बिगाड़कर संकट न सहें। कठिनतासे आज यह नरजीवन पाया है, तो ज्ञानार्जन, सत्संग और गुरुसेवा करके इन सब गुणोंके माध्यम से अपने आपमें एक शुद्ध अविचल ज्योतिका अनुभव करलो।

मोह परिहारका अनुरोध भैया! इतनी तो विपदा लगी है इस संसारी प्राणी के पीछे, पाप कर्मोंकी मार चल रही है, दुःखकी अग्निमें झुलसा जा रहा है। यह मरा, वह मरा, इस प्रकारकी मरनेकी आवाजें भी सुनी जा रही हैं, फिर भी यह व्यामोही जीव मोहकी निद्राको नहीं तज रहा है, यह एक विषाद की बात है। आर्तध्यान दुखका कारण होता है। इसी प्रकार रौद्रध्यान भी आत्मा के क्लेशका कारण होता है। ये दुर्ध्यान छूटें, ज्ञानभावना जगे, समाधिके लिए उत्कण्ठा बनी रहे और इसके लिए यथाशक्ति पुरुषार्थ बनाये रहें तो इस धर्मसाधनसे हम अपना जीवन सफल किया समझें। बाकी तो सब खाया, खोया बह गया, ऐसी स्थितिकी बात है। इस छंदमें यह शिक्षण दिया है कि तू मोहकी नींदको तज और अपने आपमें अपने ज्ञानप्रकाशका अनुभव कर।

तादात्म्यं तनुभिः सदानुभवनं पापस्य दुष्कर्मणो।

व्यापारः समयं प्रति प्रकृतिभिर्गाढं स्वयं बंधनम्॥

निद्रा विश्रमणं मृतेः प्रतिभयं शश्वन्मृतिश्च ध्रुवम्।

जन्मिन् जन्मनि ते तथापि रमसे तत्रैव चित्रं महत्॥५८॥

शरीर सम्बन्धका महाक्लेश हे जन्म धारण करने वाले संसारी जीव! इस संसारमें कितना घोर दुख है? तो भी तू इस संसारमें भी रमण करता है, यह महान् आश्चर्यकी बात है। सर्वप्रथम तो महाक्लेश का कारण यह है कि तेरे आत्माका शरीरसे सम्बंध है। तो यह आत्मा जैसे स्वयं सत् है और समस्त परद्रव्योंसे न्यारा है ऐसे ही अलग होता है तो कोई क्लेश न था। जो ऐसे अलग है

उनका ही नाम तो सिद्ध है। सिद्ध भगवान् शरीरसे भी रहित है, कर्मोंसे भी रहित हैं और रागादिक भावोंसे भी रहित हैं। जैसे केवल यह अपने आप आत्मा होता है। कैसे रह गया है? वह सिद्ध भगवत भव्य पुरुषों द्वारा वंदनीय है, उनकी उपासना करके योगीश्वर अपना उत्कृष्ट ध्यान बनाया करते हैं और निर्वाणको प्राप्त करते हैं।

विविक्तभावनाका बल प्रथम तो क्लेश का कारण यह है कि शरीरमें फंसे हुए हैं। बड़े-बड़े योगीश्वरों पर कोई ऐसा भी विपदा आये कि जिसमें प्राण भी जा रहे हों। जैसे सिंहने आक्रमण किया, शत्रु तलवार मार रहा हो, ऐसी भी स्थितिमें योगीश्वर जरा भी नहीं घबड़ाते हैं, न ही चिंता लाते हैं और परम समता रसमें मग्न हुए प्राण छोड़कर सद्गतिको प्राप्त होते हैं। यह बल उनमें कैसे प्रकट हुआ? इस बलके प्रकट होनेका कारण ज्ञानभावना है। वे जानते हैं और अनुभव भी कर रहे हैं कि मैं तो केवल ज्ञानस्वरूप हूँ, शरीरसे तो न्यारा हूँ ही, इसका सम्बन्ध तो दुखका देने वाला है, मैं इसका सम्बन्ध चाहता ही नहीं हूँ। मेरी वही स्थिति हो, ऐसी तो उनकी भावना बनी हुई है। फिर वे शरीरके वियोगमें प्राणघातके समय क्यों घबड़ाएं? जितने भी कष्ट आ रहे हैं, वे इस देहके सम्बन्धसे आ रहे हैं।

केवल रहनेमें क्लेशका अभाव हे हितार्थी आत्मन्! इस देहको चित्तमें न विचारो, अपनी इन्द्रियोंको संयत करके और विशेष करके आंखों को बंद करके अपने आपमें कुछ भीतर निरखो, जहां केवल एक कुछ उजालासा और बादमें कुछ ज्ञान ज्योतिसी अनुभवमें आएगी। इतनेमें यह मैं हूँ, ऐसा स्वीकार करके फिर चिंतन करिये कि यदि मैं केवल ज्ञानप्रकाशमात्र ही रहा होता और शरीरका सम्बन्ध न होता तो मुझे कोई आकुलता ही न थी। लोग भूखके दुखसे तड़फते हैं, यह भूख क्यों लगी है? शरीरका सम्बन्ध है, इसलिए लगी। प्यास, ठण्ड गरमीके रोग आदि सब वेदनाएं क्यों होती हैं? शरीरका सम्बन्ध है, इसलिए हुआ करती हैं। यहां तक कि किसी घटनाके कारण अपमान सम्मान समझते हैं। अपमान समझकर दुखी होना या नामवरीकी चाहका क्लेश करना आदि सब दुःख क्यों होते हैं? शरीरका सम्बन्ध है और इस शरीरको निरखकर ऐसा मान रक्खा है कि यह मैं हूँ इस बुद्धि से फिर दुःख होने लगता है।

विदेह होने की भावना हे भगवन्! मेरा कब ऐसा समय आये कि इस शरीरसे भी मेरा छुटकारा हो जाए? इस शरीरसे छुटकारा हो गया और अगले भवमें दूसरा शरीर मिला तो इससे फायदा नहीं है। सदाके लिए यह शरीर छूट जाय, इसका सम्बन्ध न रहे, यही भावना भाइये, यही धर्मका पालन है। यह बात यदि मनमें जग गई या समा गई तो समझ लीजिए कि यहीं से धर्मपालन है और आप फिर कृतार्थ हो गए। फिर आपको कुछ भी जरूरत नहीं है। धन वैभव तो प्रकट भिन्न है, यह रहे अथवा न रहे, कैसी भी स्थिति हो, यह तो अपने स्वरूपके कारण न्यारा ही चमक रहा है, फिर बाह्यपदार्थोंसे क्या सम्बन्ध है? मैं आत्मा केवल अपने आपमें ही नित्य प्रकाशमान हूँ। लौकिक वैभव समृद्धिकी चिन्तामें क्यों अपने रात दिन गँवाता है? यह काम इस मनुष्यपर्यायमें आकर करनेका न था, ये तो होते रहते हैं। मनुष्य होकर कर्तव्य तो धर्मपालन का था और धर्म-पालन तब तक हो नहीं सकता जब तक

चित्तमें यह बात न समाये कि हे प्रभु! मेरी वह स्थिति बने जबकि किसी देहका भी मेरे साथ सम्बन्ध न रहे। मैं जो हूँ सो ही केवल रह जाऊँ, इतनी भावना जगे बिना धर्मका पालन नहीं है।

धर्मपालनका आनन्द धर्मके लिए यदि कोई लोग विवाद करते हों या धर्मके नाम पर शोरगुल मचाते हों तो उन्हें मचाने दीजिए। उनके शोरगुलमें शामिल न होइए। धर्मपालन तो इस भावनामें है कि मैं कब देहसे रहित स्वतन्त्र केवल आत्मा ही आत्मा रह जाऊँ, इसी भावनामें धर्मका पालन है। धन समागम वैभव परिजन ये कुछ काम न आयेंगे। और आपके भीतरमें यह भावना बन जाये तो यह भावना आपका बहुत काम देगी। इस एकत्व भावनासे धर्मका पालन होता है। धर्मपालनके साथ-साथ जब तक संसारमें और रहना शेष है तब तक बड़े-बड़े पुण्य बंधेंगे और उनके उदय सामने आयेंगे। लोग खोटे भाव बनाकर, पापका परिणाम बनाकर चिंता और संक्लेश करके धनका उपार्जन करना चाहते हैं। धन का उपार्जन तो पुण्य के अनुसार होता है और पुण्य भी विशेषतया तब बनता है जब कुछ धर्मपालन भी हो रहा हो। इस भावनामें आनन्द ही आनन्द है। जब तक संसारमें रहेंगे तब तक भी आनन्द है और जब संसारसे मुक्त होंगे तब तो परम आनन्द है ही।

संसरणमुक्तिके लिए निःसंसारत्वकी भावना भैया! जीवनका अपना एक भाव बनाएँ मैं तो इस देहसे रहित होकर केवल आत्मा ही आत्मा रहना चाहता हूँ। जैसी रूचि होगी वैसी भावना बनेगी। जैसी भावना बनेगी वैसा परिणमन होगा। शुद्ध परिणमन चाहते हो तो अभी से अपनी शुद्ध भावना रखना है। यह संसार समस्त क्लेशमय है। इसमें क्लेशका महाकारण तो पहिले इस शरीरका ही सम्बन्ध है। इस देहके ही कारण तो मरण हुआ करता है। देह न हो तो मरण काहेका? इस देहसे छूटे अन्य देहमें गमन किया और जो जन्म मरणके बीचका समय है जिन्दगीका, उसमें नाना प्रकारके पाप किये, यह है संसारीजनोंकी दशा।

बचपनका काल्पनिक क्लेश अहो! इस संसारमें शान्ति कहां है? जन्ममें क्लेश, मरणमें क्लेश, बीचकी जो जिन्दगी है उस जिन्दगीमें क्लेश। जब बच्चा था तब बच्चों जैसे क्लेश थे। मन माफिक बात सारी किसकी होती है? बचपनमें भी अनेक चाहें कीं। मान लो इतनी भी मनमें बात आये कि मां के पास बच्चा बैठा है और वह चाहे कि मां यहां से चले, पर मां वहांसे न चले तो वह दुःख मान लेता है। मन माफिक कोई बात न हुई, उसमें क्लेश माननेका काम बचपनमें ही रहा। जब कुछ बड़ा हुआ तब भी मन माफिक बात न होनेका क्लेश बना रहा। बड़ा हुआ, विवाह हुआ, संतान हुई, धन भी कमाया, किन्तु उन दिनोंमें भी मन माफिक काम कहीं नहीं होता। जब मनके अनुकूल काम न हुआ उस समय यह हठी जीव अपनी हठके कारण दुःखी होता रहता है।

जीवनका सम्यक् उद्देश्य भैया! इस जिन्दगीमें इस जिन्दगीसे सम्बंधित, इस देहसे सम्बंधित किसी भी व्यवहारमें आनन्दकी श्रद्धा न रखो। सबकी नकल नहीं करना है। देशकी, समाजकी सेवा में ही उद्यत रहो तो उसमें भी धोखा है। कोई बिरला ही संत गृहस्थ ऐसा होगा जो मोक्षमार्ग को पंसद करता हो; संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त हो अन्यथा तो यह सारा मानव मोह और

कुबुद्धिमें फंसा हुआ है। उनके वैभव ऋद्धिको देखकर मनमें तृष्णाका भाव न लावो। अरे यह वैभव आता हो तो आये, न आता हो न आये, हम तो प्रत्येक स्थितिमें जीवनका गुजारा कर सकते हैं। यह जीवन दुनियाको मैं धनी हूँ ऐसा बतानेके लिए नहीं पाया, किन्तु दुर्लभ धर्मके पालनके लिए पाया है। धर्मपालन तब ही हो सकेगा जब चित्तमें यह समाया हुआ हो कि मुझे तो देहसे रहित, सब झंझटोंसे रहित केवल अपने आपके आत्मारूप ही रहना है, इस ही की शुद्ध भावना भावो।

मोहीका निरन्तर वर्तमान रोजगार यह जीव संसारमें जन्म लेकर पापकर्मके फलको ही सदा भोगता रहता है और उससे बहुत-बहुत पापका बन्धन करता रहता है। इस जीवका व्यापार यही है। निरन्तर इसका यही व्यापार चल रहा है खोटे भाव करना, खोटे कर्म बांधना, दुःख भोगना बस यही इसे रुचिकर है। आसक्तिमें तो यह जीव यही रोजगार कर रहा है खोटे भाव करना, कर्मबन्ध करना और दुःख भोगना, यही इसका रात दिनका व्यवसाय है। इन सब व्यवसायोंको कर करके इसे निद्रा आती है तो निद्रामें भी यह व्यापार रूकता नहीं है। जब जग रहे हैं तब भी खोटे भाव, कर्मबन्ध, दुःखका भोगना ये ही तीन काम। नींद भी आ जाये तो भी ये तीनों काम बराबर चलते रहते हैं। इसके इस रोजगार की दुकान चौबीस घंटे खुली रहती है।

मायाभेदिनी विदेह भावना हे आत्मन्! अपने आप पर कुछ दया तो करना चाहिए। यह पौद्गलिक विभूति बहुतसी निकट आ जाए तो यह इसकी मदद कहां देगी? कुछ भीतरी भाव से सोचिए। जिन लोगों में कुछ अच्छा कहलानेके लिए धनी बननेकी होड़ की जा रही है, वे जीव तो आपसे भी अधिक मलिन और अज्ञानसे भरे हुए हैं। दूसरोंसे अपने को कुछ कहलवानेके लिए उद्यम न करो। अपने आपको अपने भीतर निरखिये और जो कुछ अपने हितके लिए हो सकता हो, उस कार्यको करिये, ऐसा किया तो आप बुद्धिमान हैं और न किया तो जगतमें जैसे पशु जन्म लेते हैं, मर जाते हैं, फिर जन्म लेते हैं, ऐसा ही जन्म मरणका सिलसिला हम आपका भी चलता रहेगा। इस मानवजीवनसे कुछ लाभ तो उठावो। मुझे तो देहसे रहित केवल आत्मा ही आत्मा रहना है, प्रभुके दर्शन करके, पूजन करके वही भाव भरियेगा। धर्मपालनके जो भी साधन हैं सत्संगमें रहना, स्वाध्याय करना आदि उनमें यही भाव भरिये कि मेरे आत्माका प्रोग्राम तो केवल यही एक है कि मुझे तो शरीरसे भी न्यारा केवल अपने आपके सत् रूप रहना है।

परसम्बन्धविदारिणी निजस्वरूप भावना मेरे साथ किसी का सम्बन्ध न रहो, ऐसी बात तब बन सकती है जब इस फंसी हुई हालतमें भी इस फँसावको न देखकर इन शरीरादिक पर दृष्टि न करके केवल ज्ञानप्रकाशमात्र अपने आपको अन्तमें निरखें और उसकी भावना बनाएँ कि इतना ही मात्र मैं हूँ, ज्ञानमात्र हूँ, ऐसी दृढ़ भावना रक्खें तो जिस स्थितिको हम आज पूज रहे हैं मूर्ति बनाकर अरहंत और सिद्ध प्रभुकी, ऐसी निर्दोष स्थिति हम आपकी निकट भविष्यमें आ जायेगी। पर जाप, भावना, चिन्तन इस ज्ञानमात्र निजस्वरूपकी की जाय एक दृढ़ संकल्प कर लीजिए, एक गांठ बांध लीजिए, मेरी और कोई चाह नहीं है। मैं तो केवल ज्ञानानुभव रूप रहना चाहता हूँ।

पुरुषार्थक दृढ़ संकल्प जैसे चींटी भींत पर चढ़ती है, कुछ दूर चढ़ कर गिर जाती है। फिर चढ़ती है, फिर गिर जाती है, पर उसका ऐसा उद्यम रहता है कि चढ़ना नहीं छोड़ती और किसी समय ऊपर तक चढ़ जाती है, ऐसे ही हम अपने रत्नत्रय पथ पर चलते हैं और उस पथसे हम गिर जायें। फिरभी प्रयत्न तो यही करने योग्य है। फिर धर्ममें लगिए, फिर रत्नत्रयके पालनमें लगिए, यही एक काम प्रशंसनीय है। शेष सब कार्य तो केवल व्यामोहमात्र हैं। ईंटोंका बनाया हुआ यह घर और कहां अनन्त ज्ञान ऐश्वर्यका धारी यह आत्मा भगवान्, इसे उस घरमें जोड़ना चाहिए क्या? कहां यह ज्ञानानन्द चमत्कारमय परमार्थभूत भगवान् आत्मा और कहां ये जड़ पौद्गलिक वैभव, इनमें आत्माको जोड़ना चाहिए क्या? यह तो उदयानुसार स्वयं आता है। इसकी ओर तृष्णा रखनेमें कोई लाभ नहीं है। यह मनुष्यजन्म दुर्लभ जन्म है, इसका मूल्य मूली गाजरकी तरह न आंकिये, अपने दिलमें एक बात जमा लीजिए कि मैं सबसे न्यारा देहसे भी जुदा केवलज्ञानरूप हूँ।

समताकी आवश्यकता यह संसारी पुरुष केवल दुःखका ही व्यवसाय करता है। खोटा परिणाम किया, कर्मबंध हुआ, फिर दुःख भोगा, जन्म लिया, मरण किया, और कभी अपने इस तीव्र व्यवसायसे थक गया तो नींद लेने पर भी यह जगता नहीं है। यह सदा मृत्युसे डरता है, पर भाई मृत्यु समान उपकारी जन्म, जवानी आदि और कुछ दशा नहीं है। क्यों इस ओर दृष्टि नहीं करते? मृत्युका अर्थ इतना ही तो है कि देहसे जीव अलग हो गया। देहसे अलग हो जानेमें कुछ अकल्याण नहीं है। यह देहसे अलग रहा करे, बस यही तो भगवान्का स्वरूप है। क्यों घबड़ाते हो, मरते समय भी समता रखोगे तो इस देहसे भी अच्छा देह पावोगे। मृत्युसे क्यों डरता है? इसीसे तो हर स्थितियोंमें जन्मसे लेकर मरण तक के सब प्रसंगोंमें दुःख ही दुःख भोगता है।

दुःखके हेतुओंसे निवृत्त होनेका अनुरोध यद्यपि जगतकी ऐसी रीति है कि जो दुःखके जनक हैं, उनमें नहीं रमता किन्तु यह संसार तो मोह दुःखसे भरा है, उसमें क्यों रम रहा है? सब देहों में उत्कृष्ट देह यह मनुष्यका है, जिस शरीरसे मुक्ति सम्भव है। उस मनुष्यकी यह दशा है फिर अन्य जीवोंके दुःख की कहानी की क्या कहें? गर्भमें आया तब दुःख, अशुचि देहमें औंधा मुँह करके यह ६ माह तक लटका रहा, गर्मीकी कठिन वेदना रहती है उस समय। गर्भ से निकला तब दुःख। बाल अवस्थामें अज्ञान दशा थी। कुछ सुध न थी। जवानीमें काम आदिक अनेक विकारोंसे व्याकुल रहा बुढ़ापेमें अंगोंकी शिथिलतासे क्लेश पाया। देव भी बन जाय तो तृष्णावश वहां भी दुःखी रहा इष्ट वियोग वहां भी होता है, उनके आगे देवियां मर जाती है उनका दुःख मानते हैं। ऋद्धिधारी देवको देखकर मनमें कुड़ते करते हैं। तिर्यञ्चोंके दुःख सामने हैं नारकियोंके क्लेशका भी अंदाज बना हुआ है यह खोटे भाव करता है कर्मप्रकृतियोंका बंध करता है। निद्रामें बेहोश रहता है, मरते समय दुःख मानता है। यों सारा दुःख इस शरीरके कारण है। इस कारण शरीरसे मुझे अलग होना है। मुझे केवलज्ञान प्रकाशमात्र रहना है, ऐसी अपनी भावना बनाएँ। इस भावनासे ही धर्मपालनका प्रारम्भ होता है।

अस्थिस्थूलतुलाकलापघटितं नद्धं शिरास्नायुभि-
श्चर्माच्छादितमस्रसान्द्रपिशितैर्लिप्तं सुगुप्तं खलैः।
कर्मारतिभिरायुरूद्धनिगलालग्नं शरीरालयम्।
कारागारमवैहि ते हतमते प्रीतिं वृथा मा कृथाः ॥५९॥

शरीर कारागार यह शरीररूपी घर तेरा कारागार की तरह है। जैसे कारागारमें बँधा हुआ कैदी कारागारसे बाहर नहीं जा सकता, उससे भी और विकट अधिक बँधा हुआ यह आत्मा देहमें है। कोई किसीको आज निमंत्रण कर जाय, तुम्हारा कलका निमन्त्रण है, लेकिन हमारे ऊपर कृपा करना कि आप अकेले ही आना और अधिक हमारे गुंजाइश नहीं है। अपने आप आ जाना 1० बजे, और वह पहुंच जाय 1० बजे। निमंत्रण दाता कहे, क्यों साहब, हमने तो आपको अकेले आनेको कहा था, तुम तो बहुतोंके साथ आ गये? अब वह विस्मयमें पड़ा। यह मैं अकेला ही तो आ गया और यह कहता कि तुम बहुतोंको साथ ले आये। मैं अकेले ही तो आया हूँ। तो निमंत्रणदाता कहे कि पहिले तो यह ही बतावो कि तुम अपने साथमें यह पिंडोला ले आये, हमने तो आपको अकेले ही आनेको कहा था। यह शरीररूपी पिंडोला क्यों ले आये? अब क्या करें, जब तक यह जीव बंधनबद्ध है, शरीरको छोड़कर कहां जाये?

वेदनासमुद्घात कभी-कभी इस जीवका प्रदेशविस्तार इस देहसे बाहर भी हो जाता है, लेकिन यदि बिल्कुल दूर हो जाय तो उसका नाम है मरण। और कुछ दूर हो जाए और देहमेंभी रहे ऐसी स्थितिका नाम है समुद्घात। जैसे कभी व्याधिकी तीव्र वेदना हो, तेज बुखार, ऐसी ही कठिन वेदना हो तो उस समय भी इस जीवके प्रदेश कुछ दूर तक शरीरसे दूर हो जाते हैं। जब वेदना नहीं सही जाती, बड़ी विह्वलता रहती है तब ये प्रदेश शरीरसे बाहर भी कुछ निकल जाते हैं, और ऐसे समयमें ये प्रदेश कहीं बढ़िया औषधि हो और वहां तक पहुंच जायें तो वापिस तो यह तुरन्त ही आया करता है। कहो इसका रोग भी अच्छा हो जाय, ऐसी भी स्थितियां हो जाती हैं।

कषायसमुद्घात कभी यह जीव क्रोध कषायमें तेज हो गया, जिसे लोग कहते हैं कि यह आपमें नहीं समा रहा। कोई विशेष क्रोध करता है तब लोग कह भी देते हैं आप आपसे बाहर क्यों हुए जा रहे हो, तो वह सचमुच दूर हो जाता है। इस जीवके प्रदेश शरीरमें भी रहते हैं और प्रचंड क्रोधके समय कुछ शरीरके बाहर भी आ जाते हैं, यह स्थिति देर तक नहीं रहती। फिर वे प्रदेश शरीरमें समा जाते हैं।

विक्रियासमुद्घात तपस्विजनोंको विक्रिया ऋद्धि प्रकट हो जाती है, इसके उपयोगमें उनका कोई अभीष्ट अंग बढ़ता जाता है। जहां तक अङ्ग बढ़ता चला जाय वहां तक उनके आत्मप्रदेश मूलशरीरको न छोड़कर फैल जाते हैं। देवों को विक्रिया ऋद्धि है, देवोंका शरीर तो जो उनका निवास स्थान है, वहां ही रहता है, पर वे अनेक उत्तर शरीर बनाकर बहुत दूर तक भेज सकते हैं। ऐसी स्थितियोंमें मूल शरीर जहां बस रहा है वहां से लेकर यह बनाया हुआ दूसरा उत्तर शरीर जहां-जहां तक डोले उस बीच में आत्म प्रदेश रहते हैं। मूल शरीर को छोड़ते नहीं हैं वे प्रदेश।

मारणान्तिक समुद्घात जब किसी जीवका मरण होता है उस समय मरने पर यह जीव जहां आगे जायेगा उस स्थान तक फैलकर हो जाता है। फिर बादमें इस शरीरमें समाकर फिर एक साथ निकल जाता है। शरीरको बिल्कुल छोड़कर निकले उसका नाम है मरण, पर उस मारणांतिक समुद्घात में इस देहमें भी जीव प्रदेश रहते हैं और जहां पैदा होना है फैलकर वहां तक हो आता है। यह स्थिति बहुत ही कम क्षणकी है। फिर वापिस देहमें आकर, पूरा समाकर एक साथ निकल जाता है।

तैजससमुद्घात कोई तपस्वी साधुके एक ऐसी ऋद्धि हो जाती है कि उन्हें कभी प्रसन्नता जगें ग्रामपर, लोगोंपर तो उनके दाहिने कंधेसे तेज निकलता है। मनको प्रिय लगे ऐसा तेज निकलकर जितनेमें फैल जाय वहां तक रहने वाले लोगोंका रोग मिट जाये, आधि व्याधि आदि कोई रोग आयें, संकट आयें तो वे खत्म हो जाते हैं और कदाचित् उन योगीश्वरों के किसी पर कोई यदि क्रोध आ जाये तो बांये कंधेसे तेज निकलता है, वह क्रोध दूसरेको भी भस्म कर देता है और फिर बादमें वह साधु भी उस से भस्म हो जाता है, ऐसी स्थितियोंमें जीव के प्रदेश मूलशरीरको छोड़कर इस शरीरसे दूर हो जाते हैं, फिर शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं।

आहारक समुद्घात ऐसे ही किसी बड़े योगिराजके ऐसी ऋद्धि प्रकट होती है इनका भाव हुआ कि मुझे भगवान् का दर्शन करना है, अमुक नगरमें भगवान् विराजे हैं, उनका दर्शन करना है, अथवा कोई विशिष्ट धर्मस्थान हो वहां वंदना करनी है तो उनके मस्तकसे एक बहुत मनःप्रिय पवित्र श्वेत रंगका, किन्तु किसीको दिखने वाला नहीं, आहारक नाम है उसका, वह पुतला निकलता है और प्रभुके निकट जाकर प्रभुके दर्शन कर लेता है। उसके चित्तमें कभी शंका उपस्थित हो जाये तो उसका समाधान करनेके लिए यह पुतला जहां भी भगवान् विराजे हों वहां तक पहुंच जाता है। भगवान्के दर्शन करते ही यह सब शंका समाप्त हो जाती है, समाधान हो जाता है। ऐसी कुछ स्थितियोंमें यह जीव देहके बाहर निकलता है, बाकी तो सदा ही इस देहमें बंधा हुआ रहता है।

शरीर-कारागृहकी रचना यह शरीर कारागार की तरह है। जिस शरीरसे हम इतना अनुराग करते हैं कि अन्य कुछ बात कर्तव्य की, धर्म की इस आत्मदेवके मनमें नहीं आती, वह देह बंदीगृहके समान है। इससे प्रीति करना वृथा है। इससे प्रेम करते रहें तो भी नष्ट होगा, न प्रेम करें तो भी नष्ट होगा। यह तो भिन्न वस्तु है, इससे राग करना वृथा है। कैसे है यह शरीर कारागार? कैदियोंका कारागार तो पत्थरसे बना होता है, वहां मजबूत और पुष्ट पत्थरोंकी दीवालें हैं, जिससे बाहर यह कहीं भाग नहीं सकता और यह देहका जेलखाना हड्डियों करके बना है, वह पत्थरसे बना है जिसमें कैदियोंको कैद रक्खा जाता है, और जिस देहमें इसको कैद रक्खा गया है वह देह हड्डियोंसे बना है और फिर नसोंके जालके बन्धनसे बँधा है। कितनी नसें हैं देह में? इसकी गिनती कई हजारकी है और कुछ यदि कभी दुर्बलता आ जाय तो दिखने लगती हैं। कितनी तरहकी और कैसी-कैसी नसोंका जाल है, जिनके बन्धनसे बँधा है यह शरीर रूपी कारागार और चर्मसे आच्छादित है। जैसे

जेलखाना पत्थर से बना है, और सीमेन्ट से मंदा हुआ है याने सीमेन्टका पलस्तर लगा है, चूने से पुता है ऐसी ही बात इस देहकारागारकी लेनी, यह चर्मसे आच्छादित है।

शरीरकारागारका निमित्त व कोठरीपरिवर्तन यह शरीरकारागार ऊपरसे कितना भला लगता, पर इसमें अपवित्र-अपवित्र ही चीजें बसी हुई हैं। यह शरीरकारागार खूनकी आर्द्रतासे सजल कीचड़ जैसा लथपथ मांससे लिपा हुआ है। जैसे मिट्टीमें पानी डालकर गिलाव बनाया जाता है, ऐसे ही रूधिर तो पानीकी तरह है और यह मांस मिट्टीकी तरह है, खून व मांस मिल करके यह लथपथ हो गया है। इसे बनाया किसने है? जेल-खानेके घरको तो किन्हीं कारीगरोंने बनाया, पर इस देहके जेलखानेको किसने बनाया है? इन दुष्ट कर्मरूपी बैरियोंने बनाया है। हम लोग भावरूप कर्म करते हैं। उन कर्मोंसे ऐसा ही वातावरण बनता है, ऐसे द्रव्यकर्म बँधते हैं कि जिनका उदयकाल आने पर यह शरीर निर्मित हो जाता है। कैसा निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि जीवको मरनेके बाद ज्यादा नहीं भ्रमण करना पड़ता, एक सेकेण्ड भी नहीं घूमना पड़ता। एक सेकेण्डके अनगिनते हिस्सोंमें वह दूसरे देहबीजपर कब्जा कर लेता है।

तेहरवीका मूलरूप भैया! ऐसा नहीं है कि मरनेके बाद यह जीव घूमता फिरे। इसे तो नये शरीर के धारण करनेमें एक सेकेण्डका असंख्यातवां हिस्सा भी नहीं लगता। जो यह परिपाटी है कि मरनेके बाद तेहरवें दिन उसका ठिकाना लगता है, इसका आशय यह था कि मरणका पातक 1२ दिनका होता है, श्रावकोंका। किसी इष्टके मरनेके बाद गृहस्थ 1२ दिन तक साधुवोंको, त्यागियोंको आहार खिलानेका पात्र नहीं कहा गया है। जब तेहरवां दिन लगता है तो सुबह शुद्धिपूर्वक भोजन बनाए और द्वारपेक्षण करे। तेरहवें दिन दसको ऐसी पात्रता होती है कि किसी साधु को आहार कराया तो तेरहवें दिनके भोजनका काम साधुवों सन्यासियों त्यागियोंका था, उसको जिसमें धीरे-धीरे पहले तो कुछ लोक सामान्य पुरुषों को जिमाने का था, अब बिरादरी, पंच सबका काम हो गया। उस तेरहवें दिन का अर्थ है कि तेरहवें दिन वह साधुको भोजन करा सकता है।

बंदीगृहका बंदी यह शरीररूपी जेलखाना दुष्ट कर्मरूपी बैरियों से रचा है और इसमें बंद हुआ जो यह जीव है, इस जीवको जकड़ रक्खा है आयुकर्मकी बेड़ीने। यह जीव शरीरमें बद्ध है, पर यह कब तक यहां बंधा रहेगा? उसका विशेष बन्धन आयुकर्मने किया है। जितनी आयु होगी उतने समय तक यह शरीरमें रूका रहेगा। लोकमें जेलखाना दुःखका कारण है। जेलखानेकी और देहकी उपमा देखो करीब-करीब बराबर की मिलती है। यह जेलखाना मिट्टी पत्थरसे घड़ा गया है तो यह शरीर हड्डियों से घड़ा गया है। वह जेलखाना बंधनसे बेड़ा गया है तो यह शरीर नसोंसे बेड़ा गया है। जेलखाना सीमेन्ट पलस्तर जो कुछ भी हो, उनसे आच्छादित है तो यह शरीर चर्मसे आच्छादित है, यह रूधिर मांस करके लीपा गया है। शरीर दुष्ट बैरियोंसे रचा है, आयुरूपी बेड़ी से सहित हैं, ऐसे बंदीगृहसे कौन बुद्धिमान् प्रीति करेगा? तू मोहमें पगा है, ऐसे शरीररूप बंदीगृह से भी तू प्रीति करता है, इससे प्रीति करना उचित नहीं है।

अन्तर्दृष्टिके अनुसार बाह्य दर्शन अनेक बातें दृष्टिके अनुसार होता है। जब यह उपयोग कुछ ज्ञान और वैराग्यके मर्मको लिए हुए होगा तब इसे यह शरीर मनोहारी प्रिय पवित्र न जँचेगा और जब इस उपयोग में मोह, राग, काम आदिक बसे होंगे तो यह शरीर सुहावने और पवित्र जँचेगा। जैसे कि शास्त्रमें कहा है कि दूसरेके देहका अनुराग, मोह अथवा सेवन एक नरकका द्वार है यह भूल जाता है फिर उसे पवित्र और सुहावना ही जंचता रहता है। जैसे जब आपका मन हर्षित होगा, तब बाजारसे निकलेंगे तो सब आपको खुशी नजर आयेंगे। सब खुशी हैं, सब मजेमें हैं, ऐसा ही सब कुछ दीखेगा, और जब किसी कारण से चित्त खेद खिन्न होगा तो चाहे कोई लोग हंस भी रहे हों, शान्तिमें भी विभोर हो रहे हों तो भी उसे लगेगा कि यह अन्दरसे सुखी नहीं है, बनावट करके हंस रहा है।

सुन्दरताकी दृष्टयनुसारिता जैसे पूछा जाय कि यह तो बतावो प्रकृतिसे शरीर मनुष्यका सुन्दर होता है या स्त्रीका? तो इसका कोई एक उत्तर न देगा। कोई कहेगा कि स्त्रीका रूप सुन्दर होता है, कोई कहेगा कि पुरुषका रूप सुन्दर होता है। जिसकी जैसी दृष्टि होगी वह उस दृष्टिके अनुसार जवाब देगा। पुरुष अपनी ये युक्तियां देंगे कि देखो भाई तिर्यचोंमें गाय और बैल होते हैं, भला बतलावो उनमें सुन्दर कौन जंचता है? अथवा मुर्गा मुर्गी पशुवोंमें कौन सुन्दर जंचता है? शेर शेरनी, कुत्ता कुतिया, हर एक जोड़ा ले लो, उनमें कौन सुन्दर जंचता है? सबका अपनी दृष्टिके अनुसार उत्तर होगा। जैसी दृष्टि होती है वैसा ही बाहर में भी नजर आता है। यदि चित्त ज्ञान और वैराग्यसे सुवासित है तो यह देह ऐसा ही जंचेगा कि बंदीगृह है, जेलखाना है, यह जीव बँधा है, बिड़ा है, बड़ा असहाय है इस दृष्टिके साथ-साथ आत्मकल्याणकी भी बात मनमें आयेगी।

आत्माका अलिङ्गस्वरूप एक बार रूड़की नगर में ७ दिन ठहरना हुआ। आम व्याख्यान होने से जैन और उससे भी तिगुनी संख्या में अजैन जनताने लाभ लिया। सुबह मंदिरमें प्रवचनहोता था। एक दिन एक अजैन महिला वहां आकर प्रवचनके बादमें बोली कि महाराज! हमको एक बड़ा दुःख है। हमने कहा क्या दुःख है? तो वह बोली कि हम स्त्रीपर्यायमें हैं और हमारे मनमें सदा यही संक्लेश रहता है कि हम स्त्री हैं, अबला हैं, कुछ कर नहीं सकती, धर्ममें बढ़ नहीं सकतीं, और कभी-कभी लोग कह देते हैं कि स्त्रीपर्यायसे मोक्ष नहीं होता है, इसका हमें बड़ा क्लेश रहता है। पहिले तो सीधा यह बताया कि देखो आजकल न पुरुषोंको मोक्ष है न स्त्री को मोक्ष है, इस बातकी तो तुम पुरुषोंसे ईर्ष्या मत करो। दूसरी बात यह है कि यह विचारो कि तुम्हारा जो आत्मा है वह क्या स्त्री है? आत्माका क्या स्वरूप है? तुम क्या देहरूप हो, क्या इस देहको सदा ही लपेटे रहोगी, इसे छोड़कर न जावोगी? तुम्हारा जो अस्तित्व है उसको देखो क्या आत्मा स्त्री है? नहीं है। तो अपने आत्मापर दृष्टि दो और यह तो कभी भी अन्तः विकल्प न करो कि मैं स्त्री हूं। जैसे कि हम लोग पुरुष भी नहीं हैं।

आत्माकी प्रभुता भैया! यह अभिमान करना भी मिथ्यात्व है कि मैं पुरुष हूं। आत्मा न पुरुष है, न स्त्री है। यह तो एक असमानजातीय द्रव्यपर्याय है, मायारूप है। अपने आपको स्त्रीरूप

अनुभवमें मत लो, इससे तो मिथ्यात्व बंधेगा, संसारमें रूलना पड़ेगा। ऐसे ही पुरुष अपनेको पुरुषरूप अनुभव में न लें। इससे तो मिथ्यात्व बंधेगा, संसार में रूलना होगा यह मैं आत्मा का ज्ञान दर्शन स्वरूप एक सत् पदार्थ हूं, वह न पुरुष है और न स्त्री है। यह तो प्रभुस्वरूप है। प्रभुमें सच्चिदानन्दमयता व्यक्तरूप हो गयी है। हम सबमें सच्चिदानन्दमयता का स्वभाव पड़ा हुआ है।

सच्चिदानन्दस्वरूपका अनुरोध सच्चिदानन्दमें सत् चित् आनन्द, ये तीन शब्द हैं। सत्का अर्थ है अस्तिरूप, इस प्रकरणमें अर्थ है शक्तिमान, समर्थ; चित्तका अर्थ है ज्ञान और दर्शन, आनन्द का अर्थ है आनन्द। इस शब्दमें अनन्तचतुष्टयकी ध्वनि पड़ी हुई है। प्रभु अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्द स्वरूप है। और हम भी सब ऐसे ही स्वभाव वाले हैं। ऐसा महत्वशाली यह आत्मा भगवान् हमारी भूल और कषायोंके कारण शरीररूपी बंदीगृहमें जकड़ा हुआ है। इस शरीरसे प्रीति न करो। यह शरीर मेरे विकासका साधक नहीं है, किन्तु बाधक है। यों इस देहको प्रीति करने लायक नहीं बताया। रूचि करो तो इस आत्मतत्व की करो। यदि आत्मा भगवान्की रूचि कर सके तो फिर इस देहका नाम देवालय हो जायगा, मंदिर हो जायगा। इस शुद्ध अंतस्तत्त्वका दर्शन करके अपनेको निर्मल बनाएँ और संसारके संकटोंसे छूटनेका उपाय करें।

शरणमशरणं वो बन्धवों बन्धमूलम्।

चिरपरिचितदारा द्वारमापद् गृहाणां॥

विपरिमृशत पुत्राः शत्रवः सर्वमेतत्।

त्यजत भजत धर्मं निर्मलं शर्मकामाः॥६०॥

अशरणता पूर्व छंदमें शरीरको बंदीगृह बताया था। देह जेलखाना है और उसमें बसा हुआ यह आत्मा कैदी है, उससे प्रीति करना वृथा है। अब इस छंदमें यह बता रहे हैं कि जो बंधुजन हैं उनसे भी प्रीति करना वृथा है। यह घर शरणरहित है। जब इस जीवका मरण समय आता है उस समयका दृश्य देखा होगा, घर भरपूर है वैभवसम्पन्न भी है, सब लोग चाहने वाले हैं, स्त्री जुदी बिलख रही, पुत्र जुदे बिलख रहे, माता जुदी बिलख रही है, सबकी भावना है सारी सम्पदा भी यदि लग जाय और कुछ कर्ज लेकर भी यह बच जाय तो सब कुछ करनेको घर भर तैयार है, लेकिन कौन बचा सकता है? घरके लोग दूसरोंके हाथ जोड़ते हैं, अपनी छाती ठोकते हैं, सिर थामते हैं, बड़ी भावना भाते हैं कि यह रहे, बच जाय, किन्तु सब सोचना निष्फल हो जाता है यहां कोई भी बचावनहारा नहीं है।

बान्धवोंकी बन्धमूलता ये बांधव बंधके मूल हैं। घर तो कारागृह है, बंधुजन बन्धन हैं। जिससे तेरा अधिक परिचय है ऐसी जो स्त्री है वह आपदारूपी घरका द्वार है। इन परिजनों से मोह न करना, उपेक्षा भाव लेना है, इस कारणसे ये सब अनिष्टताएँ बतायी जा रही हैं।

आपदाका द्वार जितना भी जीवनमें आपत्तियोंका सामना करना पड़ता है उसका मूल संग रहा स्त्री सम्पर्क। कहते हैं ना अकेला है, फक्कड़ है, फकीर है, उसे क्या चिन्ता है? चिन्ताएं बढ़ती है

तो एक स्त्री सम्पर्क से बढ़ती हैं, और स्त्री होनेके कारण धन वैभव अधिक बढ़ानेकी भावना जगती है, और धन वैभव बढ़ने के लिए जो भी उपाय बन सकते हैं वे उपाय किए जाते हैं। यों समस्त आपदावोंका द्वार स्त्री है, जिससे कि अत्यन्त अधिक परिचय है, इतना घनिष्ट सम्बन्ध सम्भव है कि भाईसे भी न हो सके जितनी घनिष्टता पत्नीकी पतिसे है और पतिकी पत्नीसे है। परिचयमें स्नेहको कम करना चाहिए, उस प्रसंगमें मोह न रहना चाहिए। इस ख्याल से बताया जा रहा है कि जो भी सम्पर्क है इस सम्पर्कसे शान्ति न मिलेगी, आपत्ति ही होगी।

पुत्रादिकोंकी कष्टहेतुता ये जो पुत्रजन हैं, ये भी स्त्रीकी तरह अपनेको व्यथा के कारण बनते हैं। जैसे मानों किसीके कुपूत पैदा हुआ है तो वह तो साक्षात् दुश्मन ही जैसा है, और यदि पुत्र सपूत हो जाय तो उसकी विनय और आज्ञाकारितासे तृप्त होकर संतुष्ट होकर, खुश होकर यह चाह बनती है कि हमने धन कमाकर रक्खा है तो इसको खूब सुख सुविधा बना दें ताकि ये खूब अधिक आरामसे, शौकसे रह सके। अब उसे सुखी करने के लिए इसको जीवनभर जुतना पड़ेगा, चिन्ताएँ करनी पड़ेंगी। अरे शान्तिके पथमें कुपुत्र क्या कर देगा और सुपुत्र भी क्या कर देगा? शान्ति तो ज्ञानसाध्य बात है, मोहसाध्य बात नहीं है। पुत्र इस पिताके आत्मामें ज्ञान थोड़े ही भर देगा। ज्ञान तो उस आत्माको अपने ही पुरुषार्थ से करना होगा। जितने भी सम्पर्क हैं ये समस्त सम्पर्क दुःख के ही कारण हैं। ऐसा विचार कर हे आनन्दकी इच्छा रखने वाले जनों! तुम इन सब सम्पर्कोंमें मोहको त्याग दो। यदि सुख की कामना है तो इस निर्मल धर्मका सेवन करो।

निरपेक्ष आनन्द हे आत्मन्! इस असार संसारमें तूने सार किसे समझा है? सार तो है निर्विकल्प स्थिति। ज्ञानत्वरूप अपने आत्मा में अपना उपयोग स्थिर बने तो वहां सत्य आनन्द मिलता है। जैसे जब कभी कोई अपने महलके बाहर चबूतरे पर बड़े विश्रामसे बैठा हो, वह बैठा ही है, कुछ कर नहीं रहा, खा नहीं रहा, भोग नहीं रहा, वह बड़े विश्रामसे बैठा है तो लोग पूछते हैं कहां भाई आनंद है ना? तो वह कहता है कि हां खूब आनंद है। बताओ उस समय वह खा पी नहीं रहा, किसी इन्द्रिय के विषयका सेवन नहीं कर रहा और फिर भी कहता है कि हां, हम बहुत आनन्दमें है। विषयोंसे दूर रहकर कुछ क्षण जो वह विश्रामसे बैठा है वह एक प्राकृतिक आनन्द है। परवस्तुवोंका जो सम्पर्क पाकर आनन्द मिलता है वह पराधीन आनन्द है, वह दुःखसे भरपूर है। उस आनन्दमें इसका भविष्य उज्ज्वल नहीं रहता, किन्तु जो स्वाभाविक आत्मजन्य आनन्द होता है, उसका भविष्य उत्तम होता है, जो इस आनन्दको अनुभवता है।

परमार्थ और व्यवहारशरण ये समस्त सम्पर्क आत्महितके लिए विश्वासयोग्य नहीं हैं। लोकव्यवहारमें कुछ थोड़ी सी सीमा तक विषयसाधनोंके परिचयके प्रसंगमें ये समागम विश्वासके योग्य हैं, पर आत्महित में यह कुछ भी समागम साधक नहीं बन सकता है। आत्महितमें साधन तो मुख्यतया अपना आत्मा ही है और व्यवहारदृष्टिसे पंच परम गुरु साधक हैं, जिनको हम णमोकार मंत्रमें कहा करते हैं अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु।

णमोकारमंत्रमें आत्मविकासोंको नमस्कार णमोकारमंत्रमें किसी व्यक्तिका नाम लेकर बन्दन नहीं किया गया। तीर्थकरमें किसीका नाम नहीं लिया गया। ये ५ आत्माके विकासके पद हैं, और जगतके इच्छुक भक्त पुरुष आत्माके विकासका बन्दन कर रहे हैं, क्योंकि उन्हें आत्मविकास की यादमें प्रसन्नता रहती है। उन ५ विकासोंमें सर्वप्रथम विकास है, सिद्ध होना। यद्यपि मोक्षमार्गमें अविरत सम्यग्दृष्टिका पद है जो आराधनीय पद है। उन पदोंमें सर्वप्रथम पर साधुका है। पूज्यता चरित्रसे आती है। सम्यक्त्व हो जाने पर भी हमारी धर्मपद्धतिमें पूज्यता नहीं आती है। पूज्यता चूँकि चारित्रसे शुरू होती है और चारित्रविकास साधुपदमें होता है, तो प्रथम तो साधु पद होता है। साधु उसे कहते हैं जो केवल आत्मा की साधनामें रहे। जिसे मात्र आत्माकी साधना की धुन है, ऐसा पुरुष समस्त बाह्यपदार्थोंकी अत्यन्त उपेक्षा कर देता है और इस साधनाकी धुन में इतना आगे बढ़ जाता है यह कि इसे घरसे प्रयोजन नहीं रहा, सो घर छूट गया, परिजनसे प्रयोजन नहीं रहा, परिजन छूट गए और यहां तक कि अब उसे वस्त्र तकका भी प्रयोजन नहीं रहा, लो वस्त्र छूट गए। लोकलाज के ढकनेके लिए वस्त्रकी जरूरत थी। ठंड गर्मीकी बाधा नहीं सह सकते इस से देहमें कुछ प्रीति तो हुआ करती है, किन्तु जिसे मात्र आत्माकी ही सुध है वह तो आत्मासाधनामें बाधक रंच भी चीज समझे, उसका भी त्याग कर देता है।

साधुना ये साधुजन ज्ञान, ध्यान और तपस्यामें लीन रहा करते हैं। ज्ञान कहते हैं जाननको। रागद्वेष न करके मात्र ज्ञाता रहे, इसका नाम ज्ञान है। ध्यान कहते हैं किसी तत्त्वका चिन्तन करनेको और तपश्चरण कहते हैं संयम और चारित्रके पालनको। इन तीनोंमें सबसे ऊँची चीज क्या है? ज्ञान। ज्ञानका अर्थ मात्र जानकारी करना नहीं, किन्तु रागद्वेष रहित होकर केवल जानन जानन ही रहे, इसका नाम है ज्ञान। यह बहुत ऊँचा विकास है। साधुजन मात्र ज्ञाता रहनेके लिए प्रयत्न करते रहते हैं। जब वे ज्ञानके तपश्चरणमें न रहे सकें तो ध्यानका सहारा करते हैं। तत्त्व चिन्तन करना, मनको किसी ओर एकाग्र करना यह ध्यान है। जब ज्ञान और ध्यान दोनोंमें नहीं रह पाते किसी परिस्थितिसे तो वे तपश्चरण उद्यम करते हैं। उपवास करना, भूखमें कम खाना आदिक अनेक तपश्चरण होते हैं। यों ये साधुजन ज्ञान, ध्यान और तपस्यामें लीन रहा करते हैं।

आचार्य और उपाध्याय इन साधुवोंमें जो कोई विशिष्ट साधु हो, जिसमें दूसरे साधुवोंको मार्गमें लगाये रहनेकी भी योग्यता हो, ऐसे साधुको सब साधुजन मिलकर उसे आचार्यपद देते हैं याने संघपति वह हुआ। संघपति आचार्य भी साधु ही कहलाता है और उन साधुवोंमें जो विशेष ज्ञानी साधु हुआ उसे आचार्य उपाध्यायका पद देते हैं। यों आचार्य उपाध्याय और साधु ये तीनों ही गुरु कहलाते हैं।

अरहन्त प्रभु तीनों साधुवोंमें जो कोई विशिष्ट तपश्चरणकी साधना करके जब चार घातिया कर्मोंको नष्ट कर देता है तो वह वीतराग निष्कषाय और सर्वज्ञ हो जाता है। इसका नाम अरहन्त है। जब तक शरीरका तो सम्बन्ध रहे और आत्मा हो जाये परमात्मा तो शरीरसहित परमात्माका

नाम है अरहंत। शरीर भी है और आत्मा निष्कषाय सर्वज्ञ परमात्मा है वह अरहंत हुआ। अरहंत भगवान् का शरीर हम आप लोगोंके शरीरकी तरह दूषित नहीं होता है, स्फटिक मणिकी तरह उनके शरीरमें दीप्ति रहती है।

अरहन्त प्रभुका सातिशय देह भैया! सुना होगा कि भगवान् जब समवशरणमें विराजे हुए होते हैं तो उनके विराजनेका स्थान गंधकुटी गोल होती है, और उसके चारों तरफ सभायें लगती हैं। तो ऐसी स्थितिमें जो भगवान्के पीठके पीछे सभामें बैठे होंगे उन्हें आकुलता हो सकती है, लेकिन वहां ऐसा अतिशय है कि भगवान्का मुख चारों ओर से दिखता है, और इसी लिए लोग ब्रह्माको चतुर्मुख कहते हैं। मोक्षमार्गकी सृष्टिको बनाने वाले या मोक्षमार्गके प्रणेता ब्रह्मा अरहंत प्रभुका मुख चारों ओरसे दिखता है। चतुर्मुख अरहंतका भी नाम है, ऐसा दिखनेका कारण क्या है? तो ऐसे प्रसंगोंमें अनेक तो देवकृत अतिशय होते हैं और अनेक स्वकी विशेषता के अतिशय होते हैं। कभी तो आपने यह भी देखा होगा कि जो स्फटिक पाषाणकी मूर्ति होती है उसके आगेसे भी दर्शन करो तो मूर्तिका मुख दीखेगा और पीछे से दर्शन करो तो मूर्तिका मुख दीखेगा। यह बात तो यहां भी परिचय कर सकते हो, स्फटिकमणिमें। यों समझो जैसे कोई साफ स्वच्छ कांच हो, केवल कांच-कांचकी ही मूर्ति बनी हो। कांचसे भी स्वच्छ होता है स्फटिक। तो नाम, मुँह, कान आदि जैसे आगे से दीखेंगे वैसी ही पीछेसे भी दिखते हैं। यदि पीछेकी ओरसे हाथ फेरों तो न मिलेगा मुख, क्योंकि मुख तो एक ओर ही बना हुआ है, पर उस स्वच्छताके कारण दोनों ओर से दिखता है। इस शरीरमें ऐसा अतिशय हो जाता है।

सिद्ध प्रभु भगवान् होने पर यह शरीर परमौदारिक शरीर कान्तिमान तेजस्वी हो जाता है। ऐसे शुद्ध शरीरमें विराजमान अरहंत भगवान् केवल ज्ञानके द्वारा समस्त लोकालोकको जानते हैं। समस्त विश्वको जाननहारे अपने आत्माका दर्शन करते हैं और उनमें सामर्थ्य भी अनन्त है। यों अनन्त चतुष्टयसम्पन्न प्रभु अरहंत कहलाते हैं। उन अरहंतोंके समय पाकर अपने आप बाकी बचे हुए चार अघातिया कर्म दूर हो जाते हैं और शरीरसे भी विमुक्त हो जाते हैं। अब वे केवल आत्मा ही आत्मा रह गये, उनका नाम है सिद्ध।

अरहंतके प्रकाशनामका कारण यों पंचपदोंमें अरहंत, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय और साधु ये विकास कहे गये हैं इनमें सर्वोच्च विकास कौनसा है? सिद्ध। लेकिन एक शंका की जा सकती है कि णमोसिद्धाणं पहिले क्यों नहीं किया गया? जबकि सिद्धपद सबसे उच्चविकसित है? उसका प्रयोजन यह है कि सिद्ध भगवान् लोकके शिखर पर विराजमान है, उनसे हमारा कभी व्यवहार नहीं चलता, और न उनके चक्षुसे दर्शन होते हैं, उपदेश भी नहीं मिलता। जैसे परमात्मा सर्वज्ञ सिद्ध हैं तैसे ही ये अरहंत है। थोड़ा सा इनमें ऊपरी अन्तर यों है कि वे शरीरसे रहित हो गये और चार अघातियाकर्मोंसे रहित हो गये लेकिन हम सबका उपकार मूलमें अरहंत भगवान् द्वारा होता है। इनका उपदेश भी दिव्यध्वनि द्वारा होता है, उनका समवशरण भी रचा जाता है उनका दर्शन भी मिलता है। जितने भी शास्त्र हैं, परमागम हैं इन सबकी उत्पत्तिका मूल कारण अरहंत प्रभु हैं। तो

यों उपकार विशेष होनेसे, मोक्षमार्गके प्रणेता होनेसे अरहंतका पहिले स्मरण किया है। कोई-कोई लोग तो यों भी कहते हैं कि 'गुरुगोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पांय। बलिहारी गुरु आपकी, जिन गोविंद दियो बताया।' प्रभु और गुरु दोनों यदि सामने हों तो पहिले गुरुको वंदन करनेको उन्होने बताया है। इस लोकमें भी अरहंत प्रभु परम गुरुदेव का स्मरण किया गया है।

अरहंत प्रभुमें देवत्व और परमगुरुत्व आप एक प्रश्न और कर सकते हैं कि मूलमें तो हमारा उपकारी कोई पड़ौसी भी हो सकता है, कोई सधर्मी साधु भी हो सकते हैं तब तो साधुवोंको मंत्रमें सबसे पहिले कहना चाहिए था? तो उसमें यह बात है कि पहिले तो इस पंच परम पदमें दो विभाग हैं देव और गुरु। देव में दो आये अरहंत और सिद्ध और गुरु में आये हैं आचार्य, उपाध्याय और साधु। देव और गुरुमें चूँकि उत्कृष्ट आराध्य देव हैं तो उन देवोंमें ही यह रूचि करके कि अरहंत परम उपकारी हैं सो अरहंतका प्रथम स्मरण किया है। दूसरी बात यह है कि हमारा साक्षात् उपकार मूलतः जैसा गुरुसे सम्भव है वैसा अरहंतसे भी सम्भव है। न मिले हों कोई गुरुजन और सीधे ही कभी समवशरणमें पहुंच जायें, अरहंत प्रभु के दर्शन हों तो किसी समय पर कोई कल्याणकी बात भी ग्रहण कर सकते हैं। इससे इन पंचपरमेष्ठियोंमें सबसे पहिले अरहंत देवको नमस्कार किया है।

पंचपदोंका संक्षिप्त अर्थ इन ५ पदोंका शब्दार्थ भी समझिये अरहंतका संस्कृत में शब्द है अर्हत्, अर्ह पूजायाम् धातु है, जिसका अर्थ है पूज्य। चाहे अरहंत कहो चाहे पूज्य, दोनोंका एक ही अर्थ है। एक पूजार्थक अल् धातु भी है, उससे अल्यः बना और सम्भव है कि उससे ही अल्ला बना हो। भगवान् को अरहंत भी बोला जाता है, अल्यः भी बोला जा सकता है। और पूज्यतामें इतराकर भी बोला जाता है। जैसे प्रभुको तू तू करके पुकारते हैं। अरहंतका अर्थ है पूज्य और अरहंतमें अरिहंत शब्द किया जाय, जिस का अर्थ है अरि अर्थात् रागद्वेष मोह अथवा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय, चारघातिया कर्म इन शत्रुवोंको जो जीते, उसका नाम है अरिहंत। सिद्धका अर्थ देखें सिद्ध गतौ धातुसे सिद्ध शब्द बना है। जो उत्कृष्ट क्षेत्रमें पहुंच गये हैं उनका नाम सिद्ध है, अथवा सिद्धका अर्थ है जो पूर्ण पक गया है, जिसका पूर्ण विकास हो गया है। आचार्यका अर्थ है जो खुद पंच आचारोंका आचरण करे और दूसरोंसे आचरण कराये। उपाध्यायका अर्थ है उप मायने अपने समीप साधु जनों को जो अध्ययन कराये, उसका नाम है उपाध्याय और साधु नाम उनका है जो आत्माकी साधना करें।

आत्मदर्शन और परमेष्ठीस्मरणकी सारभूतता यों व्यवहारमें हम को पंचपरमेष्ठी शरण हैं, निश्चयसे हमारा आत्मा ही शरण है। इसके सिवाय अन्य जिन-जिन वस्तुवोंमें तू राग करता है वे सब दुःख के कारण हैं। घरमें कोई रक्षक नहीं। बान्धवजन बन्धनके ही कारण हैं। स्त्री विपत्तियोंकी द्वार हैं, पुत्र तेरे हितका बैरी है। पुत्रके बैरकी बात एक कवि ने यों कही है कि जब यह गर्भ में आता है तब इस स्त्रीकी अर्थात् वह अपने माताकी जवानीको बिगाड़ देता है, उसका रूप घट जाता है, कांति घट जाती है और जब बालक उत्पन्न होता है तो उसके माताके भी मरणका संदेह रहता

है। बड़ा हो गया बालक थोड़ा सा तो वह मिष्ट भोजन को हर लेता है। बढ़िया खाना उसे दो, यह दृष्टि रहती है, फिर स्वयं उसके मुकाबले में मां बाप बढ़िया नहीं खाते। जब समर्थ हो जाय तो धन हर लेता है, और कभी-कभी तो बड़ी विपत्ति ढा सकता है। सुपुत्र होकर भी दुःख उत्पन्न करता है। यों समस्त सम्पर्क उसका सारभूत नहीं है। एक आत्मदर्शन और परमेष्ठीस्मरण यही सारभूत चीज है। इस कारण मोह रागद्वेषको त्यागकर एक इस आत्मध्यानकी ही सेवा करो।

तत्कृत्यं किमिहेन्धनैरिव धनैराशग्निसंधुक्षणैः।

सम्बन्धेन किमङ्गशश्वदशुभैः सम्बन्धिभिर्बन्धुभिः।

किं मोहादिमहाविलेन सदृशा देहेन गेहेन वा।

देहिन् याहि सुखाय ते समममु मा गाः प्रमादं मुघा॥६१॥

पराश्रित ध्यानकी क्लेशरूपता इस संसारमें किसी भी परवस्तु विषयक ध्यान उपयोग रहे तो उसमें शान्ति नहीं मिलती है। शान्त-आत्मा का एक स्वाभाविक गुण है और यह आत्मास्वयं अपने आप स्वभावसे शान्त है, पर अपनेको शान्त स्वभावी न मानकर शान्ति लेनेके लिए जो अन्य पदार्थों पर उपयोग दौड़ाया जाता है बस यही इसके क्लेशका कारण है। तीन लोकका भी वैभव एकत्रित होकर निकट आ जाय तब भी उस परपदार्थसे आत्माको शान्ति नहीं आ सकती है। आत्माका स्वभाव ज्ञान और आनन्दमय है, इसकी जो पुरुष श्रद्धा नहीं करता, वह परकी आशा रखकर केवल व्याकुल ही रहा करता है।

आशा और आशाके अभावके परिणामोंका अन्तर हे शान्तिके इच्छुक पुरुष! तू प्रमाद मत कर और शान्तिका साधक जो समतापरिणाम है उस समतापरिणामको अपने आपमें घटित कर। भैया! इस धनसे तेरे को कुछ शान्ति न मिलेगी। यह धन तो आशारूपी अग्निको प्रज्वलित करनेके लिए ईंधनके समान है। जैसे ईंधन पा पाकर अग्नि कभी शान्त नहीं हो सकती है? इसी प्रकार धन-वैभव पा पाकर यह आशा-अग्नि कब शान्त हो सकती है? बल्कि यह आशाका गड्ढा इतना विचित्र है कि ज्यों ज्यों वैभव समाता जाय त्यों त्यों यह गड्ढा बढ़ता जाता है। इस जीवको दुःखी करने वाला कोई नहीं हैं, यह जीव ही अपने ज्ञानको जब संभाल नहीं पाता है, अपने आपके स्वरूपमें मग्न होनेका यत्न नहीं करता है तब इस जीवको क्लेश होता है। हम आपका जो यथार्थस्वरूप है वह स्वरूप भगवंतमें दीखेगा। भगवान् केवलज्ञानी कहलाते हैं। केवलज्ञानी का शुद्ध अर्थ तो यह है कि वह केवल ज्ञान ज्ञान ही कर रहे हैं, रागद्वेष संकल्प विकल्प को नहीं कर रहे हैं। इसका फल यह होता कि जो केवल ज्ञान ही ज्ञान करे, रागद्वेष मोह परिणाम को साथमें न ले, उसका यह ज्ञान इतना विशाल बन जाता है कि तीन लोक की सम्पदा भी ज्ञात हो जाती है।

आशावह्नि यह धन आशारूपी अग्निको प्रज्वलित करनेमें ईंधन की तरह है। इस बात को अधिक क्या समझाना है ? सबके चित्तमें कोई न कोई तृष्णा सम्बन्धी विकल्प होता है। अग्निकी तरह अब भी तृष्णा का परिणाम बढ़नेकी ओर चल रहा है। जब अत्यन्त साधारण स्थिति थी तब

तो थोड़ा ही सोच और चिन्तन चलता था। थोड़े धनका नाम लेकर कह दिया कि इतना धन हो जाय तो सब कष्ट एकदम समाप्त हो जायेंगे। और जब उतना हो गया तो भी कष्ट समाप्त नहीं होता है, उससे आगेके धनको पाने की आशा लग जाती है। अरे भाई, इस धनसे आत्माको शान्ति नहीं मिली करती है और देख कम धन होने वाले पुरुष यत्र तत्र सुखी नजर आते हैं, उनको तृप्ति है। जिसका मन तृप्त है वही वास्तवमें सुखी है। धनके होनेमें सुखका निर्णय नहीं है। इस कारण एक ही अपने आपमें निर्णय बनावो कि धनकी तृष्णा करना तो बिल्कुल व्यर्थ है ही। हमारा तो इस शरीरसे भी न्यारा बननेका प्रोग्राम है।

अवश्यकरणीयता भैया! ऐसा कौनसा कार्य है जो आपको अवश्यमेव कर लेना चाहिए? वह कार्य है केवल रह जाना। मैं आत्मा अपने आप जितने स्वरूपमें हूं, उतना ही रह जाऊं, बस यही सर्वोपरि व्यवसाय है। शरीरसे भी न्यारा केवल निजस्वरूपमात्र रह जाऊं, यह ही भावना ज्ञानी पुरुषके होती है, जबकि अज्ञानीके यह भावना रहती है कि मेरे धन बढ़ जाए, परिजन बढ़ जायें। ज्ञानी पुरुष तो यह सोचता है कि मेरे शरीरका भी सम्बन्ध न रहे, मैं जो हूं वही रह जाऊं। तो जहां ऐसी उत्कृष्ट भावना करनी चाहिए, वहां धन आदिकके विकल्प और तृष्णा भाव बढ़ाना, यह तो बिल्कुल अयोग्य है। धर्मका पालन इसी भावनामें बसा हुआ है कि अपने आपको सबसे न्यारा केवल स्वरूपमात्र रहने देनेकी भावना ही सर्वोत्कृष्ट भावना है।

अनर्थकारी अनुराग हे मित्र! और भी देख निरन्तर पापके प्रवर्तनहारे ये सम्बंधीजन, मित्रजन और बंधुजन इनका ममत्व करके तू क्या फायदा पा लेगा? दूसरे जीवोंको प्रसन्न रखनेके लिए, उनका लालन पालन पोषण करके के लिए यहां ये व्यामोहीजन कष्ट करते हैं। धनका तो विशेष संचय करके रख जाना चाहते हैं, पर यह तो बताओ कि जिनके प्रति तेरा इतना अनुराग हो रहा है, वे तेरे आत्माका कौनसा हित कर देंगे? पर जब मोह समा जाता है तो यह कई रूपोंमें फूटता है। कुछ लोग तो घरके सब लोगोंको प्रसन्न रखनेकी तृष्णा बनाते हैं, कुछ लोग धनवृद्धिकी होड़को मचाया करते हैं। कुछ लोग चाहे धनकी हानि भी हो जाय, जनहानि भी हो जाए, पर मेरा यश रहे, इसके लिए दृढ़ संकल्प बनाये हुए हैं, पर हे आत्मन्! तेरे लिये तो ये सभी असार हैं। धन बढ़ गया है तो तेरे आत्मामें आनन्द तो न आ जायेगा, वह तो विकल्पका ही कारण बनेगा। परिजन प्रसन्न हो गये तो तुझे वे स्वर्ग अथवा मोक्ष तो न दे देंगे। यह सब तो तेरे परिणामों के हाथकी बात है।

यशोमाया भैया! यश बढ़ गया, दुनियाके लोगोंने कुछ थोड़ा सा भला कह दिया तो क्या इससे तेरेको शान्ति मिल जाएगी? ये तो तेरी अशान्तिके ही कारण बन रहे हैं। जैसे निन्दा क्लेशका कारण है ऐसे ही प्रशंसा भी क्लेश का कारण है। निन्दा सुनकर जैसे लोग क्षोभमें आ जाते हैं, इसी प्रकार प्रशंसा सुनकर भी लोग क्षोभमें आ जाया करते हैं। कर्तव्य और अकर्तव्यका प्रशंसा श्रवणमें भी विवेक नहीं रहता है। यदि सब लोग भी मिलकर तेरा यश गा दें, फिर भी हे आत्मन्! तेरा किसी भी परजीवके कुछ परिणमन से हित न होगा। तू प्रमादी मत बन, अर्थात् परिजन और वैभवमें अपना

मन बसा कर तू मोक्षमार्गसे वंचित मत हो। अपने आपको संभाल। इन परिजनोंके ममत्वसे तेरी कुछ सिद्धि न होगी।

मोहकी परिहार्यता पुराण और इतिहासमें पढ़ा है कि राजाओं और बादशाओंने अपने अपने समयमें कैसी घरकी, सुख सुविधा की व्यवस्था बनायी थी और अपने समयमें एक बड़े ऐश्वर्यका पसारा किया था, लेकिन उनका भी कोई दूसरा जीव परिजन सहारा हो सका है क्या? यह जीव तो केवल असहाय हैं, इसका तो यह खुद ही सहाय है। अंतरंगमें भली बातको सोचो तो प्रसन्नताका दर्शन होगा और खोटा विचार बनाया तो फिर क्लेश ही मिलेंगे। दुख भोग लेना और सुख पा लेना आदि दोनों बातें अपने वश की हैं। इस मोहको ढीला करो, मोह रंच भी न रहने पाये। यद्यपि गृहस्थी है, अनुराग है, राग बना है, काम बिना गुजारा नहीं तो काम होने दो, पर अंतरंगमें श्रद्धा तो न बनाओ कि मेरा गुजारा, मेरा हित इन परिजनोंके प्रसन्न रखनेमें है। ममत्वसे तुझे कुछ भी सिद्धि और साधना प्राप्त नहीं हो सकती है।

देहप्रीतिकी परिहार्यता देख, यह देहमोह करने लायक नहीं है। इन मायामय देहोंको तू क्यों अपने चित्तमें बसा रहा है? विकारकी स्थिति में विकार ही उत्पन्न होते रहते हैं, शांति नहीं आ सकती है। इस देहसे तू प्रीति तज दे। यह देह सदा रहनेको भी नहीं है। घरमें बसे हुए जीवोंको और धन सम्पदाको अपनी सुख सुविधा का साधन माना है, पर इनका आदर न करके एक अपने आत्माका ही आदर करो, किन्हीं बाह्यपदार्थोंमें हितकी आशा न करो, मोक्षमार्गमें प्रमाद मत करो।

प्रयोजनीभूत सप्ततत्व देखो कि जैन शासनमें सात तत्व कहे गए हैं जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष। इन ७ तत्वों में दो सत् पदार्थ जीव और अजीव हैं और शेष पांच जीव और अजीवके संबंधके परिणामन हैं। जब जीव रागादिक भाव करता है तब वहां कर्म आते हैं। जीव रागद्वेष आदि भाव करता है। पूर्वबद्ध कर्मोंके उदय अथवा उदीरर्णका निमित्त पाकर। जब यहां रागभाव हुआ तो कर्मोंका आश्रव होता है। जीवमें कर्मोंके आनेका नाम आश्रव है। जीवके आश्रव होता है तो चूंकि विषयकषायोंके परिणाम इसमें बसे हुए हैं, इस कारण कर्मोंका बंध हो ही जाता है। यों ये आश्रव और बंध दो परिणामन इस जीवमें संसारके कारणभूत हैं। जब जीव अपने आपको संभालता है, मोहमें नहीं लगने देता है, सबसे न्यारा ज्ञानस्वरूपमाव अपनेको निरखता है, तब इसके कर्मोंका आश्रव रूक जाता है, सम्बर तत्व हो जाता है। इस प्रकारका निष्कषाय निःरंग व निस्तरंग आत्माका परिणाम होता है, तब अनेकों भवोंके बंधे हुए कर्म भी झड़ने लगते हैं यह निर्जरा है और जब सब झड़ जाते हैं, तब इस जीवको कर्मोंसे मोक्ष मिल जाता है अर्थात् कर्मोंसे छुटकारा हो जाता है। पर इन सब स्थितियों में और मूलमें करने की बात यह है कि अपने शाश्वत शुद्धस्वरूपको निरखो और उसी स्थिति में अपनी रूचि करके वहीं रमण करो। इस प्रकार अपने आपके आत्मतत्वमें रमण करनेका फल सदाके लिए ही निराकुलताका रूप हो जाना है।

मोहकी असास्ता मोहमें कोई सार नहीं रक्खा है। मोहका फल केवल क्लेश ही क्लेश है।

बचपनसे लेकर बड़ी अवस्था तक तो मोहके फलमें क्लेश ही भोगा है। इससे शांति नहीं मिलती। अब तू प्रमाद मत कर अर्थात् अपने आत्माको शुद्ध निरखनेमें आलस्य मतकर। सबसे निराला केवल ज्ञान प्रकाशमात्र अपनेको देख। एक ही कुलमें उत्पन्न हुए पुरुष अपने अपनेही परिणामोंके कारण जुदी-जुदी गति पाते हैं। रावणके कुलमें रावणके ही अनेक भाई और पुत्र मोक्ष पधारे हैं और रावण स्वयं नरकमें मौजूद है तथा रावण उन सबमें प्रमुख था। तो यहां जो भी परिणाम किया जाता है, वह निष्फल न जायेगा, फल अवश्य देगा, चाहे जब दे। यह सदा ध्यानमें रखना चाहिए।

जो रौद्रध्यान करके मौज माना जा रहा है, उसका भी निकटकाल में ही फल मिलेगा। कोई यह मत समझो कि किये का फल न मिलेगा। आज न मिलेगा तो और किसी समय सही, पर फल अवश्य भोगना पड़ता है। हां यह बात अवश्य है कि कोई कोई विशिष्टज्ञानी वैराग्यी बने तो कर्म झड़ जाता है। जब कोई दूसरा जीव अपना साथी नहीं है, सब जुदे जुदे हैं, तब फिर किसलिए अपने आपको अन्याय में फंसाकर अपनेको कष्टमयी बनाया जा रहा है? अपने आप पर कुछ करुणा करो और कष्टमें लगनेका रास्ता मत चलो।

जीवके बंधनका मूल कारण विपरीत आशय जीवको भी संसारमें फंसानेके तीन कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है। जैसे प्यासा हिरण जिसे नदीकी रेतीली भूमिमें यह विश्वास हो जाए कि यह तो पानी है। वह इस विश्वासके कारण ऐसा भागदौड़का परिश्रम करेगा तो उसे प्यासा मरना पड़ेगा। ऐसे ही परजीवोंमें, धनपरिग्रहमें यह हितरूप हैं, इससे हमारा बड़प्पन है, इस प्रकार की आशा रक्खोगे तो इसके फलमें तो क्लेश ही क्लेश भोगना होगा। तू मिथ्याश्रद्धान्को मत कर। सबसे न्यारे ज्ञानानन्दस्वरूप अपने आपकी श्रद्धा करो, अन्यथा तुम्हारा कोई मददगार भी न होगा।

प्रभुपूजनमें आत्मशिक्षण हम भगवान्की पूजा और वंदना करने रोज जाते हैं, वहां यही सबक तो सीखते हैं कि प्रभु तब सुखी हुए हैं, जब सबसे न्यारे केवल अकेले रह गये हैं। जब तक ये भी घर में थे, रागद्वेष में थे तब तक इन्हें सत्यथ नहीं मिला था। संसारी जनोंकी भांति ये भी कष्टमें थे। प्रभुका कष्ट कैसे मिटा कि उनके अनन्तज्ञान प्रकट हुआ, इसका मूल उपाय उन्होंने यह किया कि सर्वविभाव कर्मों व सर्व परपदार्थोंसे भिन्न केवल शुद्ध ज्योतिमात्र अपने को देखा। जिस उपाय से चलकर ये प्रभु हुए हैं वही उपाय हम आपको भी करना चाहिए। यह शिक्षण मंदिरमें प्रभुके दर्शन करके हमें ग्रहण करना चाहिए।

कर्तव्यविवेक हिम्मत की बात है कि शुद्ध ज्ञान बनाए रहें। और अपने कर्तव्यकी सुध रक्खें यह बड़े साहसकी बात है। एक अकृतपुण्यकी कथा प्रचलित है। अकृतपुण्यके पैदा होते ही घरमें कलह होने लगी। वह राजपुत्र था, किन्तु बड़े-बड़े अनर्थ होने लगे। प्रजाने मिलकर कहा महाराज! यह बालक जब तक अपने नगरमें रहेगा तब तक नगरीमें चैन नहीं रह सकता। यह पापी व्यसनी पूर्वजन्मका है। इसे तो जनताके हितके लिए अलग कर दीजिए। यदि आप इसे घरमें रखते हैं तो जो कुछ अनर्थ हो रहे हैं, वे होते रहेंगे। राजाने अकृतपुण्य को अलग किया।

देशके बाहर पहुंचा दिया, मनमाना गाड़ियोंमें भरकर सामान भिजवा दिया ताकि उसे तकलीफ न हो, पर हुआ क्या कि सारा वैभव अंगारेके रूप में परिणम गया और सारा अनाज छोटे-छोटे छिद्रोंसे निकल कर खत्म हो गया। जिसका भाग्य नहीं है उसके लिए आप क्या कर सकेंगे? जिसके भाग्यमें है उसके लिए भी आप क्या कर रहे हैं? सभी जीव अपने-अपने उदयके अनुसार अपना पोषण और जीवन चलाते हैं। तू उनके प्रति ममत्वभाव, चिन्ताभाव को मत बढ़ा। अपना होनहार देख। अपना ही देख सकता है तू, दूसरे जीवका कुछ करनेमें तू समर्थ नहीं है।

स्वका स्वमें कर्तव्य रावण और विभीषणका बहुत बड़ा अगाध प्रेम था। जब किसी साधुसे विदित हुआ कि मेरे भाई रावणकी मृत्यु राजा दशरथ के पुत्र और राजा जनककी की पुत्री के निमित्तसे हो जायेगी, तो उसने अपने भाई के प्रेममें आकर यह निर्णय किया मनमें कि राजा दशरथ और जनकका सिर ही न रहने देंगे, फिर कहाँसे पुत्र होगा और कहाँ से पुत्री होगी? मेरे भाईकी जान बच जायगी। यह समाचार दोनों जगह विदित हो गया। तो इनके मंत्रियोंने लाखका पुतला ठीक उसकी शकलका किसी प्रकार बना दिया और ये दोनों गुप्त हो गये। कई महीने तक उद्योग करके विभीषण ने अपना कर्तव्य समझकर उन दोनोंका (पुतलोंका) सिर काट लिया और समुद्रमें फेंक दिया। रावणको हर्षमयी समाचार बताया। अब दशरथ और जनक, ये दोनों मरे तो थे नहीं। होनहार बचनेका था। सो बच गए। अन्तमें हुआ भी, वही जानकीके हरणके प्रसंगको लेकर रावण और राममें महायुद्ध ठन गया। रावणकी वहाँ मृत्यु हुई। तो जो विभीषण रावणको इतना प्यारा था वह जानकी के हरण किए जानेसे रावणका साथ छोड़ देता है। रावण भक्त और विद्वान् था। जब उसने परस्त्री के हरणका अपराध किया तो साथ छोड़ दिया। मतलब यह है कि जिनका विश्वास करते हो कि ये मेरे जीवन भर तक साथ निभायेंगे, उनसे ऐसी आशा न रखो। उदय जब तक भला है, हमारा आचार-विचार जब तक भला है तब तक दो चार पुरुष बात भी पूछ लेते हैं। इस जगत्की यों असारता जानकर अपने आत्माके अकल्याण की प्रवृत्ति मत करो। अपने आपकी निर्मलता बनाओ।

**आदावेव महाबलैरविचलं पट्टेन बद्धा स्वयम्,
रक्षाध्यक्षभुभासिपञ्जरवृता सामन्तसंरक्षिता।
लक्ष्मीर्दीपशिखोपमा क्षितिमतां हा पश्यतां नश्यति,
प्रायः पातितचामरानिलहतेवान्यत्र काऽऽशा नृणाम्॥६२॥**

लोकलक्ष्मीकी अस्थिरता लोक समागमकी इसमें अनित्यता बतायी जा रही है। बड़े-बड़े राजा महाराजा जिनके कोटि सुभटों बराबर बल था, उन्होंने अपनी राज्यलक्ष्मीको स्थिर रखनेके लिए पट्ट बांध लिया, लेकिन यह राज्यलक्ष्मी उन बड़े-बड़ों के भी स्थिर नहीं रह सकी। इस राज्यलक्ष्मी को सदा रखनेके लिए बड़े-बड़े श्रीमंत सुभट जिनमें महान बल था, उनके द्वारा रक्षा करायी गयी, फिर भी यह राज्यलक्ष्मी इतनी चंचल है कि लोगों के देखते देखते ही विलयको प्राप्त हो गयी। कहो राज्याभिषेकके चमर ढोले जा रहे हों और चमर दुलते-दुलते के बीचमें ही राज्यलक्ष्मी नष्ट हो

जाय ऐसी भी घटना हो जाती है, श्रीराम बलभद्रका यही हाल हुआ। राज्याभिषेक हो रहा था, चमर ढोले जा रहे थे, सिंहासन पर बैठे हुए सारी क्रियाएँ की जा रही थीं, इतने में यह आदेश हुआ कि राज्याभिषेक भरतका होगा। बस श्री रामकी राज्यलक्ष्मी तो नष्ट हो ही गयी, अब उन्होंने विवेक से विचार कर बनवास स्वीकार किया। वह राज्यलक्ष्मी देखते-देखते विलीन हो जाती है। तब और धन सम्पदाका तो विश्वास ही क्या है? आज शाम को है, कल सुबह न रहे।

लोकसमागमकी अनित्यता इस धन सम्पदाके पीछे या वैसे ही इन प्राणोंका भी विश्वास नहीं है। आज शामको प्राण हैं, कल सुबह न रहें, ऐसा अनित्य यह समस्त संसार है। ऐसी अनित्यता आंखोंसे भी देखते जा रहे हैं, फिर भी वैभव और परिजनसे ममत्व भाव नहीं हटता है। दीपशिखा की तरह यह राज्यलक्ष्मी, धन सम्पदा आदिक चंचल हैं। जैसे दीपकी लौ का क्या विश्वास है? किसी क्षण बुझ जाय! जरासा ही पवन चली कि बुझ जाती है, ऐसे ही इस राज्यलक्ष्मी, धन वैभव, जीवनका भी कोई विश्वास नहीं है, आज है कल न रहे। इस कारण जो विवेकी पुरुष हुए हैं उनमें से कई तो इस राज्यलक्ष्मीको अंगीकार किए बिना ही सकल संन्यास कर चुके, और अनेकोंने इस राज्यलक्ष्मीको अपनी इच्छासे त्याग कर आत्मसाधना की।

निर्मोहताका मार्ग राजपुत्र सुकौशल अपने पिता कीर्तिधरके विरक्त होनेके बाद बहुत समय तक वे घरमें भली प्रकार रहे। राज्य भी उन्हें मिला किन्तु कुछ ही समय बाद उन्हें विरक्ति आयी। वे सकल संन्यासी हुये, लोगों ने समझाया कि तुम अभी नवयुवक हो, अभी विवाह हुआ। रानीके गर्भ है, बच्चा हो जाने दो, उसका राज्याभिषेक करिये, नाममात्रको ही उसका राज्यविधान बनाकर फिर विरक्त हो जाना। तो सुकौशलके चित्तमें इतना भी न आया और यह कह दिया कि जो भी बालक गर्भ में है उस बालकको अभीसे राज्य तिलक कर दिया। कैसे-कैसे विवेकी पुरुष हुए हैं। मोह भाव जब नहीं रहता है तब ये सब बातें सहज सुगम हो जाती हैं।

पदार्थोंका परस्पर पार्थक्य भैया! मोहसे कुछ पूरा भी नहीं पड़ता। चित्त आकुल व्याकुल ही रहता है। कहां मोह करते हो? जगत्के सभी जीव एक समान स्वरूप वाले हैं। जो तुम हो, सो सारे जगत्के प्राणी हैं, और स्वरूपदृष्टिसे तुम्हारे स्वरूपसे सभी जीव पृथक हैं। चाहे वे एक झोंपड़ीमें उत्पन्न हुए हों और चाहे आजके माने हुए गैर हों, सभी जीव तुम्हारे स्वरूपसे अत्यन्त जुड़े हैं। पर मोहकी कैसी प्रेरणा है कि कुछ थोड़ा सा विशेष लोकसम्बन्ध पाकर परिचय हुआ तो वह परिचय और दृढ़ हो जाता है, और फिर उससे मोह बढ़ता है। उसमें यही निरखा जाता है कि मेरे तो यही सब वैभव सम्पदा परिजन हैं। मैं शुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ, इस ओर दृष्टि नहीं जाती है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे सत् और परिपूर्ण है। किसी पदार्थका किसी अन्य पदार्थके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है इस ओर दृष्टि ही नहीं जाती।

आत्मदेवपर अन्याय अहो कितना अनर्थ किया जा रहा है मोह में अपने आप पर? यह मैं हूँ प्रभुके स्वरूपके समान ज्ञानानन्दस्वरूप वाला और जिस प्रकार प्रभु ज्ञानसे समस्त लोकालोकको

जानते हैं और आनन्द शुद्ध विकाससे शाश्वत आनन्दमग्न रहते हैं ऐसे ही सबको जाननेका और परिपूर्ण आनन्द पानेका हमारा स्वरूप है, लेकिन इस ओर दृष्टि कहां है? इसका तो यह बाहर स्थित मलिन मनुष्योंका समूह ही देवता बन रहा है। लोग कहते हैं कि भगवान् को प्रसन्न करना यही धर्म है, बजाय इसके यह मोही मानवसमाजको प्रसन्न करनेमें जुटा हुआ है। इसकी दृष्टिमें मैं महान् कहलाऊं, इस प्रकार अपनी महत्ता स्थापित करनेके लिए यह धन जोड़ा जा रहा है। अरे यह जीवन धन संचयके लिए नहीं, किन्तु धर्मपालनके लिए है। जो चीज अनादिकालसे अभी तक नहीं प्राप्त हुई ऐसे अपूर्व तत्वको पानेके लिए अपना जीवन लगावो, इसके अतिरिक्त अन्य कार्योंके लिए अपनी जिन्दगी न समझें।

राज्यलक्ष्मीकी अरक्ष्यता राज्यतिलक होते समय युवराजके बुर्जुग, उनके सेवक सिरमें एक पट्टी बांधते हैं, वह पट्टी मानों इसलिए बांधी जा रही है कि यह राज्यलक्ष्मी दृढ़तासे हमारे पास रहे, पर क्या वह रह पाती है? यह तो दीपककी लौके समान चंचल है, सब कुछ चंचल है। इस शरीर का भी विश्वास नहीं। जवानीका भी क्या विश्वास? आखिर बूढ़ा होना ही पड़ता है। जो वृद्ध पुरुष हैं वे आजके जवानोंसे भी बड़े हृष्टपुष्ट थे। आज उनकी यह दशा है। इससे भी अधिक दयनीय दशा इन युवकोंकी होगी वृद्धावस्थामें। यह अवसर्पिणीकाल है। इसमें बुढ़ापेका जल्दी आना, मृत्युका जल्दी आना, ये सब बातें चला करती हैं। ऐसे अनित्य लोकमें बस कर एक नित्य निज प्रभुको प्रसन्न कर सकनेका काम न कर पाया तो यह जीवन व्यर्थ है।

नित्यकी दृष्टिमें अनित्यभावना की सफलता लोकमें बुद्धिमान पुरुष वह होता है जो साधारण खर्च करके कोई विशेष लाभ उठा ले। हम आप का विवेक इसमें है कि इस अनित्य समागमको पाकर इसका ऐसा उपयोग करें कि कोई ध्रुव लाभ उठा लें। अनित्य भावनामें यह बताया जाता है और पढ़ाया जाता है 'राजा राणा क्षत्रपति, हाथिनके असवार। मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार।' एक दिन सब कुछ विघट जायेगा। यहां सब कुछ अनित्य है, पर यह तो बताओ कि कुछ नित्य भी है या नहीं? अपने आपसे सम्बन्धित जितनी भी संगति है वह सब अनित्य है। यह शरीर भी अनित्य है, पर यह तो बताओ कि कुछ नित्य भी है या नहीं? अपने आपसे सम्बन्धित जितनी भी संगति है वह सब अनित्य है। यह शरीर भी अनित्य है, और जो कर्म बंधे हैं पुण्य अथवा पापके, वे भी अनित्य हैं। अन्तरङ्गमें जो कुछ विचार उठते हैं वे भी अनित्य हैं, पर नित्य भी कुछ है या नहीं? इस पर दृष्टिपात करो। है नित्य। अरे अपने आपमें जो नित्य है उसकी जिसने परख की और उस नित्यकी भक्तिमें जिसने अपना सर्वस्व जीवन लगाया, वे ही साधु पुरुष परमात्मा हुए हैं, अरहंत हुए हैं। वह नित्य चीज क्या है? एक चैतन्यस्वभाव। चैतन्यस्वभाव मात्र मैं हूं, चैतन्यस्वभावपर जो कुछ औपाधिक घटना झलक रही है वह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो चैतन्यमात्र हूं। इसकी भावनासे अनित्यभावनाकी सफलता है।

नित्यकी दृष्टि बिना विकारमें ही रमण नित्य ध्रुव सदा रहने वाले चैतन्यप्रभुकी ओर जो दृष्टि देता है और इस ही चैतन्य का पूर्ण विकास जिनके हुआ है ऐसे परमात्मा पर दृष्टि देता है उसे

ज्ञान बढ़ता है, वैराग्य की पुष्टि होती है। जो सुख, ज्ञान और वैराग्यमें है वह सुख तीन लोककी भी सम्पदा एकत्रित हो जाये उसमें भी नहीं है। किन्तु क्या करें? जैसे जिसने जीवन भर तैल खाया हो, तिलका तैल ही जिसे मीठा लग रहा हो, कभी घी देखा ही न हो तो उसको घी बुरा मालूम होता है। उसकी दृष्टिमें तो तैल ही मिष्ट है। इसी प्रकार जिसने आत्मीय परम आनन्दका अनुभव न किया हो, उसके लिए ये पञ्चेन्द्रियोंके विषयसाधन ही रुचिकर मालूम होते हैं। इन विषयोंमें यह जीव अनादिकालसे भटकता चला आया और जन्म मरण कर रहा है, फिर भी इसको तृप्ति नहीं होती है। अनेक भवोंमें बड़े-बड़े वैभव पाये। फिर भी इसे संतोष नहीं हुआ। अब आज कुछ थोड़ीसी सम्पदा पर क्या इसे संतोष होगा?

एकत्वभावनाका प्रकाश भैया! हमारी प्रभुपूजा तब सफल है जब हम अपने आपको अकेला निरखनेमें निरत हों। यदि अपने आपका अकेलापन अन्तरमें न अनुभवा जा सके तो हम धर्मपालनके पात्र नहीं हैं, सब दिखावा है। अपने परिजन, इष्टजन सुखी रहें इतनी अभिलाषाकी पूर्ति के लिए एक श्रम किया जा रहा है। जितना अपने आपको अकेला देखते जायेंगे उतना ही समझो कि हम धर्मपालन कर रहे हैं। प्रथम तो ऐसा अकेला देखो कि मैं शरीररूपी नहीं हूं, शरीर जुदा है, मैं जुदा हूं। यह आत्मा इस शरीरको छोड़कर कहीं चला जायेगा। जड़में जड़का काम होता है, मुझ आत्मामें मेरा काम होता है। शरीरका काम इतना ही है कि वह कोई न कोई रूप, रस, गंध और स्पर्श बदले और किसी प्रकारकी हलन चलनकी क्रियाएँ करता रहे। ये एकताएँ इस शरीरकी हैं, किन्तु मुझ आत्मा में रूप, रस, गंध, स्पर्श तो है ही नहीं। यह अमूर्तिक एक चैतन्य पदार्थ है। इसमें कला यह पड़ी है कि कुछ न कुछ यह जानता रहे और आनन्द गुणका भी कुछ न कुछ परिणमन चलता रहे। यह ज्ञानानन्द रूप परिणमन करनेकी हम आपके आत्मामें कला है। ऐसा अपने आपको अकेला देखो।

आत्मभावना मनमें ऐसी श्रद्धा न बनाये रहो कि मैं तो इतने परिवारसे भरपूर हूं, इतने संतानों वाला हूं, ऐसी इज्जत प्रतिष्ठा पोजीशन वाला हूं, इतने वैभव वाला हूं, ऐसा विश्वास न बनाओ, क्योंकि यह आत्मा ऐसा वास्तवमें है नहीं। अपने आपको इन सब वैभवसे न्यारा केवल ज्ञानानन्द स्वरूप देखो। यह चीज बनेगी कैसे? बार-बार ऐसी ही भावना करो तब यह चीज बनेगी। जिसकी भावना जड़ सम्पदामें ही बराबर चल रही है, उसको इस शुद्ध आत्माकी भावना कहां से होगी? बार-बार यह भावना बनाओ कि मैं शरीरसे न्यारा केवल चैतन्यस्वरूप हूं। मैं सबसे जुदा मात्र ज्ञानानन्दस्वरूप हूं, ऐसी बार-बार अपने अपमें भावना जगाइए। जिसकी ऐसी धुन बनेगी, जिसकी भावना बनेगी उसके दर्शन नियमसे होंगे। यह सब भेदविज्ञानके बलसे काम बनेगा। सबसे न्यारा अपने आपको समझते रहनेसे यह काम बनेगा।

धर्मसम्पर्कका ऐश्वर्य भैया! इस सम्पदाको कोई जीव कमाता नहीं है। यह तो पूर्वकृत जो पुण्य है उसका फल है। किसीके अधिक है, किसीके कम है, किसीके है ही नहीं, कोई तरसता है, ये सब

पूर्वकृत पुण्य-पापके फल हैं। तो जिसे पुण्यके प्रभावसे यह सम्पदा मिली है, उस पुण्यको स्थिर बनाये रहना सो तो ज्ञानका एक मध्यम कदम है। पापकर्मोंमें, व्यसनों में पड़कर इस पुण्यको बरबाद करके छोटे परिणाम करके, रात दिन शारीरिक परिश्रम करके धन सम्पदाकी वृद्धि करना यह उपाय सही उपाय नहीं है। मैं आत्मा एक ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ सबसे प्रथम ऐसा ज्ञानानुभव करके जो अनुभव बनता है उस अनुभवमें यह सामर्थ्य है कि भव-भवके संचित पापकर्म भी दूर हो जाते हैं, और चूंकि जब तक यह सरागी जीव रहता है तब तक ऐसा विशिष्ट पुण्य बंधता है इस ज्ञानीके कि चक्रवर्ती जैसी सम्पदा उस ज्ञानी पुरुष को मिलती है।

ज्ञानोपासना हम आपका यह कर्तव्य है कि प्रभु-भजन और आत्माकी उपासना इसके लिए कुछ अधिक समय दें, यदि इस वैभवका सदुपयोग हम आपके ज्ञान प्रचारमें लगता है तो ऐसा सदुपयोग करनेमें हम प्रसन्न रहा करें। जिस किसी भी प्रकार हो हम आप अपने स्वरूपके निकट बस सकें ऐसा यत्न करें। जब तक निर्वाणका साक्षात् मार्ग नहीं मिलता जब तक भेदविज्ञानकी भावना बनाए रहें। जैसे घर गृहस्थीमें रात-दिन धनी होनेकी भावना बनाये रहते हैं तो उसका असर क्या पड़ता है? असर है क्लेश है और संक्लेश। उस भावनाके प्रयत्नमें कुछ न कुछ जुड़ भी जाता है। यदि हम आप इस ज्ञानस्वरूप अपने आपकी भावना बनाएँ तो कैसे प्रभुके दर्शन होंगे? जिनकी हम मूर्ति बनाकर पूजते हैं, उनका स्वरूप भी तो जानिये क्या है? तब तो प्रभुकी सच्ची पूजा होगी। उनके स्वरूपसे तो अनभिज्ञ रहें और पूजा कर लेनेका नाम बनाएँ तो यह नहीं हो सकता।

परमात्मत्वकी उपासनार्थ दर्शन प्रभुका स्वरूप है शुद्ध ज्ञान, शुद्ध दर्शन, शुद्ध आनन्द और अपने आपके स्वरूपको अपने आपमें संभालने का शुद्ध सामर्थ्य। यों अनन्त ज्ञान दर्शन, शक्ति आनन्द करके समर्थ यह केवल आत्मा परमात्मा है, और ऐसा ही स्वरूप अपना न विचारा तो उस परमात्माका स्वरूप हम यथार्थरूपसे जान नहीं सकते। इस लिए अपने आपमें यह भावना बनावो समस्त इन्द्रियोंको संयत करके, अपने अन्तरमें दृष्टि गड़ाकर, ऐसा निरखो कि मैं एक ज्ञानमात्र हूँ। जो आनन्दको साथ लिए हुए है ऐसी अपने आपकी अतुल सामर्थ्य सहित अपनेको भाइये। अपने आपको ऐसा सोचिए कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, सबसे जुदा हूँ। ज्ञानका जो स्वरूप है केवल जानन, उस जाननस्वरूपको ही नजर में रखकर 'मैं ज्ञानस्वरूप हूँ' ऐसी बारबार भावना भायें तो केवल ज्ञानमात्र परिणमन हो जायेगा। उस स्थितिमें जो आनन्द होगा वही वास्तविक आनन्द है, और उस ही आनन्दमें यह सामर्थ्य है कि संकटोंकी जड़ भी मिटा दे।

यथार्थश्रद्धामें उद्धारकी अवश्यम्भाविता भैया! जिस शरीरसे हम प्रेम करते हैं वह सब संकटोंकी जड़ यह शरीर है। भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी, शोक, चिन्ता ये सब इस शरीरके ही सम्बन्धसे बने हुए हैं। इस शरीरसे विरक्त रहनेमें आत्माको शान्तिका मार्ग मिलेगा। इस शरीरसे प्रीति करने से शान्तिका मार्ग न मिलेगा। हम जितनी बाहरमें दृष्टि बनाते हैं, अन्य अन्य चीजोंमें अपना उपयोग फंसाते हैं, उनसे व्यवहार बनाते हैं उतना ही हम आपका अकल्याण है। घर गृहस्थ है, गृहस्थके काम

करना है, ठीक है, कीजियेगा, मगर श्रद्धा सही बनाते हुए भी तो गृहस्थीका पालन हो सकता है। श्रद्धा विपरीत क्यों बनायी जाये? आप सबसे जुदा हैं कि नहीं जुदा हैं, तो मान लो, और ऐसा मानते हुए भी काम जो कुछ करना पड़ रहा है करियेगा। कोई पुरुष अपनेको जुदा न मानकर मैं इन परिजनों रूप हूँ ऐसी खोटी श्रद्धा बनाकर उन्हीं कार्योंमें पड़े तो उसकी दुर्गति है। श्रद्धा सही बनावो। पूजामें आप रोज पढ़ते हैं कीजे शक्ति प्रमाण, शक्ति बिना श्रद्धा धरे। ध्यानत श्रद्धावान् अजर अमर पद भोग करे। यदि आप तप, व्रत नहीं कर सकते हैं तो श्रद्धा तो सही बनाये रहें, मैं सबसे न्यारा ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, यह भावनामें रहेगा तो कभी नियमसे मोक्षपद प्राप्त होगा।

दीप्तो भयाग्रवातारि दारूदरगकीटवत्।

जन्ममृत्युसमाश्लिष्टे शरीरे बत सीदसि॥६३॥

सम्पदाकी अस्थिरता इससे पहिले छंदमें यह बताया था कि बड़ों-बड़ोंके भी राज्यलक्ष्मी सदा नहीं रहती। पुराने इतिहासोंकी तो बात क्या कहें? आज कल भी साफ दिख रहा है कि कोई तो जो शाम तक धनी था वह सुबह तक धनी न रह पाया। कल रातकी ही यहां की घटना सबको विदित है कि कल तक वह धनी था, सुना है कि डाकुओंने उसे जानसे भी मार दिया। यह धन सम्पदा सुखके लिए नहीं है, यह तो कल्पनासे सुख पैदा करता है। कितना ही धन हो, कल्पना करते जावो और दुःखी ही होते जावो, आराम नहीं मिलता। कभी-कभी ४ आदमियोंके बीच बैठकर कुछ अपनी सम्पन्नता अहंकारमें मौज मान लिया जाता है, किन्तु मौज यह मान लिया जाता है, किन्तु यह मौज भी अंधेरा से भरा हुआ है। अरे क्यों मायारूप प्राणियोंके लिए अपनी सम्पन्नता दिखाना चाहते हो? वे सब पुरुष कर्म-बन्धनसे जकड़े, जन्म-मरण दुःख के प्रेरे हुए और मलिन आशय वाले धर्मसे विमुख आर्तरीद्र ध्यानमें बसे हुए है जिनको तुम प्रसन्न करना चाहते हो अपनी शान दिखा कर। अरे, इन लाखोंको छोड़कर एक प्रभुको ही प्रसन्न करलो, वहां कुछ मिलेगा, पर इस दुनियाको प्रसन्न करनेके लिए धन वैभव जोड़ना, उसकी चिंता करना, कल्पनामें ही अपना जीवन बिता देना यह लाभकारी नहीं है। यह लक्ष्मी बड़े-बड़े चक्रवर्तियोंके भी शाश्वत नहीं रही, और पुण्य हीनजनों की तो बात ही क्या कहें?

शरीरके ओर छोरपर जन्म मरणकी दाह जो पुरुष राजगद्दी पर बैठते हैं उनके सिरपर पट्टी बंध जाती है। जैसे घरमें किसी बड़े पुरुषके मरणपर उसका बड़ा भाई जिसे घरका प्रमुख माना जाता है पंचोंमें मित्रोंके निकट एक साफा बांध दिया जाता है। उसका मतलब यह है कि सब धन वैभव अब इसका है। इससे भी बढ़कर बात जब राजतिलक होता है तब सब राजाओंके सामने उनके सिर पर पट्टी बांधी जाती है अरे, जिस शरीरपर तुम पट्टी बांध रहे हो, जिस शरीरको तुम सजा रहे हो वह शरीर है कैसा? यह शरीर मानों एक तरहकी ऐरन्डकी लकड़ी है। जैसे ऐरन्डकी लकड़ीके दोनों छोरोंमें आग लगी हो और उसके पोलमें कोई कीड़ा पड़ा हो पहिले से तो उस कीड़ेकी क्या दशा होती है? दोनों ओर से आग लगी है, उस लकड़ीके अन्दर पड़ा हुआ कीड़ा मर जाता है, इस

ही प्रकार इस शरीरके दोनों ओर पर अर्थात् शरीरकी आदिमें और शरीर के अन्तमें दोनों छोरोंमें जन्म और मरणकी आग दहक रही है।

शरीर सम्पर्कमें सर्वदा क्लेश जब शरीरका आदि हुआ, जन्म हुआ तब भी क्लेश, इसके बाद भी क्लेश। जब शरीरका अन्त होगा, मरण होगा इसके बाद भी इसे बड़ा क्लेश होगा। यह तो जन्म और मरणकी अग्नि है। उसके बीचका जो काल है, जितने वर्षोंकी जिन्दगी कही जाती है उस जिन्दगीके भी हाल देख लो, सिवाय तड़फनेके, क्लेशके उसके साथ क्या रहता? प्रभुस्वरूप होकर भी यह भगवान् आत्मा मनकी स्वच्छन्दतावोंसे बिगड़कर अटपट अपना बर्तावा कर रहा है। इसका फल इष्ट नहीं होता, लाभकारी नहीं होता। सब संकटोंका मूल है शरीर। कल्पना करो कि अपने साथ शरीर न होता, केवल खुद ही खुद होते तो केवल यह ज्ञानानन्द शिवस्वरूप था, कल्याणमय था, आनन्दमय था, पर इस शरीर का सम्बन्ध है ना, इस कारण शरीरकी ओर दृष्टि भी कर रहा है और शरीरको जब माना कि यह मैं हूँ तो शरीरके नातेसे दुनियाके अन्य जीवों को भी मान लेते हैं कि यह मेरा परिवार है यह मित्र है, यह गैर है। जब पहिले शरीरको माना कि यह मैं हूँ तब और जीवोंको भी मानना पड़ा कि यह मेरा है।

समागमकी असारता जब जगत मायामय है, अभिमान और इतरानेके योग्य नहीं है। जो समागम पाया है, वह तो फलमें कष्ट ही देगा। कोई भी समागम हो, अन्तमें कष्ट ही पहुंचता है। समझ लो, मान लो, जितने समागम हैं ये सब कष्टके ही कारण बनेंगे। पता नहीं है, किसी को कुछ कि मेरे ऊपर क्लेश अब क्या आयेगा? कष्ट कभी सूचना देकर नहीं आता है, पर ये समागम नियमसे कष्टके ही कारण बनेंगे। धन वैभव है तो उसको बांटनेमें लड़ाई चलती है, और धन है तो किसी दिन यह नष्ट होगा ही, वियोग होगा ही। तब वियोगके समय संक्लेश करेगा।

समागमका अन्तिम परिणाम क्लेश अपने जीते जी भी इस धन को संभालनेकी सामर्थ्यकी नहीं है। कदाचित् पुण्यका उदय है और रहा आये जीवन भर तो अन्त की तो कुछ खबर लो। जिस समय मरण होगा, इस घरसे विदा हो रहा होगा, इस ईंट चूनाके मकानको छोड़कर जा रहा होगा, इस देहको भी धीरेसे त्याग कर जब परलोकको जा रहा होगा, उस समय तृष्णा अज्ञानके कारण जो-जो संकल्प कर रखे थे, उन संकल्पोंके विघात होनेसे यह कितना कष्ट मानता है? जिस वस्तुका समागम हुआ है वह वस्तु अन्तमें नियमसे कष्ट देगी। यह बात निर्णय करके रख लो। जिन के यह निर्णय नहीं है उनको अन्तमें बड़ा कष्ट होगा। और जिनके यह निर्णय है उनको अन्तमें महान् कष्ट न होगा, क्योंकि वे स्वयं अपना विवेक और ज्ञान जागरूक बनाये रह सकते हैं।

सम्यग्ज्ञानके ही शान्तिहेतुपना इस लोकमें हम आपको केवल एक सम्यग्ज्ञान ही शरण है। यहां यह भेद न होगा कि जो पंडित लोग हैं उनको ज्ञान शरण है, जो त्यागी लोग हैं उनको धर्म शरण है, किन्तु गृहस्थोंको तो धन ही शरण है, ऐसा भेद नहीं है। सब जीवोंको शरण एक है, शान्ति आनन्दका कारण एक ही है। चाहे गृहस्थ हो अथवा साधु हो, शान्तिका कारण सम्यग्ज्ञान है।

अशान्ति क्या वस्तु है? पुद्गल पुद्गलमें है, जीव जीवमें, घर घरमें है, सोना सोनामें है, अन्य जीवभी, खुद अपने आपके स्वरूपमें हैं, हम आप अपने स्वरूपमें हैं, इसमें कष्टकी कौन सी बात है? जो चैतन्य सत् है वह कभी नष्ट नहीं हो सकता। सत् के ही कारण प्रत्येक पदार्थ स्वरक्षित है। अब कष्ट काहेका? सो बतावो। भैया! कैसी भी स्थिति हो, पर जहां परद्रव्यमें ऐसी कल्पना हुई कि यह मुझे मिले, बस वहां भी आधीनता है और उस आधीनतासे ही दुःख होता है।

अमीर और गरीब यहां तो अमीर वह है जो अपनेको अकिञ्चन् मान रहा है अन्तरङ्गमें, मेरा जगत्में कही कुछ नहीं है। मेरा तो मात्र मैं ही स्वयं हूं, ऐसा जो मानता है वह है अमीर। और जो किसी परवस्तुके कारण अपने आपको विशिष्ट मानता है मेरे इतना वैभव है, मेरे इतना परिवार है, जो परवस्तुके सम्पर्कसे अपनेको बड़ा मानता है वह है गरीब, क्योंकि परवस्तुमें अहंकार बुद्धि होनेसे नियमसे उसे कष्ट होगा और जो परवस्तुसे विविक्त अपने आपके स्वरूपको निरखते हैं, उन्हें किसी भी स्थितिमें कष्ट नहीं हो सकता है।

एक सेठका अभिमानसे मुक्त होनेका एक प्रयास एक कस्बेमें एक जैन सेठ रहता था। ३५, ४० वर्षकी ही बात है जब राजावोंका जमाना था। उस सेठको राजा बड़ा मानता था। राजाने उसे राव साहब की पदवी दी थी, लेकिन उस सेठका रोजका क्या काम था कि एक बोरेमें नमक तम्बाकू आदि कुछ चीजें भरकर गांवमें बेचनेके लिए एक घंटा चक्कर लगा आता था। उसके बाद अपने घर जाकर हजारोंका काम किया करता था। लोगों ने पूछा राव साहब! आप यह क्या करते हैं कि इतने बड़े अमीर होकर अपना नोन तम्बाकू बेचने जाया करते हैं? तो सेठने बताया कि हमारे इस काममें बड़े गुण हैं। आज हम सेठ हैं, कल गरीब हो गये तो नोन तम्बाकू बेचनेमें शर्म तो न लगेगी। दूसरा गुण यह है कि उससे मान घमंड उत्पन्न नहीं होता। जो भीतर में कुछ घमंडकी बात आ जाती है वह एक घंटा गरीबोंकी तरह फेरी लगा आनेसे दूर हो जाती है। तीसरा लाभ यह है कि इस जनतामें गरीब भाइयोंमें रलमिलकर बैठनेका माद्दा तो हममें हो जाता है। तो कुछ भी वैभव पाकर यहां घमंड करनेका और इतरानेका अवसर नहीं है।

धर्मानुसरणकी प्राथमिकता हमारा कर्तव्य है कि जिस धर्मके प्रसादसे आज हम अच्छी स्थितिमें हैं उस धर्मको न छोड़ें। सबसे बड़ा शरण है धर्म। जरासी ही देरमें हजारोंका नुक्सान हो जाता है अभी की ही घटना है कम्पिल जी में एक भाई वंदनाको आये थे। उस ही रात उनके यहां चोरी हो गयी, निकल गया उनका सारा धन। तो यह वैभव अपने रखाये रखने की चीज नहीं है। पुण्यका उदय है जो आता है और यदि पापका उदय आया तो साराका सारा धन यों ही चला जाता है। धन वैभव की ओर दृष्टि रखना योग्य नहीं है। धर्म तो रखना है धर्म की ओर। तन, मन, धन, वचन सब कुछ इस धर्मके लिए न्यौछावर होना चाहिए। धर्म सही मायनेमें अपने पास रहे तो वह हम आपको बहुत फल देगा। कुछ विवेक बने, किसीके बहकानेसे कभी बहकें नहीं। कभी किसी भावुकतामें आकर अपना आगा पीछा न छोड़ें। जो विवेक में बुद्धिमें यथार्थ बात उतरे उसको धैर्यके साथ करें।

आन्तरिक उदारता भैया! चित्तमें इतनी उदारता अवश्य रखें कि अब जो कुछ मिला है सब यों ही मिल गया है, और यह यों ही चला जायगा। इस आत्माका इस जड़ सम्पदामें स्पर्श नहीं है, यह आत्मा सम्पदाको पकड़ कर रहती नहीं है, यह धन सम्पदा पुण्योदयसे स्वयमेव मिल जाती है और पुण्य विनाशसे स्वयमेव खिर जायगी। तब जो अध्रुव पदार्थ है, विनाशीक चीज है उनसे ममत्व बुद्धि हटावो। इनमें तृष्णा करना लाभकारी नहीं है। आजका जमाना भी इस बातका समर्थन करता है कि व्यापार करें, उपकार करें, दान करें, सब करें, पर संचयका भाव न बनायें। इस धनको धर्मकार्यमें न लगा सकें और संचयकी बुद्धि बनाए रहें। ऐसा प्रोग्राम तो न होना चाहिए। आजके समय का कुछ विश्वास भी है क्या? न जाने कब क्यासे क्या हो जाय? जब यह शरीर भी अपना साथ न देगा तो यह धन वैभव तो अपना साथी होगा ही क्या?

आजन्मरणके आग की झुलस इस शरीरके पहिले जन्मकी आग लगी है और शरीरके अन्तमें मरणकी आग लगी है। और विचित्रता देखो कि जन्म और मरण ये दोनों आग एक ही साथ लगी हुई हैं। इस जीवका जिस समय मरण होता है उसही समय दूसरे भवका जन्म होता है। रूढ़िवश लोग कह देते हैं कि इस बच्चेका ६ महीने में जन्म हुआ है, पर जन्म तो इस बच्चे का तभी हो गया जब वह गर्भमें आया। उस बच्चेका गर्भ में चाहे शरीर जरा भी न बढ़े, पर जन्म उसका हो गया। गर्भ में आनेके पहिले जिस जगह वह मरा है, वहां से जन्म समय तक (गर्भ समय तक) चाहे उसे तीन समय तक लग जायें, पर उसका जन्म तो पहिले ही समयमें हो गया था। यों ही यह जीव जन्म-मरणकी आगमें झुलस रहा है।

नरजीवनका धर्मपालनमें सदुपयोग देखो जैसे कोई एक गन्ना ऐसा हो, जिसमें कीड़ा लग जाता है, जो अन्दरसे लाल रंगका हो जाता है, बीच बीचमें कुछ खाने लायक होता है। उस गन्नेको कोई लोभी पुरुष यदि चूस डाले तो उसने उस गन्नेको भी खराब कर दिया और अपना मुँह भी खराब किया। विवेक तो यह कहता है कि उस गन्नेको खेतमें बो दें, फिर अनेक पेड़ होंगे, उनको फिर भखें। ऐसे ही हम आपका यह जो जीवन है सो बालकपन में तो अज्ञान बसा है, बुढ़ापेमें शिथिलता है, अशक्ति हो जाती है, और बीचकी जो जवानीकी अवस्था है इसमें विषयकषाय की वेदनाएँ सताती हैं। इस जवानीको केवल विषयकषायोंमें ही गँवा दिया तो ऐसा अमूल्य जीवन व्यर्थ ही खोया और अपने आपको पापोंसे जकड़ लिया। विवेक तो यह कहता है कि इस अपनी जवानीको धर्मकार्यमें लगावो। ऐसा प्रोग्राम बनावो कि अपना जीवन धर्ममय व्यतीत हो।

धार्मिक कार्योंमें समय बिताने का अनुरोध भैया! बाहरी कार्योंके करनेसे क्या लाभ मिलता है? रोज सुबह पूजन वन्दनका समय हो, कुछ स्वाध्यायका समय हो, कुछ सामायिकका समय हो। ऐसे ही कुछ धार्मिक कार्यों में विशेष समय बीते, इस ज्ञानस्वरूप भगवान् आत्माकी सुध लें तो शान्ति हस्तगत हैं, अन्यथा तो दुर्बुद्धि होकर क्लेश ही सहना होगा। हे मनमौजी आत्मन्! देख जन्म और मरण से जो समबद्ध है ऐसे इस शरीरमें तू मौज क्यों मानता है? इस शरीरसे रहित निरञ्जन अपने

स्वरूपको निरख, तुझे असीम आनन्द आयेगा। जैसी दृष्टि होती है वैसी सृष्टि बनती है। हम किस स्थिति में है, किस जगह हैं, इसका तू कुछ सोच विचार नहीं करता। तेरा जो शुद्धस्वरूप है उस ओर निगाह कर तो तेरे बहुतसे संकट मिट जायेंगे और बहुतसी ऋद्धि समृद्धि आपके उत्पन्न होगी। हमारी जैसी भावना बनेगी वैसा ही हम फल भोगेंगे। भावनासे ही संसार बढ़ता है और भावनासे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। भावना भावो, अपनेको सबसे न्यारा ज्ञानानन्दस्वरूप निरखने की अपनी प्रकृति बनाएँ, फिर देखिये कितना आनन्दका अनुभव होगा।

आत्माका सुधार और बिगाड़ भैया! विवेक उत्पन्न करें, परकी परिणतियोंमें क्या दुख मानें? बाह्य स्थिति ऐसी हो तो क्या, और किस्म की हो तो क्या? वह बाह्य चीज है, उससे मेरे आत्माका कुछ बिगाड़ नहीं है। मैं अपने आपमें बाह्यवस्तुओंके प्रति ममता जगाऊँ तो मेरा बिगाड़ है, और अपने आपके स्वरूपसे नेह लगाऊँ तो मेरा सुधार है। अपने आप को संभालो। खुदकी ही संभालमें सुख दुःख का निर्णय है। कोई किसी पर की संभाल भी नहीं कर सकता और उससे कभी उसे संतोष भी नहीं हो सकता। अब तक के भी अनुभवसे विचार लो। किस-किस बाह्यपदार्थ को चाह-चाह कर तृप्ति कर पायी है। शरीरको गहनेसे सजा लिया तो आत्मामें कौनसी शान्ति आ गयी? चार पुरुषोंने बड़ा अच्छा है इतना भर कह दिया तो इससे कौन सा लाभ पा लिया? अरे शान्ति तो विशुद्ध ज्ञानमें है। जो योगीश्वर है, ज्ञानीजन है, परमेष्ठीका स्वरूप है उस स्वरूप की भक्तिकी चिन्तनामें, सेवा उपासनामें लगे तो उससे शान्तिमार्गकी प्राप्ति होगी। शेष परद्रव्योंमें उपयोग देनेसे कुछ भी लाभ न होगा। अपने आपके आत्माको देखो।

वर्तमान स्थिति में अपना कर्तव्य जैसे किसी पोली लकड़ी में दोनों ओर आग लगी हो, बीचमें कीड़ा घुसा हो तो जैसे वह कष्ट पाता है ऐसे ही हम आप इस संसारके भीतर प्रवेश किए हुए हैं और इस शरीरके आदिमें जन्म और अन्तमें मरण और मरणके साथ जन्म, इस प्रकार जन्म और मरणकी आग दहक रही है, जल रही है और हम आप उसके बीच पड़े हुए हैं। ऐसी दयनीय स्थितिमें क्या अभिमान और अहंकार करना? प्रभु-स्वरूप पर न्यौछावर हो जावो। जो कुछ भी पुण्य समागम पाया है उस सबसे न्यारा अपने विशुद्ध चैतन्यस्वरूपको निरखनेका यत्न करो तो इससे उन्नति होगी।

**नेत्रादीश्वरचोदितः सकलुषो रूपादि विश्वाय किम्,
प्रेष्यः सीदसि कुत्सितव्यतिकरैरंहास्यलं बृंहयन्।
नीत्वा तानि भुजिष्यतामकलुषो विश्वं विसृज्यात्मवा,
नात्मानं धिनु सत्सुखी धुतरजाः सद्वृत्तिभिर्निवृतः॥६४॥**

व्याकुल प्राणीको संबोधन हे जीव! तू कर्मोंके उदयसे प्रेरित हुआ नेत्रादिक इन्द्रियोंके विषयोंके वशीभूत होकर अतिव्याकुल हुआ, तू रूप आदिक समस्त विषयोंकी अभिलाषा से क्यों खेद खिन्न हो रहा है? इन इन्द्रियोंका तू किंकर क्यों बन रहा है और इसही दासतामें खोटे, अटपटे आचरणों करके क्यों पापोंको बढ़ा रहा है? देख अब आकुलताको छोड़कर समस्त विषयोंका संकल्प तजकर

एक ज्ञान ध्यानरूप अमृतको सेवन करके सुखी होवो। यह जीव ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुणों का पिंड है। यह स्वतन्त्र है, परिपूर्ण है, अपने आपमें अपने आपका परिणमन करता हुआ रहता है, किन्तु एक पर-उपाधिके सम्बन्धसे इस आत्मामें विकारभाव उद्भूत हो गए हैं।

भूख, प्यास, ठंड, गर्मीकी वेदनाका कारण शरीरसम्पर्क यह शरीर सर्वक्लेशोंका मूल है। शरीरका सम्बन्ध न होता तो आत्माको कभी अशान्ति न होती। जितनी भी अशान्ति है वह इस शरीरके सम्बन्धसे है। २२ प्रकारके उपसर्ग परिषह जिनको साधुजन समतापूर्वक सह लेते हैं उन सब परिषहोंका मूलकारण देखा जाये तो यह शरीर पड़ता है। जैसे भूखकी वेदना हो तो उसमें भी शरीरका ही सम्बन्ध कारण है। भूख प्यासकी वेदना से पीड़ा हो तो वह भी शरीरके सम्बन्धसे ही तो एक इस प्रकारकी पीड़ा होती है, जिस वेदनामें यह भी सम्भव है कि यह मृत्युको भी प्राप्त हो जाए। ठंडकी वेदना, शरीरहै तब ही तो लगती है। आकाश की तरह अमूर्त निर्लेप सच्चिदानन्दस्वरूप इस आत्मतत्त्वको ठंड की कहां से वेदना लगेगी? यों ही गर्मी को भी वेदना शरीरके सम्बन्धसे है।

दंश व नग्नताकी पीड़ाका कारण शरीरसम्पर्क डांस मच्छर काटते हैं, उनका क्लेश होता है, उसे साधु महाराज तो समतासे जीत लेते हैं, किन्तु ये परिषह ये उपद्रव हुए कैसे? शरीरके सम्बन्धसे ही। क्या कोई मच्छर इस अमूर्त आत्माको काट सकते हैं? उनका तो वहां प्रवेश भी नहीं है, सम्पर्क भी नहीं है। यहां डांस, मच्छरके काटनेसे जो वेदना भोगनी पड़ती है वह भी शरीरके सम्बन्धसे है। नग्न रहना या कपड़े पहिनना यह भी भेद आत्मामें नहीं पड़ा हुआ है। यह भेद शरीरके सम्बन्ध से है, जब विकास भाव होता है तो इस शरीरके सम्बन्धमें इसे लाज आती है, उस लाजको ढाकनेके लिए वस्त्र ग्रहण किए जाते हैं। कोई भी मोही पुरुष नग्न रहनेका संकोच अनुभव करता है। उसका खोटे परिणमनोंकी ओर चित्त लगा है, वह नग्नतामें लाज करता है, अवगुण मानता है। नग्न होना भी एक परिषह है। नग्न होकर विकार भाव नहीं आ सकता, और अपने आपमें झोंप नहीं हो सकती। वीर बालकवत् निर्भय अपने आपके आत्माकी ही ओर उपयोग रह सके, ऐसी बात साधुजन कर सकते हैं। इस नग्नपरिषहके विजयी साधु होते हैं। प्रकरणमें यहां यह समझो कि इससे जो भी खेद उत्पन्न होता है वह इस शरीरके सम्बन्धसे होता है।

अप्रीति व स्त्रीपरिषहका कारण शरीरसम्पर्क परवस्तुमें इष्ट अनिष्टकी जो वृद्धि हुई, जो राग अथवा द्वेष उत्पन्न हुआ वह भी इस शरीरके सम्बन्धसे हुआ है। दुनियामें कोई अनिष्ट पदार्थ नहीं है इस आत्माका, किन्तु आत्मा अमूर्त है, समस्त पदार्थोंसे न्यारा है, इसका कहां से कुछ अनिष्ट होगा? किन्तु, शरीरका सम्बन्ध है, उसके कारण जो शरीरको इष्ट लगा उसे साधक मान लिया और जो शरीरके विषयोंसे विपरीत हुआ उसे बाधक मान लिया। अनिष्ट प्रसंगोंको पाकर इसके द्वेष जगने लगते हैं। ये बैर द्वेष अप्रीति इस शरीरके सम्बन्धसे ही तो बने हैं। स्त्री परिषह साधुजन सहते हैं। रूपवती देवांगनाएँ अथवा महिलाएँ समक्ष हों, तो साधुको डिगानेका भी बड़ा हाव-भाव करें, पर वे साधु डिगते नहीं हैं। साधु, स्त्रीपरिषह विजयी होते हैं। यहां इस सम्बन्धमें यह खोज करो कि

स्त्रीपरिषह नामक उपद्रव होनेका मूल कारण क्या है? तो प्रसंगके अनुसार यह कहना युक्त है कि शरीरका सम्बन्ध है तब स्त्रीका उपद्रव जंचा। शरीरके आश्रयसे ही तो विकार प्रकट होते हैं, और उस विकारके आश्रयसे ये सब परिषह होते जाते हैं। इन परिषहोंमें भी शरीरका सम्बन्ध कारण बैठा।

कण्टक कंकड़ आदिका बाधाका व गालियोंके खेदका कारण शरीर सम्पर्क चलते समय कांटा चुभनेका जो दुःख होता है वह दुःख इस शरीरके सम्बन्धका ही तो है। आत्मामें तो कांटा चुभता ही नहीं है आत्मातो निर्लेप अमूर्त वस्तु है, कांटेके चुभनेका परिषह भी इस शरीरके सम्बन्धसे है। जितने भी उपद्रव दिखते हैं वे सब इस शरीरके सम्बन्धसे हैं। मुनियोंको दुःख हो तो, गृहस्थोंको दुःख हो तो सभी को इस शरीरके सम्बन्धका दुःख है। कोई गाली गलौच देता है उसका भी बड़ा क्लेश अनुभवा जाता है, वह क्लेश भी इस शरीरके सम्बन्धसे ही हुआ। जिस शरीरमें यह जीव है, सुनने वाला, यह शरीरको लक्ष्यमें लेकर ही तो यों समझता है कि इसने मुझे गाली दिया है। अपने आत्माके अमूर्तस्वरूप को नजरमें रखकर नहीं सोचता है। वह अमूर्त ज्ञानस्वरूपको लक्ष्यमें लेकर इस प्रकार सोच ही नहीं सकता। किसीकी गाली सुनकर बुरा माननेका विकल्प भी इस शरीरके सम्बन्धसे है। शरीर पर इस जीवका लक्ष्य है, इस कारण गाली सुननेमें यह जीव कष्ट मानता है।

आशा व अलाभकी वेदनाका कारण शरीरसम्पर्क किसी वस्तुकी आशा करना यह भी महान् क्लेश है। आशारूपी क्लेश भी इस शरीर सम्बन्धसे होता है। किसी भी पदार्थकी आशाका दुःख भी इस शरीरके ही सम्बन्धसे है। किसी इष्ट वस्तुकी प्राप्ति न होने पर जो खेद माना जाता है उसका भी कारण शरीर का सम्बन्ध है। मुझे यह चीज नहीं मिली-ऐसा परिणाम जो करता है वह शरीरको 'यह मैं हूँ' ऐसी नजर रखकर करता है। यह अमूर्त आत्मा आकाशकी तरह निरञ्जन है। इसमें क्या लाभ अलाभ की बात है? यह तो जो है स्वयं है, सो ही है। केवल आत्माका नाता उपयोगमें रहता तो अलाभका क्लेश न माना जाता। परवस्तुका लाभ न होने पर जो भी वेदना अनुभूत होती है वह शरीरके सम्बन्ध से है।

रोग, असन्मान आदिकी वेदनाका कारण शरीरसम्पर्क सारी व्याधियां जुखाम बुखार कृष्ट आदिक जितने भी क्लेश हैं वे सब शरीरके आश्रयसे ही तो हैं। इनका आधार शरीर है। इस शरीरमें सूई चुभे, कोई पीड़ा दे, कोई उपद्रव आये ये सब परिषह भी इस शरीरके सम्बन्ध से हैं। खाज खुजली जो भी हो जाती है, उससे जो बेचैनी होती है, वह भी शरीरकी ही बात है। कोई पुरुष सम्मान न कर सके, इसका भी बुरा मानना यह भी क्लेश इस शरीरके सम्बन्ध है। क्यों इसने मेरा सम्मान नहीं किया, ऐसा सोचने में अपमान महसूस हो रहा है, यह सब इस शरीरके सम्बन्धसे हो रहा है। शरीरकी दृष्टि छोड़कर जो आत्मस्वरूप है उसकी ही मात्र दृष्टि रक्खी जाती होती तो वहां ये विकल्प ही न उठते। यों सत्कार न होनेका जो पद्रव है वह भी जीवमें शरीरके सम्बन्ध से होता है।

प्रज्ञाभिमान, अज्ञान आदि समस्त बाधावोंका कारण शरीरसम्पर्क कभी-कभी अपने ज्ञान पर घमंड आनेका भी दुःख भोगना पड़ता है। मैं इनमें विशिष्ट ज्ञानी हूँ, ऐसा ज्ञानपनेका अभिज्ञान रखकर

भीतरमें जिसके क्लेश बना रहता है, वह पुरुष सुखी नहीं रहता। वह भी बड़े क्लेशमें रहा करता है। यह दुःख भी शरीरके सम्बन्धसे है मैं ज्ञानी हूं ऐसा सोचनेमें किसको 'मैं' कहा गया है, वह मैं विभावव्यज्यजन पर्याय है, इसकी निगाहमें केवल सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको मैं मानकर तो यह अभिमान नहीं जग सकता, क्योंकि यह आत्मा शाश्वत सहजज्ञानस्वरूप है, इसमें चढ़ाव उतार ही कुछ नहीं है। किस पर अभिमान जगे? कोई-कोई पुरुष अपने अज्ञान पर दुःखी रहते हैं। बड़ी साधना की, फिर भी ज्ञान प्रकट नहीं होता। मैं बड़ी मेहनत करता हूं फिर भी विद्या नहीं आती, मैंने बड़ी तपस्या की, फिर भी अवधिज्ञान या और कोई उत्कृष्ट ज्ञान नहीं उत्पन्न हुआ। ऐसा जो क्लेश माना जाता है वह भी शरीरके सम्बन्धसे माना जाता है, ऐसा सोचनेमें उसने जिसे 'मैं' माना वह शरीरको नजरमें रखकर मैं माना गया है। इस मुझको ज्ञान प्रकट नहीं हुआ और सहज चैतन्यस्वरूप जो निज आत्मतत्व है इसको नजरमें रखें तो इस प्रकारका क्लेश नहीं होता। अज्ञान काभी जो क्लेश है वह शरीरके सम्बन्धसे होता है। यों बड़े-बड़े जितने भी क्लेश हैं वे सब इस शरीरके सम्बन्धसे हैं।

निर्धनत्वकी कल्पनाकी वेदनाका कारण शरीरसम्पर्क अपनी निर्धनता का दुःख माननेमें भी शरीरका सम्बन्ध कारण है। यदि इस शरीरमें आत्मबुद्धि न हो तो गरीब हूं इस प्रकारका चिन्तन नहीं हो सकता। यह मैं आत्मा शाश्वत सहज ज्ञानशक्तिस्वरूप हूं। इसमें समस्त परद्रव्योंका अत्यन्त अभाव है। न इसमें देह है न कर्म है, न धन वैभव है। और की तो बात क्या, इन परद्रव्योंके निमित्तसे जो आत्मामें रागद्वेषकी तरंग उठती है उस तरंगरूप भी मैं नहीं हूं। मैं सबसे न्यारा अकिञ्चन एक शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप हूं, ऐसा जो अपने अन्तस्तत्वको ध्यानमें लेता है उसे निर्धनताका कष्ट कहां है? वह तो निर्धनताको प्रयोगिक रूप देना चाहते हैं।

परसम्पर्ककी ऐकान्तिक क्लेशहेतुता जितने भी क्लेश होते हैं वे परके सम्बन्धसे ही तो होते हैं। यावत् क्लेश हैं वे शरीरके सम्बन्धसे हैं। यह शरीर कैसे उत्पन्न हुआ है? इसके बनाने वाला कोई ईश्वर नहीं हैं, जो बैठे-बैठे इस शरीरकी रचना करता फिरे। प्रभुका स्वरूप तो सर्वज्ञ होकर भी अनन्त आनन्दमें मग्न होनेका है। वे समस्त लोकालोके जाननहार हैं, किन्तु किसी विकल्पमें नहीं रहते, अपने स्वात्मीय आनन्दमें ही मग्न हैं।

प्रभुदर्शन हम आप प्रभुमूर्तिके दर्शन करते हैं तो जिनकी यह मूर्ति है, जिनकी इस मूर्तिमें स्थापना की है उस प्रभुके स्वरूपमें दृष्टि दें। वह प्रभुस्वरूप कैसे विदित होगा? प्रभु वीतराग सर्वज्ञ है इस कारण वे अनन्त आनन्दमें मग्न हैं। राग हमारे आनन्दको प्रकट नहीं करता है, किन्तु आनन्द में बाधा डालता है। मोही जीव यों समझते हैं कि मुझे परद्रव्योंके रागसे मौज मिला है, पर वास्तविकता वहां यह है कि परद्रव्योंके रागसे मेरे आनन्दका विनाश हुआ है। प्रभु वीतराग है, इस कारण अनन्त आनन्दमय है। प्रभु सर्वज्ञ है, समस्त त्रिकाल त्रिलोकवर्ती पदार्थों के जाननहार हैं इस कारण किसी भी समय उनमें क्लेश होनेका संदेह ही नहीं हो सकता। ऐसे प्रभुके स्वरूपको निरखकर दर्शन करें, प्रभुके दर्शन वंदन करते हुए मैं भी क्लेश रहे तो समझिये कि दर्शन वंदन किया ही नहीं।

शरीरसे निवृत्त होनेकी अभिलाषा प्रभु अकिञ्चन है। उनके साथ न शरीर है, न रागादिक भाव हैं, न वैभव जड़ सम्पदा है, न परिजन हैं। वे केवल रह गये है इसही कैवल्यका महत्व है कि हम सब उन्हें भक्तिपूर्वक पूजते हैं। हमें दर्शन करते हुए में इतनी प्रेरणा लेना चाहिए कि हे नाथ! मैं भी जब आपकी ही तरह शरीरसे न्यारा अपने स्वरूपमें पूर्ण विकास वाला होऊँ तब कृतार्थ होऊँगा। इससे पहिले मैं तो दुःखी ही हूँ। हे नाथ! कब ऐसा समय आयेगा कि मैं इस क्लेशकारी शरीरसे सदाके लिए मुक्त हो जाऊँगा। इस शरीरकी प्रीति न कीजिए। यह शरीर बैरी है जीव का। इस जीवके साथ जब तक शरीर लगा रहेगा तब तक जीवको अनन्त ऐश्वर्य भोगनेमें नहीं आ सकता।

विषयसाधनोंके सम्पर्कमें व्याकुलता इस शरीरको किसी ईश्वरने नहीं बनाया। ईश्वर तो अनन्त आनन्दमय है। यह कर्मोंका ऐसा निमित्त नैमित्तिक योग है कि जैसे अनेक पुद्गलके सम्बन्धमें अनेक बातें हुआ करती हैं, ऐसे ही उस-उस जातिके कर्मोंका उदय होने पर इस जीवको इस प्रकारका शरीर मिलता है। यह शरीर कर्मोंके उदयके निमित्तसे उत्पन्न हुआ है और शरीरके सम्बन्धसे इन्द्रियोंकी दासता उत्पन्न हुई है। शरीर इन्द्रियात्मक है। सारा शरीर स्पर्शन इन्द्रिय है और शेषकी चार इन्द्रियां भी अपने-अपने नियत स्थान पर हैं। उनके वश जब यह जीव हो जाता है तब इसके विषयके निमित्त व्याकुलता उत्पन्न होती है। सुन्दर मनःप्रिय रूप रस गंध स्पर्श ये इसे नहीं मिलते हैं तो यह व्याकुल हो जाता है और मिलें तो वहां भी व्याकुल रहता है। कोई भी पुरुष क्या शान्तिके साथ विषयोंका सेवन करता है? अशान्ति और क्षोभ उसे सताते ही रहते हैं। इतना ही नहीं बल्कि विषयोंके खातिर अनेक दुराचार बढ़ाते हैं, पापकी वृद्धि करते हैं। खैर, पापोंको करके भी विषयभोग लिया, लेकिन भविष्यमें इनका फल खोटा होता है। विषयोंको भोगकर कुयोनियोंमें यह जीव पड़ता है।

संसरण व असंसरणका उपाय भैया! कुछ विवेक बनाकर देख लीजिए कि मुझ आत्मा भगवान्को इस शरीरमें जो बँधा हुआ रहना पड़ रहा है इसका क्या कारण है? अरे भव भवमें देहमें ही अपने आत्माकी प्रतीति की, इस कारण इस देहका बन्धन लगा हुआ है। किसी पुरुषको यदि यह निर्णय हो जाय कि मुझे तो शरीरसे रहित होनेमें ही लाभ है, मैं इस शरीरसे रहित ही रहना चाहता हूँ तो प्रथम कर्तव्य यह है कि मैं शरीरसे भिन्न निज ज्ञानानन्द स्वरूप की परख करूँ और यह दृढ़ विश्वास रखूँ कि मैं तो मात्र ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, शरीरसे पृथक् हूँ शरीर मैं नहीं हूँ। जिस शरीरसे हमें मुक्त होना है उस शरीररूप अपनेको विचारें तो मुक्ति नहीं हो सकती।

शाश्वत आनन्दका उपायभूत श्रद्धान भैया! पहिले यह श्रद्धान तो करो कि मैं शरीर नहीं हूँ। मुझे शरीरके सम्बन्धसे सदाके लिए मुक्त होना है यह विश्वास हो तब तो शरीरसे छूटनेका उद्यम बन सकता है। जो शरीररूप अपनेको समझता है वह शरीरको पाता रहेगा। जो शरीरसे भिन्न अपना स्वरूप मानता है वह शरीरसे मुक्त हो जायेगा। इन विषयोंमें आनन्द नहीं है। आत्मन्! इस मोह भावको तजकर आत्माके स्वरूपके ध्यान रूप अमृतसे अपनेको पुष्ट करो। आत्माके अहित विषय और कषाय हैं, अपने आपका मलिन परिणाम ही अपने आपको दुःख देता है। मैं ही अपनी

गंदी कल्पनावीको उठाता हूं और दुःखी होता रहता हूं। इन विषयकषायों के परिणामोंको छोड़कर, पापपरिणामको त्याग कर तू शुद्ध समतावृत्ति से रहना। इससे तुझे अलौकिक सुख उत्पन्न होगा।

ज्ञानके सदुपयोगका अनुरोध हे आत्मन्! तू ज्ञानस्वरूप है, अपने ज्ञानका सदुपयोग कर। देख अब कितना विशिष्ट ज्ञान मिला है? कितनी व्यवस्थाएँ बनाते हैं, कितने आरम्भ व्यापार आदिकमें तर्क वितर्क करके उनको निभा लिया जाता है? इतने विशिष्ट ज्ञानको आत्मस्वरूपके प्रति बोधमें लगा दिया जाये तो क्या आत्माका ज्ञान नहीं हो सकता है? हे ज्ञानमय आत्मन्! तू विषयकषायोंको छोड़कर एक निज शुद्ध ज्ञानमात्र 'मैं हूँ' इस ही भावनामें अपने उपयोगको लगा। जिस कालमें तू अपने आपको केवल ज्योतिस्वरूप अनुभव लेगा उस कालमें तुझे ऐसा अलौकिक आनन्द होगा जिससे सम्यक्त्व उत्पन्न हो जायेगा और संसारसे छूटकर निर्वाणमें पहुंचनेका मार्ग पा लेगा। इससे इन विषयकषायोंसे निवृत्त होना ही योग्य है कदाचित् इनमें पड़े रहना पड़े तो यह तो समझ बना कि ये अहितकर हैं, इन से मुझे छूटनेमें ही लाभ हैं।

अर्थिनो धनमप्राप्य धनिनोप्यवितृप्तितः।

कष्टं सर्वेऽपि सीदन्ति परमेको मुनिः सुखी॥६५॥

आत्मज्ञानके अभावमें क्लेशोंको विस्तार इस जगत्में वे सभी जीव दुःखी होते हैं जिन्हें धर्मका धाम निज आत्मदेवका स्थान, स्वरूप नहीं दीखा है। ऐसे जन जो धनके अर्थी हैं वे धनको न पाकर दुःखी होते हैं, किन्तु जिनके निकट धन है वे पुरुष भी पाये हुए धनमें तृप्त न होकर दुःखी रहते हैं। भला कुछ कल्पना तो करो जो आज मिला हुआ है जिस किसी भी प्राणी को, क्या ऐसा नहीं हो सकता था कि इसका आठवां हिस्सा ही मिला होता, न मिला होता इतना तो क्या वहां अपना साधन न बना पाते? जिसको धन मिलता है उसकी निगाह उससे अधिक पर रहनेके कारण वह पाये हुए धनका भी आराम नहीं ले सकता है। कर्तव्य तो यह है गृहस्थ धर्मका जो कुछ भाग्यानुसार प्राप्त हुआ है, उसमें ही धर्मका उद्देश्य रखकर अपना जीवन बितावो। यह जीवन विषय और कषायोंके भोगनेके लिए नहीं है, किन्तु एक ऐसा उत्कृष्ट धर्मका पालन करनेके लिए है जिसके प्रसादसे फिर अनन्तकालमें भी दुःखका पात्र न होना पड़े।

आर्तध्यानका क्लेश चार प्रकारके आर्तध्यान कहे गये हैं इष्टवियोगज, अनिष्टसंयोगज, वेदनाप्रभव और निदान। वे ध्यान दुःख रूप हैं तुरन्त भी और भविष्यमें भी दुःखके ही करने वाले हैं। वे ध्यान चार तरहके हैं। पहिला इष्ट-वियोगज, इष्ट पदार्थका वियोग होने पर उस के संयोगके लिए अपना चिन्तन बनाना, सो इष्ट-वियोगज आर्तध्यान है। अनिष्टसंयोगज अनिष्ट पदार्थका संयोग होने पर उसका वियोग होनेके लिए, यह कब टले इस चिन्तनामें जो संक्लेश होता है वह अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान है। वेदनाप्रभव शरीरमें व्याधि हो जाने पर जो कष्ट होता है उस कष्टके चिन्तनका नाम है वेदनाप्रभव आर्तध्यान। निदान नामक आर्तध्यान यह इन तीनोंसे खोटा है। निदान कहते हैं भविष्यकालके लिए विषयों के साधनोंकी अभिलाषा बनाये रहना।

निदाननामक विकट आर्तध्यान निदान इतना खोटा ध्यान है कि यह चतुर्थगुणस्थानमें भी नहीं रहता एक शल्यके रूपमें और अशुभका निदान तो चतुर्थ गुणस्थानसे निवृत्त होने लगता है। किसी भी प्रकारका निदान छठे गुणस्थानमें नहीं होता। मुनिजनोंके इष्टवियोगसे उनके क्लेश पहुंच जाय, अनिष्ट संयोगसे उनका दुःख आये, वेदना प्रभव ध्यान भी बने, किन्तु निदान नामका आर्तध्यान नहीं होता। किसी इष्ट शिष्यका वियोग हो जाय अथवा गुरुका वियोग हो जाये, उस समय ज्ञानीके भी यह आर्तध्यान सम्भव है। कोई अहितकारी, कुपथगामी शिष्यका सहवास मिल जाये अथवा अन्य प्रकार भी जो धर्ममें अनियत है, उसका संयोग हो जाये तो यह अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान भी मुनियोंके सम्भव है। शरीरमें रोग पीड़ा हो जाये तो उसका भी आर्तध्यान मुनिके सम्भव है, किन्तु निदान नामका आर्तध्यान यदि मुनिके हो जाये तो मुनिपद नहीं रहता है, यह निदान अत्यधिक कटु फल वाला है।

तृष्णाके असन्तोष का एक उदाहरण एक बुढ़िया मां थी। उसके ५ बेटे थे। उनमें से एक बेटा गुजर गया तो वह बुढ़िया बहुत रोये, चारों बेटोंने समझाया, मां तू रोती क्यों है? अभी हम चार तो हैं। तेरा रोना देखकर दुःखी होकर हम चारोंमें से भी कहीं कोई मर जाय। तो मां कहती है बेटा, तुम चार तो हो, पर हमारी दृष्टितो उस एक पर ही निरन्तर बनी रहती है, हमारा दुःख नहीं मिट पाता है। वे चार बोले कि तुम क्यों इतने कष्टमें अपना जीवन व्यतीत करती हो। तुम कुछ भी दुःख न मानों। लेकिन तृष्णामें होता ही यह है कि जो है उस पर दृष्टि नहीं रहती, जो नहीं है और इष्ट है उस पर दृष्टि रहती है। जैसे लखपति पुरुषके एक हजारका नुकसान हो जाय तो अभी तो ९९ हजार हैं ना, पर उसकी दृष्टि ९९ हजार के संतोषपर नहीं रहती, किन्तु जो एक हजार नहीं रहा, उसपर दृष्टि रहा करती है। यों उस बुढ़ियाकी दृष्टि उस बेटा पर ही रहे। कुछ दिन बाद एक और गुजर गया। तब तीन बोले मां! तुम दुःख मत मानों। हम तीन तो हैं। बुढ़िया कहती है कि मुझे तो वे ही दो दिखते हैं जो गुजर गये हैं। उनमें से एक और गुजर गया, दो रह गये। दो ने भी समझाया पर बुढ़िया की समझमें न आया। वह सदा रोते ही रोते अपने दिन गुजारे। जिसके जो दिलमें लगा है, जिस पर दृष्टि है उसे दूसरा कौन मिटाये? आखिर एक और गुजर गया। एक बचा तो बोला कि हम एक तो हैं मां! इतना क्लेश न मानों, पर उसकी निगाहमें वे चार ही रहा करते थे। वह बुढ़िया उस बेटे का भी संतोष नहीं कर पाती थी। आखिर वह भी गुजरा तो अब बुढ़िया निराश्रित रह गयी। यह हालत है तृष्णामें।

तृष्णाका असंतोष तृष्णामें जो लोभी पुरुष हैं, पासमें उसका भी आराम नहीं ले पाते। उन्हें कौन समझाने आयेगा दूसरा, दुःखको खुद ही वे आप मिटा सकते हैं, दूसरा मिटाने न आयेगा। देखो धनके होने अथवा न होने से सुख दुःख नहीं होता है। कल्पनामें माननेसे ये सब बातें होती हैं। जो धनके अभिलाषी जन हैं, रात दिन उसके लिए श्रम किया करते हैं वे धनको न पाकर दुःखी रहा करते हैं। बतलावो इस जगत्में क्या से क्या नहीं हो सकता? जिसका आपके चित्तमें विचार

भी नहीं है, इतनी खोटी बात भी गुजर सकती है? और देखते भी तो जाते हैं कहीं किसी का पुत्र गुजर गया, कहीं किसी को मारपीट दिया तो पता नहीं कि क्या से क्या हो जाय? सब असहाय हैं। सब अपना मानों सब कुछ भविष्यके लिए छोड़ बैठे हैं। हमारा कुछ सहारा नहीं है। ऐसा असार जगत्में किसी भी परपदार्थके समागम पर संतोषकी सांस लेना कहां तक उचित है? लौकिक वैभव पाकर मग्न मत हो। और न इस लोक वैभवको पाकर इससे मोह करो।

क्लेशका कारण मोह भैया! दुःख तो समस्त मोहका है। परवस्तुके निकट होने न होनेका कोई क्लेश नहीं है। होने न होने की क्या बात है? भाग्य न होगा तो किसी तरहसे धन नष्ट हो जायगा, भाग्य होगा तो बिना चिन्ता किए बिना सोचे ही किसी उपायसे वह सब आ जाता है। धनके विषयमें चित्त फंसाना, कल्पनाएँ और विकल्प करना यह कर्तव्य नहीं है। कर्तव्य यह है कि जो मिला है उसमें ही गुजारे के लिए व्यवस्था बनावो और अपना जीवन धर्महित समझो।

मोही और निर्मोहियोंकी कृति अपने जो पुराण पुरुष हुए हैं अकलंक देव, निष्कलंक देव आदिक अनेक आचार्य हुए हैं, जिनके सब कुछ वैभव था। कोई राजपुत्र थे, कोई श्रेष्ठ कुलके थे। बड़े दिग्गज विद्वान थे उन्हें क्या क्लेश था गृहस्थीमें? किन्तु एक धर्म के लिए उन्होंने अपना तन, मन, धन सब कुछ न्यौछावर कर दिया। वे भी आज नहीं हैं और जो मोहीजन थे, जो अपने जीवनमें तन, मन, धन, वचन दूसरोंके लिए नहीं खर्च कर सके थे, वे भी आज इस दुनियामें नहीं हैं। जिन लोगों ने धर्मके लिए सर्वस्व न्यौछावर कर दिया वे आज भी बड़ी अच्छी स्थितिमें होंगे और जो परद्रव्योंके मोहमें ही गुजरे हैं उनकी स्थिति भली न होगी।

मरणासमय सावधानीकी आवश्यकता भैया! मरण समयमें आकुलता रहती है तो अगले भवमें भी प्रायः सारी आकुलताएँ ही बर्तेगी। मरण समयमें यह समता आनन्द संतोष शान्ति रहे तो अगला भव भी प्रायः आनन्द और संतोषमें बीतेगा। यह अगले भवके भविष्यकी एक निशानी है। चिन्ता करो तो इस बातकी करो कि मेरा मरण न बिगड़े। भविष्यका सारा होनहार मरण समयके परिणाम पर निर्भर है। उस समय जो बन्धुजन मरणाहार पुरुषकी आत्मसेवाके लिए उद्यम नहीं करते हैं, किन्तु स्वार्थवश इसका शरीर रहे इतने ही मात्रका ध्यान रखते हैं, वे बन्धु नहीं हैं। वे उस मरणाहार जीवके शत्रु हैं। अरे एक दो मिनटमें ही तो जीवनके सैकड़ों वर्षोंका फैसला होनेको है कि अगले भवमें इसका जीवन कैसा बीतेगा और वही फैसलेका समय बिगाड़ा जा रहा है। यह तो बंधुताका काम नहीं है। मरण समयमें सुखसे, संतोषसे वही पुरुष समय को गुजार सकेगा जिसने अपने जीवनभर कुछ साधना की हो। अपनी साधना वही कर सकता है जिसके दिलमें उदारता बर्त रही हो, जो समग्र समागमको भिन्न, हेय, धूलवत् मानता हो, वही पुरुष मरण समयमें अपना समतापरिणाम रख सकता है।

ज्ञानतृष्णाका क्लेश जो अधर्मीजन हैं, तृष्णामें रत हैं वे ही अतृप्त होकर दुःखी हुआ करते हैं। केवल धनकी ही बात नहीं है, प्रत्येक काममें मोहियोंके यह तृष्णा परिणाम चलता है जिनके

भाषाज्ञान तक भी नहीं है, वचन भी नहीं बोल सकते हैं, ऐसे पुरुष ज्ञानके बिना दुःखी रहते हैं। पढ़े लिखे लोगोंको देखकर, अपनेको हीन मानकर चित्तमें दुःख बनाये रहते हैं और जिनको ज्ञान मिला है, पंडिताई मिली है, मास्टर हुए हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुष अतृप्त होकर दुःखी रहा करते हैं। जिसने जो ज्ञान पाया उसको वही ज्ञान थोड़ा लग रहा है। जैसे ऊंट दूरसे देखकर सोचता है कि यह पर्वत तो न कुछ सी चीज है, झट लांघ जायेंगे, पर पर्वतके पास पहुंचकर उसे अंदाज होता है, ओह! यह पर्वत तो बड़ा दुर्गम है। ऐसे ही जब हम कुछ ज्ञान पाते हैं तब हमें विदित होता है कि ज्ञान तो बहुत बड़ी चीज है, हमने तो यह कुछ भी नहीं जान पाया है। लोकमें एकसे एक बड़े ज्ञान होते हैं। उनको देखकर यह दुःखी रहा करता है क्योंकि उसे तृप्ति नहीं है।

कीर्तितृष्णाका क्लेश जगत् दुखमय है। ऐसे दुःखमयी संसारमें हे जीव! तू ऐसा मस्त होकर रमण कर रहा है कि तुझे आगे पीछे की भी कुछ सुध नहीं रही है, जो लोग कुछ सम्मान नहीं पा सके, जिनकी लोकमें इज्जत नहीं होती, वे पुरुष इस इज्जतके अभावमें दुःखी रहते हैं। मेरा सम्मान नहीं होता है, मेरी कुछ कदर नहीं है, इस तरह दुःखी हाते हैं, और जिन्हें सम्मान मिला है, इज्जत मिली है, उनका दुःख तो और भी ज्यादा है। अब जो यश मिला है उसकी रक्षा करता है, कैसे इसकी रक्षा बने, इससे भी अधिक और मेरी इज्जत कैसे बने? इन बातोंसे ही वे दुःखी होते हैं। फिर सुखी कौन है? जिस पुरुषके संतान नहीं है वे अपनेको निःसंतान अनुभव करके क्लेश मानते हैं, और जिनके संतान है उनको और प्रकारकी चिन्ताएँ हैं। व्यवस्था करना, धन बढ़ाना, मकान बढ़ाना और हो जाये पुत्रका विवाह अथवा बहुएं मिल जायें, कोई अनापसनाप, उनके क्लेश होते हैं।

विपदाका समूह व धीरता लोग कहते हैं कि साधुओं को २२ परिषहें सहनी पड़ती हैं, वे उन्हें समतासे सहते हैं। ठीक है, उनको तो २२ परिषहें हैं और गृहस्थोंको कितनी बतायी जायें, कुछ गिनती भी है क्या? जराजरा सी बातके उनके संकट हैं और फिर भी पदवीके अनुसार उनके समता साधारण नहीं है। वे परिवारके कष्ट भोग कर भी समाजमें एक धर्मका वातावरण बनाये रहते हैं। समाजकी, मन्दिरकी अनेक सोसाइटी संस्थाओंको वे उचित रीतिसे चलाया करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य त्यागी पुरुषोंकी सेवा शुश्रूषा में, अपनी धर्मसाधनामें भी समय लगाते रहते हैं। गृहस्थोंके इतनी किल्लतें होने पर भी, इतनी चिन्ताएँ होने पर भी उनका दिल कितना गम्भीर होता है? गृहस्थधर्म भी कितने उत्कृष्ट मन वालेके होता है, वह भी एक प्रशंसनीय बात है, लेकिन जिनकी मूलमें ऐसी विषभरी दृष्टि बन गयी है कि जो कुछ है वह धन ही है, यश ही है, धर्मका महत्व नहीं है, वे जन दुःखी ही रहा करते हैं।

कुलतृष्णाका क्लेश कितने ही पुरुष, अपनेको हीनकुल मिला हो तो उस कुलकी हीनताका कष्ट मनमें भोगते रहते हैं। हाय! मेरी कोई विशेष पूछ नहीं है। भले ही चाहे राज्यकानून बन जायें कि कोई किसी की अवहेलना नहीं कर सकता है, लेकिन दिलकी बातको क्या कोई मिटा देगा? हीनकुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष अपने को हीन समझकर क्लेश माना करता है, तो जो अच्छे कुलमें

उत्पन्न हुआ है वह अपने यश और बड़प्पन की अधिक वाञ्छा करता है, पर उसे वह कल्पित बड़प्पन मिलता है नहीं सो उसमें दुःखी रहा करता है।

शारीरिक बलकी तृष्णाका क्लेश जिन्हें देहबल नहीं मिला है, जो शरीरसे कमजोर हैं, वे पुरुष अपनी निर्बलताको सोचकर दुःखी रहा करते हैं। जो बलिष्ठ हैं, जिनके बलकी भी थाह नहीं है वे उस बलमें भी संतोष नहीं कर पाते हैं। मुझे और बल चाहिए। रोज-रोज ५०० दंड बैठक लगाते, पसीना बहाते, व्यायाम करते, इन कामोंमें तो पसीना बहा डालेंगे, पर किसी रास्तागीर को कोई बहुत बड़ा बोझा हो और वह कहे पहलवान साहब! इसे उठा दो तो न उठावेंगे। अरे दंड बैठकसे पसीना बहाने वाले पहलवानों! इसमें भी तो व्यायाम होगा, तंदरूस्ती ही तो बढ़ेगी, पर मोहमें ऐसी दृष्टि नहीं होती।

शारीरिक रूपकी तृष्णाका क्लेश जिन्होंने बल पाया है वे अपने पाये हुए बलमें तृप्त नहीं होते, दुःखी रहा करते हैं। किन्हींको शरीर विरूप मिला है, रंग रूप भद्दा मिला है तो वे अपनी इस शकल पर ही निरन्तर दुःखी रहा करते हैं और किसीको सुन्दररूप मिला होतो सुन्दरता की बात यह है कि कितना ही कोई सुन्दर हो, पर कोई न कोई अंग विरूप होता ही है। हाथ सुन्दर हों तो पैर विरूप हैं, पैर ठीक हैं तो मुख विरूप है। कोई न कोई अंग विरूप हो ही जाता है। लोग कहते हैं देहमें कहीं तिल का दाना वगैरह हो तो वह शुभ है। यह तिल आदि क्या चीज है? शरीरके अन्दर अन्य जगहकी असुन्दरताको समेटकर एक थोड़े रूपमें उस असुन्दरताका एक पिंड ठहर जाय, उसी के मायने तिल मस्सा आदि। रूपवान पुरुष भी रूपकी तृष्णाके वश दुःखी रहा करते हैं।

साधुताका आनन्द और विश्वास इस संसारमें कौन सुःखी है? सभी जीव अपनी-अपनी कल्पना बनाकर दुःख करते रहते हैं। सुखी है तो एक मुनि ही है। मुनि कहते उसे हैं जो कल्याण की बातका ही भान करता रहे। दूसरे जीवोंको मुनि जो भी वचन बोले वे हित से भरे हुए वचन बोले। मुनि यथार्थ कल्याणके अभिलाषी, लोकके उपकारके इच्छुक होते हैं। वे भाई बन्धु रिश्तेदारोंसे भी अधिक प्रिय हुआ करते हैं। अंजना जब घरसे निकाल दी गयी और उसके माता पिताने भी सहारा न दिया तो भटकती भटकती जब भयानक जंगलमें पहुंची, कर्मोंका उदय देखिये कितना विचित्र होता है, उसे कुछ सहारा न था। साहस इतना जरूर था कि जो होगा देखा जायेगा। जो विपदा आयेगी उसे झेलेंगे। जब तक विपदा सिर पर नहीं आती है, तब तक उसकी कल्पना रहती है कि कहीं कोई विपदा न आ जाये, तो इस कल्पनामें क्लेश रहता है और विपदा सिर पर आ जाये तो उसमें क्लेश इतना नहीं रहता है। जैसे जब थोड़ी हरारत हुई हो और वैद्य बताये कि तुम्हारे तो बहुत तेज बुखार आयेगा तो उसका नाम सुनकर घबड़ाहट आती है। बुखार चढ़ जाये तब इतनी घबड़ाहट नहीं होती है। वह तो सामने ही है। तो वह अंजना असहाय जंगल में घूमती हुई जब ऐसी जगह पहुंची, जहां एक मुनिराज विराजे हुए थे। मुनिको देखकर उसके समस्त क्लेश समाप्त हो गये। मानों पिता मिल गया हो, रक्षक मिल गया हो। यद्यपि मुनि उसका कुछ कर नहीं सकता था। क्या करे, लेकिन ऐसी

पवित्र मुद्रा होती है मुनिपने की कि उस मुद्राको देखकर पूर्ण विश्वास हो जाता है। उतना भाई का भी विश्वास नहीं है जितना निरपेक्ष बंधु मुनिराजका होता है। ये मुनिही वास्तवमें सुखी हैं जिनको केवल ज्ञान, ध्यान और तपस्याका ही प्रयोजन है। तात्पर्य इसका यह है कि एक शुद्ध परमात्मतत्त्वके आलम्बन बिना सर्वस्थितियोंमें क्लेश ही क्लेश है। व्यर्थ को भटकना है, इससे जीवनका उद्देश धर्मपालनके लिए रखिये। धन परिजनके लिए इस जीवनको मत समझिये।

परायत्तात् सुखाद् दुखं स्वायत्तं केवलं वरम्।

अन्यथा सुखिनामानः कथमांसस्तपस्विनः॥६६॥

पराधीन सुखकी अवहेलना पराधीन सुखसे स्वाधीन दुःख होना अच्छा है। यदि यह बात मुक्त न होती हो फिर तपस्वीजन सुखी कैसे कहलाते? जिस सुखके अनुभव करनेके लिए अन्य जीवोंके अनुकूलताकी अधीनता है, कर्मोंके उदयके अनुकूलताकी आधीनता है वह सुख काहेका सुख है? वास्तविक सुख तो वह है जहां परकी आधीनता नहीं है। केवल आत्मासे आत्माका ही विकास हो रहा हो, वही वास्तविक सुख है।

विविक्तताके अनुभवका अन्तःपुरुषार्थ यह दुर्लभ मनुष्यजीवन पाकर अपने अन्दर ही अन्दर यथार्थ विवेक और विचार बनाकर वास्तविक तत्व का दर्शन करना और वास्तविक तत्वमें ही दृष्टि लगाना, इससे बढ़कर अन्य कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं है। यद्यपि गृहस्थावस्थामें अनेक बातें करनी होती हैं, आरम्भपरिग्रहके कार्य हुआ करते हैं, फिर भी मूलमें अन्तरंगमें यदि यह श्रद्धा बन जाये कि मेरा तो मात्र एक ही प्रोग्राम है सर्वोच्च मौलिक कि मैं शरीरसे भी रहित होकर केवल आत्मा ही आत्मा रहूं, किसी परपदार्थसे न हमारा राग सम्बन्ध रहे और न शरीरके साथ निमित्तनैमित्तिक बन्धनका सम्बन्ध रहे। मैं यह आत्मा जिसमें विचार वितर्क उत्पन्न होते हैं, यह मैं केवल (अकेला, शुद्ध) ही रह जाऊँ ऐसा इसका प्रोग्राम है, लक्ष्य है, इसके लिए ही अन्तःपुरुषार्थ हो, इस बातकी श्रद्धा यदि अपने भीतर आये तो समझिये कि मेरा जन्म पाना सफल है।

पराधीन सुखकी तृष्णाकी हेयता यह धन सम्पदा तो अनेक प्रकारकी पराधीन है। प्रथम तो पुण्यका उदय हो तब यह सम्पदा प्राप्त होती है। कोई मनुष्य अपने हाथ पैर से इसे कमाता नहीं है, अथवा अपने वर्तमान परिणामोंसे इसे खींचता नहीं है। यह जो पूर्वकृत धर्म और पुण्य से कर्मबन्ध हुआ है उसके उदयका फल है, इस सम्पदाका काम सम्पदामें होता है, होने दो। वह जहां आता है आये, जहां जाता है जाये। यह मैं आत्मा तो सबसे निराला केवल अपने स्वरूपमात्र सदा परिपूर्ण हूँ ऐसी अपनी दृष्टि कभी कोई क्लेश आये भी तो वह क्लेश अच्छा है, पर पराधीन सुखकी तृष्णा करना भला नहीं है।

स्पर्शेन्द्रियजन्य सुखकी पराधीनता सांसारिक सुख ६ प्रकारके हुआ करते हैं स्पर्शेन्द्रियजन्य सुख, रसनेन्द्रियजन्य सुख, घ्राण-इन्द्रियजन्य सुख, चक्षुरिन्द्रियजन्य सुख, कर्णेन्द्रियजन्य सुख और मानसिक सुख। स्पर्शेन्द्रियजन्य सुखको संसारी जनोंने सबसे प्रधान सुख माना है विषय मैथुन काम

प्रसंगोको, लेकिन यह काम कितना पराधीन है और कितना असार है, इसकी तरह अन्य कोई सुख असार और पराधीन नहीं है। जिसे पुरुष अथवा स्त्रीका इस सुखसे सम्बन्ध है, उसके अनुकूल चित्त रहना, अपने आपकी ओर उसकी प्रेमदृष्टि रही आये ऐसा परिणाम रहना, यह सब पराधीनता है।

परापेक्ष सुखकी पराधीनताका कारण जगतमें सभी जीव स्वतंत्र हैं। प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है, अपने सत्वसे परिपूर्ण है, हमारे सोचनेसे किसी परजीवमें परिणमन नहीं होता है। कदाचित् ऐसा योग मिलता है कि जैसा हम चाहें, तैसा परजीव भी चाहने लगे, और इस प्रकार परिणमने लगे, किन्तु इस अनुकूलताका विश्वास कुछ नहीं है। आज कोई आपके अनुकूल है, आपके विषयसाधनोंमें मददगार है, किन्तु ऐसा सदा नहीं रह सकता है। जगत्के समस्त सुख पराधीन हैं।

कामजन्य सुखकी असारता इस कामजन्य सुखमें आरम्भमें भी आकुलता, बीचमें भी आकुलता, और इस सुखका जो परिणाम निकलेगा वह भयंकर बनेगा। वहां भी आकुलता है, और क्षण भरके सुखके लिए कितने समय तक जाल बिछाया जाता है, अपने आपके बलको हीन बनाया जाता है, आशा और तृष्णाके वश होकर अपने आत्मप्रभुका घात किया जाता है और तत्व कुछ भी नहीं निकलता है, केवल पछतावा रहता है। यह कामजन्य विषयभोगके सुख की बात कही जा रही है। ब्रह्मचर्यके घातसे उत्पन्न हुआ कामजन्य सुख अत्यन्त असार है। इस पराधीन सुखसे तो स्वाधीन रहकर जो भी क्लेश और विडम्बना आयें उनको हंसकर समता से झेलना यह भला है। जो गृहस्थजन इस वैषयिक सुखके लोभी होते हैं, उनकी स्थिति देखो, और साधुजन इस सुखसे अति विरक्त होते हैं उनकी स्थिति देखो। वे अलग किसी स्थानमें बर्तते हुए मनमे कितना प्रसन्न रहा करते हैं, उनको चिन्ता और शल्य कुछ नहीं है। स्वाधीनतामें ही वास्तविक आनन्द है। पराधीन सुख मिले तो वहां शान्ति कहां है?

रसनेन्द्रियजन्य सुखकी पराधीनता सांसारिक द्वितीय सुख है रसनेन्द्रियजन्य सुख। गलेके नीचे भोजन उतर जाने पर वह मिट्टीकी ही तरह है। जिसके अग्र भाग पर जितनी देर वह स्वादिष्ट रसीली वस्तु रहती है, इतनी देरका एक काल्पनिक सुख है, और उसके पश्चात् फिर उस का स्वाद नहीं रहता है। कितनी ही स्वादिष्ट मिठाई पकवानका भोजन पेटमें पहुंच जाय, उसका स्वाद फिर नहीं रहता है, बल्कि एक स्वास्थ्यके प्रकृतिके विरुद्ध पड़ता है। ऐसा विशिष्ट रसीला भोजन भी पाना एक पराधीनताकी चीज है। प्रत्येक परिस्थितिमें रहने वाले मनुष्योंमें भी रसनाइन्द्रियजन्य सुख पानेके लिए पराधीनता है। यह पराधीनता भी अनुभवमें स्पष्ट होती है। कोई गृहस्थ जब अधिक धन कमाये, विषयोंका साधन जोड़े, कितनी भी प्रकारकी वस्तुओंका संचय करे और फिर घरमें बनाने वाला भी उस तरहका विषयाभिलाषी हो, रुचिपूर्वक रसीला भोजन बनावे और फिर खाते समय भी कोई अन्तराय न आ जाय, कोई विघ्न डालने वाला न हो, कितनी ही बातोंसे बचकर और साधन संचयके श्रमसे थक कर यह रसनेन्द्रियजन्य सुख भोगा जाता है। कदाचित् किसीको क्षोभकिये बिना रसनेन्द्रियजन्य सुख मिल जाये तो भी उसमें अनेक पराधीनताएँ हैं। तृष्णावोंका दास बनकर ही उनको कोई भोग पाता है।

संतोंके पारमार्थिक स्वाधीनताकी रूचि मुनि इन भोगोंको , भोजन को, रसास्वादनको असार जानकर, अपना स्वरूप न समझकर केवल अपने ज्ञानानन्दस्वरूपके अवलोकनसे उत्पन्न हुए आनन्दसे तृप्त रहा करते हैं और इस आत्मानुभवकी स्थितिकी साधना बनाते हुएमें अनेक कष्ट भी आते हों तो मुनि भी उन कष्टों में प्रसन्न रहते हैं, पर सुखकी अभिलाषा करके जो पराधीनता आशा प्रतीक्षाका जो कष्ट होता है उसे पसंद नहीं करते हैं। हम आप मंदिरमें आकर वीतराग सर्वज्ञ प्रभुकी मूर्तिके समक्ष परमात्मतत्वके दर्शन करना चाहते हैं, वह परमात्मतत्व और हैं ही क्या? यही तो है कि वह ज्ञानानन्द पिंड इन समस्त पराधीनतावोंसे रहित अपनी स्वतंत्रताके विलासमें रम रहा है। बस यही तो प्रभु है। जब तक ऐसी प्रभुताकी प्राप्ति की मनमें वाञ्छा न जगे, उत्सुकता न बने तब तक हमने प्रभुका क्या दर्शन किया? कोई श्रम करके उसका लाभ न मिले तो वह श्रम व्यर्थ है। ऐसे ही दर्शन वन्दन पूजनका श्रम करके हमको भी एक झलक न मिले, जिस झलक में हमारे यह उत्साह जगे कि मैं इस शरीर और रागादिक विकल्पोंसे रहित होकर केवलज्ञान ज्ञानरूप अनुभव करूँ, ऐसी दृष्टि जगे बिना हम लोगोंके सब परिश्रम बेकार है।

विनश्वर भोगोंकी वाञ्छाकी हैं व्यर्थता इस लोकमें बड़े-बड़े सम्राट, चक्री, धनी, सेठ कोई भी नहीं रहे हैं। इस मुफ्ती समागमको पाकर जिसमें मेरे आत्माका कोई गुण नहीं लगा है ऐसा जो कुछ भी वैभव मिला है वह सब मुफ्तका ही तो समागम है, मेरा इसमें क्या लगा हुआ है? उसका सदुपयोग उससे विरक्ति और अपने ज्ञानकी ओर झुकाव जो नहीं कर पाये हैं, उन पुरुषोंका मरण संक्लेशपूर्ण हुआ है और ऐसा ही निर्णय आजकल के लिए है, सदाके लिए भी है। पराधीन सुखसे स्ववश कष्ट भोग लेना अच्छा है।

गन्धभोगकी संतोंके अनाकांक्षा तीसरा सुख है घ्राणेन्द्रियजन्य। एक अपने मनमें स्वच्छन्दताका बढ़ाना ही तो है। फूल इत्र सुगंधित सूँघ कर मनको प्रसन्न करना, यह कोई अच्छी चीज नहीं है। केवल एक अपनी सुख समृद्धिमें रहकर एक मनका बहलावा है। इससे भी आखिर धन व्यय करना होता है, साधन जुटाने होते हैं। उसके लायक बहुतसे शौक शान बढ़ा लिये, ममत्व बढ़ा लिया, अन्य-अन्य विषयोंके साधन जुटा लिये, तो इससे इस आत्माको लाभ क्या है? ये भी पराधीन सुख है। स्वयं ही जो होता हो, हो। यह प्राकृतिक हवा, यह प्राकृतिक गंध है। इसमें भी संतजन दृष्टि नहीं लगाते हैं। वे तो केवल एक स्वाधीन आत्मानुभवके आनन्दका भोग किया करते हैं। पराधीन सुखसे स्वाधीन क्लेश भी उत्तम होता है और इसी कारण साधुजन सुखी रहा करते हैं। उनका उपयोग केवल आत्मा में ही लगा रहता है। वे किसी से प्रीतिकी भीख नहीं मांगते हैं। जो किसी परजीवसे प्रीतिकी भीख मांगते हैं वे कष्टमें रहते हैं। फल उसका मिलता कुछ नहीं है। अपना जीवन यों ही गँवा देते हैं।

व्यर्थ रूपव्यामोह इन सुखोंमें एक विडम्बना वाला सुख है रूपका अवलोकन करना। रूप क्या चीज है? वह न हाथसे पकड़में आता है, न उस रूपमें किसी प्रकारका स्वाद है, न रूपमें कोई गंधका आनन्द है। न आत्मासे राग रागनियां फूटती हैं, केवल एक आंखोंसे सुहावना रूप देखनेकी कल्पना

बना डाली गयी है और उसके वश होकर यह जीव इतना परतंत्र हो जाता है कि जो बड़े-बड़े सुभट दिग्गज हस्ती और सिंहोंके मदको विदारण करनेमें समर्थ हैं, वे भी असार न कुछ चीजके वशमें होकर अपना बल पौरुष खो देते हैं और कायर होकर प्रीतिकी भिक्षा मांगने लगते हैं।

रसना व नेत्रके ढक्कनोंसे विजयसुविधा भैया! इन आंखों पर ये दो पलक मिले हैं, इन ढक्कनोंका उपयोग यही है कि इन व्यर्थकी चीजों को आंखोंसे देखने का काम न करें। आंखोंको बन्द रखनेको ये ढक्कन मिले हैं। जिह्वाको भी दो ढक्कन मिले हैं। स्पर्शनमें ढक्कन नहीं है। केवल दो इन्द्रियोंमें ढक्कन लगे हैं रसनामें और नेत्रोंमें। मनुष्य आरम्भ से इन्हीं दो इन्द्रियोंके वश होकर दुःख भोगता है। सो दोनों इन्द्रियोंके लिए ढक्कन मिले हुए हैं। ये ओंठ मिले हैं, इन ओंठोंको बंद रखे और नेत्रोंके पलक बंद रखें। इन इन्द्रियोंके बंद करते ही कितनी ही और विशेषताएँ स्वभावतः आने लगती हैं। ये पराधीन सुख क्लेशसे भरे हुए हैं। इनसे तो स्वाधीन क्लेश होना ही अच्छा है। साधुजन अपने तृतीय ज्ञान लोचनसे इस प्रभुताके विशाल स्वरूपको निहारते रहते हैं, वे स्वके रूपका दर्शन करते हैं। अभिलाषी पुरुष परके रूपका दर्शन करते हैं। परके रूपके दर्शनमें पराधीनता है। स्वके रूपके दर्शन करनेमें स्वाधीनता है।

विकल्पोकी थकान मेटनेका उपाय जैसे सांसारिक काम करते-करते कोई थक जाता है तो लेटकर, सोकर, आराम और विश्राम करके अपनी उस थकान को मिटाता है और फिर आगे श्रम कर सकने योग्य पुनः तैयारी करता है। यों ही समझ लीजिए कि इन विषयोंके सुखको भोगकर आशा करके, कल्पना करके जो निरन्तर दुःखी रहते हैं उस दुःखको मिटानेके लिए एक बार भी तो समस्त विकल्पोको त्यागकर एक आत्माके शुद्धस्वरूपमें दृष्टि करें। उस दृष्टिमें ऐसा बल मिलेगा कि तत्कालभी आनन्द होगा और भविष्यमें भी आनन्द बर्तेगा। लौकिक सुखको भोगनेका उचित योग होगा। अतः इन विषयोंसे विराम लेना ही उत्तम है।

शब्दादिक भोगोंकी पराधीनता ५ वां सांसारिक सुख है कर्णेन्द्रियजन्य सुख। सुरीले शब्दोंको सुनकर एक मनको प्रसन्न कर लिया जाता है। किसी से रागभरी बात सुननेको मिली और मन यह समझ जाय कि इसका मेरे प्रति प्रेम है। अरे इतनी सी समझके पीछे यह दीवाना बन जाता है। निरन्तर उसही भिन्न पदार्थको अपने उपयोगमें बसानेकी तैयारी करता है, इतनी मूढ़ता है इस व्यामोही जीवकी। यह पराधीन सुख संसार में रूलाने वाला है, तत्काल भी क्लेश देने वाला है। यह प्रभुका शासन पाया है, इसका उपयोग करले। इतना विशाल ज्ञान पाया है तो वस्तुकी स्वतंत्रता का उपयोग कर करके इस ज्ञानशक्तिको सफल करे अन्यथा मरणके बाद कीड़े मकौड़े बन गये, पेड़ पौधे बन गए तो अब वहां क्या कर लिया जायगा? मिला है श्रेष्ठ समागम तो स्वच्छन्द नहीं बनना चाहिए। इसका इस आत्महितके लिए उपयोग करें, ऐसी दृष्टि हो।

मानसिक सुखकी पराधीनता छठा सुख है बड़ा बेढब, अनियत मनका सुख। इस लोकमें सर्वत्र मेरी कीर्ति फैले, सब लोग मेरा नाम लेकर यश गायें कि ये बड़े अच्छे हैं। अरे इस दुनियाके मलिन

मूढ़ पुरुषोंने इतने शब्द कह दिये कि यह बड़े अच्छे हैं तो भला इतने शब्द सुननेसे इस आत्माका कौनसा हित हो गया? वे सब भी मायामय हैं, तुम भी मायामय हो। इस मायामय झमेलेमें सार और हित कहां रक्खा है? अपने आपको अपने वश करें।

आत्मज्ञान बिना व्यवहारधर्ममें भी पराधीनता जो पुरुष धर्मकी भी धुन रखते हैं, वहां भी परखिये अनेक प्रकारकी पराधीनताएँ हैं। उन आधीनतावोंमें कभी-कभी मन व्यग्र हो जाता है। जैसे कोई पर्वके दिन आते हैं दशलाक्षणी आदिके तो पूजा करनेको बड़ा तांता और विस्तार लग जाता है। उन दिनोंका कोलाहल तो देखो, कई-कई बार प्रसंग-प्रसंगमें क्रोध आता रहता है। अभी तुमने यह नहीं किया, हम यहां खड़े होंगे, तुम यहां क्यों खड़े हो, अभी तक पुजारी नहीं आया, अभी द्रव्य नहीं धोये, अभी प्रच्छाल नहीं हुआ, कितनी ही प्रकारकी आधीनताएँ आती हैं। यह जीव इन आधीनतावों से कषाय करता रहता है। अरे उन सब प्रसंगोंमें करनेका काम तो इतना था कि कषायरहित ज्ञानस्वरूप अपने आत्माका अनुभव करना। उन सब धर्मोंमें, उन सब परिश्रमोंमें मूलभूत प्रयोजन इतना मात्र है कि मैं अपने आपको निष्कषाय ज्ञानमात्र अनुभव करलूँ। जो इतने तप व्रत आदिक किए जाते हैं वहां भी ऐसा घटा लेना कि कल्पनासे माना हुआ धर्मप्रसंग का भी व्यवहार सुख पराधीन है। और एक निज शुद्ध ज्ञानस्वभावकी दृष्टि करके पाया जाने वाला यह आनन्द स्वाधीन है। ऐसे रहते हुए यदि कोई कष्ट आये तो वह कष्ट भी भला है।

वस्तुमें परकी अनाधीनताका स्वरूप यद्यपि वस्तुका स्वरूप सब स्वाधीन है, पराधीनता तो कहीं है ही नहीं। जो मोही मूर्ख पराधीन बन रहे हैं, वे भी अपने आपमें उस प्रकारके विचारका परिणामन बनाकर स्वाधीनतासे ही पराधीन बन रहे हैं। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थको अपने आधीन नहीं कर पाता, क्योंकि समस्त वस्तु स्वतंत्र है। हाथमें हाथ है, जीवमें जीव है, परिजनमें परिजन है, वैभवमें वैभव है। किसी भी पदार्थका किसी अन्य पदार्थके स्वरूपमें प्रवेश नहीं है। फिर भी यह जीव अज्ञानवश परसे प्रीतिकी भीख मांगता है। मुझे ये कितना चाहते हैं, ये कम चाहते हैं इसका ही क्लेश है। किसीने कह दिया कि यह बहुत अच्छा है तो उसकी खुशी माननेका क्लेश। यह जीव विषयभोगोंके प्रसंगमें निरन्तर दुःखी ही रहा करता है। इस पराधीन सुखकी आशाको तजकर जिस पथसे प्रभु परमात्मा हुए हैं उस स्वाधीनपथमें आस्था बनायें। स्वाधीनपथमें आस्था बनाने से ही शान्ति का मार्ग मिलेगा।

**यदेतत् स्वच्छन्दं विहरणमकार्पण्यमशनम्,
सहायैः संवासः श्रुतमुपशमैकश्रमफलम्।
मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरायाति विमृशन्,
न जाने कस्येयं परिणतिरूदारस्य तपसः॥६७॥**

साधुस्थिति धर्म दो प्रकारके पात्र पालन करते हैं एक गृहस्थ और दूसरा साधु। गृहस्थ उसे कहते हैं जो साधुधर्मका उपासक हो। सद्गृहस्थ वही है जिसके चित्तमें साधुकी स्थिति पाने की

अन्तरङ्गमें अभिलाषा रहती हो, क्योंकि गृहस्थ यथार्थज्ञानी है तो उसे अपने इस कीचड़ वाली परिस्थितिमें संतोष नहीं होता। भले ही कुटुम्बमें पुत्र मित्र सभी लोग हैं स्त्री, भाई, परिवार सम्पन्न होकर भी उसे परिवारमें संतोष नहीं होता, क्योंकि उसने आत्माके यथार्थज्ञानको प्राप्त कर लिया है। वह इन सब समागमोंको भिन्न और असार समझ रहा है। जब सद्गृहस्थको पाये हुए परिवार और वैभवमें रमण करनेका भाव नहीं रहा है तब उसका आत्मा साधुस्थितिकी ओर जाता है। साधुकी स्थिति ही वास्तवमें प्रशंसनीय है गृहस्थ चिन्तन कर रहा है कि यह मेरा समागम सुखदायी नहीं है। कोई जीव किसी गतिसे आया, कोई किसी गति से आया, आज एक झोंपड़ीमें इकट्ठे हो गए हैं, ये कुछ मेरे हैं क्या? अपना समय पाकर सब बिछुड़ेंगे और अपने अपने कर्मानुसार जुदी-जुदी गतियोंको चले जायेंगे। ऐसी चिन्तनामें समाया हुआ है सद्गृहस्थ।

गृहस्थीमें गजस्नानवत् धर्मक्रियायें भैया! गृहस्थीमें काहेका आनन्द है? कदाचित् कोई धर्मके नामपर कुछ धार्मिक कार्य भी करके, पूजन किया, वंदन किया, कोई धार्मिक कार्य भी कर लिया, कितने ही धार्मिक समारोह किये, पर ये सब कुछ करनेके बाद भी काम तो वे ही करेंगे आरम्भ और परिग्रहके और जैसा चला रहे थे व्यवहार, उस तरहके कार्य करेंगे। जैसे हाथी सरोवर में स्नान कर लेता है, स्नान करके जब बाहर निकलता है तो सूँढ़में धूल भरकर अपने शरीरपर डाल लेता है। इस तरह की स्थिति इस गृहस्थावस्थामें है। कदाचित् पर्वोंके दिनोंमें धार्मिक दिवसोंमें कुछ परिणामोंमें निर्मलता बनायी गयी तो कुछ ही समय बाद फिर वही का वही ढंग आ जाता है, ऐसी परख है इस गृहस्थको, इस कारण वह गृहस्थीमें रमण नहीं करता है। उसके चित्तमें साधुकी स्थिति होती है।

साधुका स्वाधीन विहार धन्य है उस तपस्वीकी परिणति जिसका स्वच्छन्द तो विहरण है। जब तक मन आये तब तक रहे, न मन आये तो वहांसे चल दिया। इस प्रकार स्वच्छन्द तो विहरण है उसका, जबकि गृहस्थावस्थामें बन्धन है। कैसे विहार करें? गृहस्थ जाये भी कहीं 100-150 हजार मील बाहर विदेशमें तो भी उपयोगका, ममताका नाता, ममताकी प्रीति बराबर लगी हुई है। घरमें आखिर यहां वहां आकर भी अन्तमें उस घरमें आना ही पड़ता है। कैसे विहार हो स्वच्छन्द? गृहस्थका चिन्तन चल रहा है। धन्य है उस साधुकी वृत्ति, जिसका पक्षीकी तरह विहार है। चिड़िया कहीं किलोल कर रही है, मन आया तुरन्त उड़ गयी। कहीं की कहीं चली गयी। यों ही इन साधुजनोंका विहार होता है, आज यहां है कल कहीं चला गया। पर गृहस्थका स्वच्छन्द विहरण नहीं हो सकता। भाई भाईमें या बाप बेटामें लड़ाई हो जाये और उस लड़ाईसे ऐसी धौंस जमाये कि हम तो अब भगे जाते हैं, इस घरमें न रहेंगे, तो लोग कहते हैं कि भाग जा अच्छा देखो कहां जाता है? सब समझते हैं कि जब चित्तमें ममताकी फांस लगी हुई है तो भागेगा कहां? सब जानते हैं, पर साधु तपस्वीकी परिणति में स्वतन्त्रता समा रही है।

उपासकके साधुताकी रूचि यद्यपि यह गृहस्थ अभी उस परिणति को नहीं प्राप्त कर पा रहा, किन्तु जिस शुद्ध परिणतिकी रूचि मुनिके होती है, स्वाद उसका कुछ इसे आता ही है। चित्तमें

मुनिराजकी परिणति यदि समायी हुई है तो उसे विशेष आनन्द आता है केवल एक साधुताके चिन्तनमें ही। कोई अमीर है तो वह आधा सेर मिठाई खरीदकर खाता है और कोई गरीब है तो वह उसी दुकानसे वही मिठाई एक छटांक खरीदकर खाता है, तो उस गरीबको स्वाद तो वही आया है जो उस अमीरको आया है। एक सम्यग्दृष्टि गृहस्थ जो कुछ परिस्थितियोंके बन्धनमें है, लेकिन यथार्थज्ञानका भान है, किस मार्गमें चलना चाहिए था, हमें अपना उपयोग कैसा बनाना चाहिए था ऐसा उसे यथार्थज्ञान है। इतनेमें ही उसे उस जाति का स्वाद आ जाता है जो साधु महाराजको उस परिणतिमें चलने पर विशेष स्वाद आता है। ऐसे साधुताके स्वरूपका हमें लक्ष्य बनाये रखना चाहिए।

दृष्टिके अनुसार स्वाद बादशाहने बीरबलसे कहा भरी सभामें बीरबल! मुझे आज ऐसा स्वप्न आया कि हम तुम दोनों घूमने जा रहे थे, तो रास्तेमें २ गड्डे मिले। एक था शक्कर का गड्डा और एक था गोबर का। तो हम तो गिर गए शक्करके गड्डेमें और तुम गिर गये गोबर विष्टाके गड्डेमें। तो बीरबल ने कहा हुजूर हमने भी आज ऐसा ही स्वप्न देखा, आप तो गिर गए शक्कर के गड्डेमें और हम गिर गए गोबर विष्टा के गड्डेमें, पर इससे आगे थोड़ा और देखा कि हम आपको चाट रहे थे और आप हमें चाट रहे थे। अब बतावो बीरबल ने क्या चाटा? शक्कर और बादशाहको क्या चटाया? गोबर विष्टा। ऐसे ही गृहस्थ आज फंसा हुआ है, लेकिन यदि उसकी दृष्टि साधुताकी ओर है, मोक्षमार्गके लिए है, अपने आपके अकिञ्चनस्वरूपकी समृद्धिकी ओर है तो स्वाद तो उसे अनाकुलताका आ रहा है।

साधुका अकार्पण्य अशन कैसी साधुजनोंकी परिस्थिति है कि स्वच्छ तो जिनका विहरण है और तृष्णा बिना जिनका भोजन है। साधुजनोंको अपने बारेमें भी न पहिले विचार रहता, न बादमें विचार रहता। मुझे क्या खाना है, मैंने क्या खाया है? जो भोजन बनाकर खाते हैं, बनाकर खाते हैं, उन्हें तो इसका विकल्प होता ही है, अमुक चीज नहीं बनाया, यों नहीं बनाया। थालीमें परोसवा कर खाते हैं, और जहां थालीमें ५-७ चीजें रक्खी हैं, तो उन्हें भोगते हुएमें कौनसी चीज मीठी है, जो बहुत सरस चीज है उसे खायें अथवा पहिले साधारण भोजन कर लें, फिर मीठा खायेंगे, और पहिले मीठा खा लिया, न बचेगा तो फिर और मिलेगा खानेको। कितनी तरहकी कल्पनाएँ उठायी जा सकती हैं। किन्तु जिसके एक ग्रास ही भोजन हाथमें आया है वह क्या कल्पनाएँ करेगा? उसका भोजन तृष्णारहित होता है। कृपणता कहते हैं अपनानेको। खर्च न करने का नाम कृपणता नहीं है, किन्तु अपनानेका नाम कृपणता है। धनको अपनानेसे यह परिणाम निकलता है कि धन खर्च नहीं किया जा सकता। इसलिए धनके खर्च न करनेका नाम कृपणता पड़ गया है। धनके खर्च न करनेका नाम कृपणता नहीं है, परद्रव्यको अपनानेका नाम कृपणता है, जो भोजनको अपनाते नहीं हैं, रूचिमें लेते नहीं हैं, वहां कृपणता काहेकी?

साधुवोंकी साधुसंगतिकी रूचि साधु महाराजको विरक्त ही विरक्त पुरुष रूचते हैं, मोहीजनोंको मोही ही रूचते है, व्यसनियोंको व्यसनी ही रूचते हैं। अज्ञानियोंको अज्ञानी ही रूचते हैं, ऐसे ही

धर्मात्माजनोंका चित्त साधुजनोंके सहवासमें टिकता है। गृहस्थजन पूजा करके शान्तिपाठमें एक प्रार्थना बोलते हैं, जिसमें ७ चीजें वह गृहस्थ चाहता है शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः, सद्वृत्तानां गुणगणकथादोषवादे च मौनम्। सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे, सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः। इसमें श्रेष्ठ पुरुषोंकी संगति सदा करनेका भाव दिखाया है।

उपासककी प्रथम तीन मांग नाथ! जब तक मेरा मोक्ष नहीं होगा तब तक भव भवमें मुझे ये सातों चीजें मिलें। पहिले तो शास्त्राभ्यास शास्त्रों का अभ्यास बना रहना। दूसरी चीज जिनेन्द्र भगवानके चरणोंकी भक्ति बनी रहना। मेरे हृदयमें जिनेन्द्रदेवका, वीतराग सर्वज्ञदेवका, शुद्ध विकास बसा रहे। यदि शुद्धका उपयोग होगा तो कोई हैरान न कर सकेगा। इस जीव पर देखो कितनी विपदा है? ये मोही जीव लौकिक विपदाओंके हटानेका तो प्रयत्न करते हैं, पर अपने आपमें समायी हुई विषयपरिणति वासनाकी विपदाको दूर करनेका चिन्तन भी नहीं करते हैं। नाथ! निर्विकार, निष्कलंक, निर्दोष, शुद्ध परमात्मदेव मेरे चित्तमें बसो। भगवान्में प्रेम परिजनोंके प्रेमसे कई गुणा होना चाहिए, तब वह सद्गृहस्थ है। ये बाहरी प्रसंग तो बड़े यत्न करने पर भी मुश्किलसे उत्पन्न होते हैं। इनमें रमनेका तो कर्त्तव्य है ही नहीं। प्रभु मेरेमें तुम्हारे चरणकी उपासना बनी रहे। तीसरी बात चाहते हैं सदा श्रेष्ठ पुरुषोंकी संगति रहे। पहिले समयमें व्यापारी लोग अपनी सीमा रखते हो हमारे इतना बिक जाये तो दुकान बन्द करके मंदिर में बैठेंगे, ऐसी कई लोगोंकी भावना रहती थी। तो मंदिरमें गोष्ठी दोपहरसे ही लगना शुरू हो जाती थी, धर्मचर्चा स्वाध्याय होता था। तुम्हारे रात दिनमें एक दो घंटेका समय सज्जन पुरुषोंकी संगतिमें व्यतीत होवे, ऐसी लगन होनी चाहिए।

उपासककी शेष चार मांग गृहस्थ पूजा करके अन्तमें चौथी बात चाहता है, गुणियोंके गुणोंका हम गान करते हैं। लोक ईर्ष्यासे, अभिमानसे गुणियोंके गुण भी नहीं गा सकते। जिन्हें गुणोंसे प्रेम होता है उन्हें पर्यायमें अहंकार नहीं होता है। वे गुणोंके प्रेमसे गुण गाया करते हैं। प्रभु मुझमें ऐसा माद्दा जगे कि मैं गुणी पुरुषोंके गुण गाता रहूं। उनके गुण गानेमें हिचक न हो। ५वीं बात हम चाहते हैं किसी के दोषोंको मुखसे न बोलें। ६वीं बात हम चाहते हैं कि मैं सबसे प्यारे हितकारी वचन बोलूँ और अंतिम भावना है मेरी कि शुद्ध अंतस्तत्त्वकी भावना हो। निरन्तर यह प्रतीति रहे कि मैं ज्ञानानन्दरूपी हूँ, ऐसी आत्मतत्त्वकी भावना रहे। इस तरहकी परिणति साधुजनों के अधिकाधिक होती है।

साधुवोंका शान्तिप्रद श्रुत और भी साधुवोंकी वृत्ति निरखिये, उनका ज्ञान, उनका श्रुत एक शान्ति संतोषके फलको देने वाला है, जबकि छोटे लोग कुछ थोड़ा ज्ञान पाकर विवाद और अशान्ति फैलाया करते हैं। किन्तु साधुजनोंका जितना ज्ञान बढ़ाया जाता है उतनी ही शान्ति बढ़ती जाती है। विद्या उनकी विवादके लिए नहीं है। उनका मन मंद स्पंद वाला है, चंचल नहीं हैं, गम्भीर है। जरा-जरा सी घटनावोंमें क्षोभ का उबाल नहीं आता है। वे दूसरेके अपराधको क्षमा कर देते हैं। जीवोंके हितके लिए उनके मनमें स्थान है। किसीके अहित के लिए उनके मनमें स्थान नहीं है। साधुजन बहुत बड़े समय तक आत्मतत्त्वके विचारमें बने रहते हैं।

गृहस्थोंका आदेय अन्तःसाहस गृहस्थजनोंको इतना तो साहस रखना चाहिए कि जब घरमें चार छः पुरुष हैं तो सब प्राणियोंके साथ भाग्य लगा है। चिन्ता न करिये। लड़कोंका क्या होगा, लड़कियोंका क्या होगा? अरे सबके साथ भाग्य लगा हुआ है। ज्ञानीजन कभी चित्तमें ग्लानि भी नहीं करते। मेरी क्या स्थिति है, क्या होगा? कोई चिन्ता न कीजिए। सबके साथ भाग्य लगा है। उदयानुसार सब कुछ प्राप्त होता है। सब चिन्ताएँ छोड़ो, अपना जीवन तो धर्मके लिए ही मानों, विषयोंके लिए नहीं, दुनियामें बड़प्पन चाहने के लिए नहीं। किन्तु अपने आपके उस शुद्धस्वरूप को निहारकर अपनेमें प्रसन्न रहें, और इस धर्मका जो उत्कृष्ट शान्ति है उसे भोगता रहें, इसके ही लिए जीवन है ऐसा जानना।

साधुवोंका अनुपम विशुद्ध परिणमन ऐसी विशुद्ध परिणति अहो! न जाने किस उदार तपस्वीकी होती है? उस ही तपस्वी पर यह उपासक गृहस्थ झुक रहा है, तभी तो अपनी वर्तमान स्थितिपर उसे विषाद है कि यह परिग्रहका बोझ कब तक लादा जायगा? दूसरे जीवोंकी चिन्ताका भार इस उपयोग पर कब तक बना रहेगा? तो इन सब भारोंसे हटकर विशुद्ध आत्मीय आनन्दको चाहते रहते हैं। यों साधुजन सदा सुखी नजर आते हैं। इस प्रसंगमें उनकी परिणतिका दिग्दर्शन किया गया है। अब आगे मुनियोंकी और भी प्रशंसनीय परिणतियां कैसी होती हैं, इस सम्बन्धमें कहा जायगा।

**विरतिरतुला शास्त्रे चिन्ता तथा करुणा परा,
मतिरपि सदैकान्तध्वान्तप्रपञ्चविभेदिनी।
अनशनतपश्चर्या चान्ते यथोक्तविधानतो,
भवति महतां नाल्पस्येदं फलं तपसो विधेः॥६८॥**

साधुवोंकी अनुपम विरक्ति साधुजनों की इसमें महिमा बतायी गयी है। ज्ञानी संतोंके अनुपम विरक्ति रहती है। तो बात जैसी है तैसी ज्ञानमें बनी रहे तो वैराग्य जगता ही है, क्योंकि जगत्का कोई भी पदार्थ राग करने लायक नहीं है। जिसको शान्तिमय रहना हो, वह खूब निर्णय करके देख लो कि बाह्यमें कौनसा पदार्थ ऐसा है जिसमें राग करके हम शान्ति प्राप्त कर सकें। परिवार, वैभव, यश, इज्जत कुछ भी तो ऐसा नहीं है जिसके राग करनेसे आत्माको लाभ हो। यथार्थज्ञानके बलसे सब परपदार्थोंसे उपेक्षा रक्खे रहना और निज ज्ञानस्वरूपकी ओर झुकना, ऐसे वैराग्यकी प्रवर्तनामें अतुल आनन्द आता है। रागकी पराधीनता में कष्ट विपदा, विडम्बना सभी ऐब तो रक्खे हैं। वह गृहस्थ भी धन्य है जो राग छोड़ते नहीं बनता, तब भी हृदयमें ऐसा विश्वास तो जमाये है कि यह चीज राग करने योग्य नहीं है। इतनेसे प्रकाशके कारण गृहस्थजनोंकी शान्ति बनी रहती है। साधुवोंके तो अनुपम ही विरक्ति है।

विरक्तिमें सम्मान अपमानकी उपेक्षा एक 'वैराग्य प्रकाश' पुस्तकमें कथा लिखी है कि गुरु शिष्य थे। वे किसी छोटी पहाड़ी पर ठहर गये। गुरुने देखा कि राजा साहब हाथी पर सवार होकर और सैंकड़ों हजारों नर-नारियोंके साथ दर्शन करने आ रहे हैं। गुरुको थोड़ी यह चिन्ता हुई कि यदि

इस राजाका दिल मेरे प्रति भक्तिभावसे भर गया तो मेरे पास बहुत भीड़ आयेगी और मेरा ध्यान तप सब खत्म हो जायेगा। इससे ऐसा उपाय करें कि राजाको यह जंचे कि यह साधु नहीं है, गुरु नहीं है। यह तो कोई तुच्छ आदमी है। गुरुने शिष्यसे कहा देखो बेटा! वह राजा आ रहा है। राजा निकट आये तो यह चर्चा छेड़ देना कि हमने आज कम खाया तुमने ज्यादा खाया आदि। जब राजा आया तो वे दोनों गुरु शिष्य आपसमें लड़ने लगे। गुरुने कहा हमने तो आज दो ही रोटी खायी। तुमने ज्यादा रोटी क्यों खाई? शिष्य बोला कि हमने आज 10 रोटी खायी हैं, तुमने भी तो कल 10 रोटी खायी थीं। जब इस प्रकारकी बातें आपसमें हो रही थीं तो राजा आया और सुनकर लौट गया। सोचा कि ये तो कोई छोटे लोग हैं जो आपसमें खाने पीनेके लिए झगड़ रहे हैं। तो देखो उसने अपना अपयश फैलवा कर भी अपनी ज्ञानरुचिकी रक्षा की। इसे आप वैराग्य न कहोगे क्या? हालांकि इसको भला नहीं कहा जायगा कि कोई साधु ऐसी घटना बनाए अपनी रक्षाके लिए। ऐसा ज्ञानी संत नहीं करते, पर हम यह प्रकाश डालना चाह रहे हैं कि यों न सही पर किसी भी प्रकार साधुका अपमान और अपयश हो, उससे वे घबड़ाते नहीं हैं, किन्तु वे अपनी आन्तरिक निर्मलतामें प्रसन्न रहा करते हैं। इतना अतुल वैराग्य होता है।

साधुवोंका शास्त्रमनन व करुणाभाव साधुजनोंकी महिमा बतायी जा रही है कि उनको शास्त्रका चिन्तन बहुत अधिक होता है। उन्हें और करना क्या है, सिवाय धर्मशास्त्रज्ञानकी चर्चा करना और चिन्तनके अतिरिक्त उनका कोई प्रोग्राम ही नहीं है। उन्हें कुछ अन्य रुचता भी नहीं है, अपने मुनि ऋषियोंके अनुभवोंको बड़े प्रेमसे वे बांचते हैं। जैसे किसी कामी पुरुषको कामभरा उपन्यास मिल जाय तो उसको ऐसी रुचिसे वह बांचता है कि उसे खाने पीनेकी भी सुध नहीं रहती, ऐसे ही साधुजनोंको उस शुद्ध ज्ञानानुभवसे प्रेम है जिस ज्ञानानुभवकी बात ऋषिजनोंके ग्रन्थमें लिखी हुई है। वे उसका अध्ययन करके अपनेको तुष्ट रखते हैं। खाने पीने को वे कुछ महत्व नहीं देते। साधुजनोंके उत्कृष्ट दया होती है। ये संसारी जन जरासी भूलके कारण इतना घोर संसारका दुःख भोग रहे हैं। इन्हें अपने स्वरूपका परिचय नहीं हुआ है। ऐसी भावनासे वे साधुजन उपदेश देनेका प्रयत्न करते हैं, इससे बढ़कर लोकमें ओर कुछ महान उपकार नहीं हो सकता है। कोई भूखा है, गरीब है, उसे भोजनका साधन जुटा देना वह भी दया है। किन्तु यह दया उसका सदाका संकट नहीं मेट सकती। थोड़े समय के लिए कुछ मौज आ गई, उस मौजमें भी क्लेश भरा है। वह कितने दिन मौज रहेगी? जब तक जन्म-मरणकी परम्परा संसारी जीवके लगी हुई है तब तक किसको सुखी कहा जाय?

सम्यग्ज्ञान बिना शान्तिका अनुपाय धन वैभव बहुत हो गया, यह भी कोई सुख नहीं है, क्योंकि इसका विश्वास भी नहीं है कि कल क्या होगा और इसके पीछे मेरा क्या हाल होगा? और जब तक है तब तक भी परदृष्टिका आशय होनेसे इसे बेचैनी ही रहती है। कल्पनाजाल बना रहता है। सांसारिक शरीरसम्बन्धी विषयोंके द्वारा दुःख मिटा देनेको भी दया कहते हैं, पर उससे उत्कृष्ट दया साधुवोंके होती है। यद्यपि साधुजनोंके पास ऐसे साधन नहीं हैं कि कोई भूखा हो तो उसे खिला

दें। कोई गरीब है तो उसे कुछ दे दें। वे स्वयं अकिञ्चन् हैं, शरीरमात्र ही उनके परिग्रह रह गया है। फिर भी वे उत्कृष्ट करुणाकी मूर्ति कहलाते हैं। ये संसारीजन यदि अपने ज्ञानानन्द स्वरूपका परिचय पा जायें तो ये तो संसारके संकटोंको अनन्तकालके लिए दूर कर देंगे। केवल आत्मा ही आत्मा रहे, शरीरादिक का सम्बन्ध न रहे, यह आत्माके उत्कृष्ट आनन्दकी स्थिति है। इस स्थितिके लिए चिंतन किया करते हैं साधु।

साधुओंके सर्वाहितकारी करुणा ज्ञानी संत जन उत्कृष्ट करुणावान् हैं। वे किसी भी जीवका अहित नहीं विचारते। यहां तक कि यद्यपि अभव्य जीव संसारसे पार नहीं हो सकते, लेकिन वे जगत्का हित सोचते समय अभव्यों को छोड़ दें और भव्योंके ही हितकी बात सोचें। ऐसा भी विकल्प उनके नहीं उठता है। जिसका होनहार हो, होगा पार। मगर साधुके चित्तमें तो समस्त जीवोंके प्रति करुणाका भाव रहता है। इन साधुजनों की बुद्धि भी एकान्त अंधकार के विस्तार को नष्ट करने वाली है। जब तक पदार्थका यथार्थ ज्ञान नहीं होता, तब तक शान्तिका रास्ता नहीं मिलता।

वस्तुस्वरूपके प्रतिपादनकी विशेषता जैनधर्ममें सबसे बड़ी यह विशेषता है जो वस्तुके स्वरूपके प्रतिपादनकी है। दया करना यहां बताया, सब जगह बताया। ब्रह्मचर्यसे रहना, तृष्णा न करना, असत्य न बोलना ये सभी बातें जैन शासनमें भी कही हैं और अन्य शासनोंमें भी कही हैं। इसमें जैन शासनकी क्या महत्ता सिद्ध होगी? जैन शासनकी महत्ता वस्तुस्वरूपके यथार्थ प्रतिपादनसे है। सारे संकट वस्तुस्वरूपके यथार्थ ज्ञानसे ही मिटा करते हैं। प्रत्येक वस्तुका स्वरूप उस उस हीमें गर्भित है। मेरे प्रदेशसे बाहर मेरा कुछ नहीं है। सभी पदार्थ अपने स्वरूपके दृढ़ किलेमें स्वरक्षित रहते हैं। किसी परवस्तुमें हमारा अधिकार नहीं है। मेरा कुछ भी नहीं है जगत् में। यथार्थज्ञान होने पर मोहभाव हट जाता है, और मोह हटा कि सारे संकट टल जाते हैं। संकटोंकी जड़ तो मोहभाव है।

मूलभावे कुतः शाखा एक जंगलमें सिंहके घरमें गुफामें स्यालिनी ने बच्चे जन्मे। अब चिन्ता यह हो गयी कि सिंह आयेगा तो बच्चोंको खा लेगा। सो स्याल स्यालिनीने एक उपाय बनाया। स्याल गुफाके ऊपर एक भीत पर बैठ गया। जब एक सिंह आया तो स्यालिनी ने बच्चे रुला दिये। स्याल पूछता है कि ये बच्चे क्यों रोते हैं? तो स्यालिनी कहती है कि ये बच्चे शेर का मांस खानेको मांगते हैं। इतनी बात सुनकर वह शेर डर कर भाग गया। सोचा कि कोई हमारे भी खाने वाला है। यों बीसों शेर डर कर भाग गये। अब सब शेरों ने मीटिंगकी कि वहां यह निर्णय किया कि यह जो भीत पर स्याल बैठा है उसकी सारी करतूत है। उसके मारनेका सबने उपाय बनाया। सोचा कि एकके ऊपर एक चढ़कर उसे मार डालें। सो सबसे नीचे कौन खड़ा हो? विचार किया कि यह जो लंगड़ा शेर है यह सबसे नीचे खड़ा हो। सो लंगड़ा शेर नीचे खड़ा हुआ और उसके ऊपर एक पर एक खड़ा हो गया। जब स्यालके पास तक पहुंचनेको हुए तो स्यालिनीने बच्चोंको रुला दिया। स्यालने पूछा कि ये बच्चे क्यों रोते हैं? स्यालिनी बोली कि ये बच्चे लंगड़े शेरका मांस खाना चाहते हैं। लो डर कर लंगड़ा शेर भागा, तब भदभद करके एकके ऊपर एक सब गिर गये और भाग गए,

फिर वहां नहीं आये। तो जैसे लंगड़े शेरके खिसकनेसे सब शेर खिसक गए, ऐसे ही मोहके खिसकनेके बाद रागद्वेष, कषाय, क्रोध, विकल्प सारे अवगुण भदभद खत्म हो जाते हैं। दुःखोंका मूलतो मोह है। यह मोह मिटेगा सम्यग्ज्ञानसे। सम्यग्ज्ञानसे सम्यग्ज्ञानका यथार्थप्रतिपादन जैन शासनमें है। ऐसे उत्कृष्ट समागमको पाकर हमें सम्यग्यानमें अधिक रूचि बनानी चाहिए। अपने जीवनमें एक बार तो कुछ समय देकर, गुरुजनोंके सत्संगमें रहकर विद्यार्थी की तरह अध्ययन करना चाहिए। इस थोड़ेसे जीवनको मोह मोहमें ही न बितायें।

स्याद्वादसे स्वरूपपरिचय इस जीवके सम्बन्धमें कोई शासन कहते हैं कि यह क्षण-क्षणमें नया-नया पैदा होताहै। कोई शासन कहता है कि यह जीव परिणमता भी नहीं है, पर जैन शासन कहता है कि यह जीव द्रव्य दृष्टिसे तो नित्य है और पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। यों ही अनेक प्रसंगोंमें स्याद्वादकी शैलीसे वस्तुका वर्णन जैनशासनमें है। जैसे कोई भिल्लनी जंगलमें रत्न भी पाले तो जिनको गुंचियोंका परिचय है (जिससे सोना तोला जाता है) उनको वे रत्न पाकर भी उसे पैरोंसे घिसनेमें काम लेगी। उसे उस रत्नका मूल्य नहीं मालूम। ऐसे ही समझो कि हम भी ऐसे उत्कृष्ट शासनको पाकर चूँकि विषयोंका ही परिचय है ना तो इस शासनको भी पाकर पूजामें कुटुम्ब, वैभववृद्धि, यश ये ही बातें मांगेंगे। उन भिल्लनियोंकी ही तरह दुरुपयोग करेंगे। लेकिन चेतनका समय है। वैभव इस जीवका हित न करेगा और वह आपके सोचनेसे आता भी नहीं है, उदयानुसार आता है। आपका समय तो इस ओर व्यतीत होना चाहिए।

साधुसेवासे गृहस्थोंकी धन्यता ये साधुजन बड़े-बड़े दुर्धर तपश्चरण करते हैं और अंतमें विधिपूर्वक समस्त आहार जलका परित्याग करके समाधि मरणसे वे अपना देह त्यागकर सद्गतिको प्राप्त होते हैं। ऐसे साधुजन सत्पात्र कहे गये हैं। वे गृहस्थ धन्य हैं जिनको ऐसे सद्पात्रों की सेवाका अवसर मिला करता है। साधुजन भोजन करते हैं शरीर रखने के लिए, शरीर रखते हैं धर्मपालन करनेके लिए। इस कारण उन्हें भोजनमें आसक्ति नहीं रहती है। ऐसे विरक्त, ज्ञानमय अपना उपयोग रखने वाले साधुसंतोंकी वैयावृत्तिसे गृहस्थ कितना धर्मलाभ और पुण्य लाभ करते हैं? इससे बढ़कर गृहस्थीको पुण्यलाभका और कोई सुगम उपाय नहीं है। पर ऐसा धर्मलाभ वही गृहस्थ कर पाता है जो गृहस्थ स्वयं भी ज्ञानी हो और साधु जिस मार्ग पर चल रहे हैं उस मार्ग पर चलनेकी धुन हो।

दानका फल साधुवोंकी सेवा, आहारदान, शास्त्रदान, औषधिदान, अभयदान, ये कई गुणित फल देते हैं। जैसे बड़का बीज कितना छोटा होता है? बड़ के फलमें सैकड़ों बीज होते हैं, उसका तिलसे भी छोटा दाना होता है। इतना छोटा बीज बो देने पर वह फलांग तकमें भी फैल जाय, इतना बड़ा बड़का पेड़ बन जाता है। ऐसे ही सत्पात्र में किया हुआ दान अनगिनते गुणे फल को प्रदान करता है। वह गृहस्थ और वह साधु जिसका परस्परमें मोक्षमार्गका व्यवहार चलता है, वे ही धर्मकी गाड़ीको चलाने वाले वास्तविक वृषभ श्रेष्ठ हैं। जैसे कुसंगोंमें सबसे अधिक कुसंग है स्त्रीका, ऐसे

ही सत्संगों में सबसे अधिक उत्तम सत्संग है साधुवोंका। ये साधुजन संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त है, जब कि जगत् ये सब जीव रागद्वेषोंसे भरे हुए हैं।

साधुजनोंकी अन्तर्बाह्य उदारता जो मोक्षमार्ग में चलते हैं, यद्यपि विकासानुसार उनके अनेक पद हैं श्रावक, श्रावकों में भी उत्तम, फिर मुनि, मुनियोंमें भी उत्तम और धर्मध्यानी शुक्लध्यानी इनके उत्तरोत्तर कषाय कम होती चली जाती है। धर्मके प्रति साधुवोंका तीव्र अनुराग रहता है। अज्ञानीजन जहां गप्पसप्प विषयों में समय व्यतीत करते हैं वहां ज्ञानी संत शास्त्रोंके चिन्तनमें अपना समय व्यतीत करते हैं। साधुवोंके सम्बन्धमें आधुनिक भाषामें यह भी व्याख्या कर सकते हैं कि जो ले कम और दे अधिक उसको साधु कहते हैं। साधुजन अपने लिए क्या ग्रहण करते हैं? एक साधारण आहार और देते कितना है वे साधुजन कि उनकी मुद्राको निरखकर ही अनेक जन अपने कल्याणका मार्ग पा लेते हैं, और फिर उनके हितोपदेश से अनेक भव्य जीव संसारसमुद्रसे तिरकर पार हो जाते हैं। यों समझिये आजकी भाषामें जो साधुवोंकी व्याख्या की जा रही है कि जो लें कम और दें अधिक उन्हें साधु कहते हैं। जो अपने लिए लेना लेना ही सीखें, उनकी कौन कहानी कहे। अव्वल तो सिवाय अन्न जल आदिके और कुछ लेना बताया ही नहीं है साधुजनोंको। हमें इस ओर भी सावधान रहना चाहिए। हम श्रावकजन श्रावकके योग्य कार्य करें।

साधुपरमेष्ठीकी उपासनासे गार्हस्थ्यजीवनकी सफलता भैया! कभी ऐसा सोचकर कि चलो जो भी नग्नभेषमें आया है वह हमसे तो अच्छे है। श्रावकजन तो अनेक विचार और अनेक पदोंके होते हैं। वे तो रागके भरे हैं, किन्तु जिनका नाम णमोकार मंत्रमें बोलकर सदा नमस्कार किया करते हैं। उनके पदमें किञ्चित भी न्यूनताकी बात आये तो वे हमारे लिए परमेष्ठी नहीं हो सकते हैं। यदि कहीं मिलें ऐसे यथार्थ साधु परमेष्ठी तो उनके चरणोंमें गृहस्थजन अपना आत्मसर्वस्व भी न्यौछावर कर देते हैं। उन्हें कभी शंका और गम नहीं रहती है। साधुजनों के गुणोंकी महिमा कौन बता सकता है? पूजामें बोला जाता है ना, गुरुकी महिमा वरनी न जाये। यह बात यथार्थ है। परम उपकारी सदा हित में ही जिनका ध्यान बना रहता है, ऐसे गुरुवोंके गुणोंकी महिमाको कौन कह सकता है? ऐसे साधुजनोंकी जो हर प्रकारसे उपासना सेवा संगति करते हैं, उन गृहस्थोंका भी जीवन सफल हो जाता है।

उपायकोटिदूरक्षे स्वतस्तत इतोऽन्यतः।

सर्वतः पतनप्राये काये कोऽयं तवाग्रहः॥६९॥

अवश्यं नश्वरैरेभिरायुःकायादिभिर्यदि।

शाश्वतं पदमायाति मुधाऽऽयातमवेहि ते॥७०॥

विनश्वर व अरक्ष्य कायमें आग्रह तजनेका अनुरोध हे आत्मन्! यह शरीर करोड़ों उपाय भी किये जायें तो भी रक्षित नहीं रह सकता है। यह तो गिरनेके ही सन्मुख है, जबसे इस मनुष्यका जन्म होता है तबसे दिन प्रतिदिन यह मरणके सम्मुख ही पहुंच रहा है। इस शरीरमें तेरा क्यों यह

आग्रह हो रहा है कि मैं इस शरीरकी रक्षा ही करूँ? हे आत्मन्! अपने आत्माकी रक्षाका ध्यान दो। शरीर तो नष्ट होगा ही। जो मनुष्य इस पाये हुए समागममें मोह रखते हैं, इन समागमोंका जब बिछोह होगा तब कई गुणा दुःख भोगना पड़ेगा। इससे भला यह है कि समागममें रहते हुए भी हम अभीसे उसमें वैराग्य धारण किए रहें। ये समागम भिन्न हैं, मेरे आत्माका इससे कुछ लगाव नहीं है। सभी भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। उनमें मोह क्यों करना? ज्ञान इसी को कहते हैं। जैन नामसे तो सभी हैं, पर वास्तवमें जैन वह होता है जिसको वस्तुके स्वतन्त्र-स्वरूपकी श्रद्धा हो। प्रत्येक पदार्थ न्यारा है, मेरा किसी पर कोई अधिकार नहीं है। मैं केवल अपने आपका ही स्वामी हूँ, ऐसा जानकर समस्त पर-द्रव्योंसे विरक्त मनमें रहें ऐसे भावों वाले पुरुषको यथार्थ जैन कहते हैं। बहुत गम्भीरतासे सोचते जाइए कि जो भी समागम मिले हैं, उन समागमोंमें मस्त होनेका फल तो दुःख ही होगा। इस शरीरमें तू आग्रह मत कर।

कायविनाशमें आश्चर्यका अभाव एक कविने कहा है कि ये जगत् के प्राणी रोज-रोज मरण को प्राप्त हो रहे हैं। मनुष्य गुजर जाते हैं, इसमें आश्चर्य कुछ नहीं है, किन्तु वे कुछ दिन तक टिके रहते हैं इसमें आश्चर्य की बात है। जैसे बरसातके दिनोंमें घर की छतसे पानी नीचे गिरता है तो उस पानीमें बबूले पैदा हो जाते हैं। उन बबूलोंके मिटनेमें कोई आश्चर्य नहीं है, आश्चर्य तो उसमें है कि वे दो चार सेकेण्ड तक रह जाते हैं। यह शरीर पतनकी ओर है। इस शरीरमें रक्षाका आग्रह मत करो। सभी जीव भिन्न-भिन्न हैं। जैसे संसार के समस्त जीव भिन्न हैं, ऐसे ही घरके दो चार जीव भी भिन्न हैं। न तो तुम अपने शरीरमें आग्रह करो और न पर के शरीरमें रुचि व आग्रह करो।

संसारमें हित का अभाव एक बार किसी राजाने दूसरे देश पर चढ़ाई कर दी और उस राजाके वंशको ही खत्म कर डाला। अन्तमें उसे बड़ा पछतावा हुआ। एक थोड़ीसी राज्य सम्पदाकी लिप्सामें हमने कितना अनर्थ कर डाला? अब मुझे ये राज्य न चाहिए। इसके कुलमें यदि कोई बचा हो तो उसको राज्य सौंप दें। पता लगाया, क्या कोई इसके कुलमें बचा है? पता लगा कि राजाका एक चाचा है वह मरघटमें रहा करता है। उसे धन वैभवसे प्रयोजन नहीं, वहां ही अपना प्रभु जाप किया करता है। राजा उस चाचाके पास पहुंचा और कहा कि आप जो कुछ मांगोगे देंगे, तुम महलमें चलो, इस मरघटको छोड़ो, जो भी तुम चाहोगे हम देंगे। चाचा बोलता है अच्छा तुम हमें ऐसी जवानी दो जिसके बाद फिर बुढ़ापा न आये? अब बतावो, है कोई ऐसी जवानी, जिसके बाद फिर बुढ़ापा न आये? राजा बोला कि यह चीज तो मैं नहीं दे सकता, और कोई दूसरी चीज मांगो। चाचा बोले अच्छा हमें ऐसा जन्म दो कि जिसके बाद फिर मरण न आये। राजा यह सुनकर भी दंग रह गया। राजा बोला यह भी चीज हम देनेमें समर्थ नहीं हैं। भला बतलावो है कोई ऐसा जन्म कि जिस के बाद फिर मरण न हो? हां! अरहंत भगवान्की आयु नष्ट हो जाती है वह मरण ही तो है, उसका नाम है पंडितपंडितमरण, किन्तु उसे कहते हैं निर्वाण। उसके बाद जन्म फिर नहीं होता है, सिद्धपद प्राप्त हो जाता है। ऐसा किसका जन्म है जिसके बाद मरण न हो। राजा सुनकर बड़ा

हैरान हुआ और कहा कि तुम कोई तीसरी चीज मांगो। तो उसने कहा अच्छा हमें ऐसा सुख दो जिसके बाद फिर कभी दुःख न आये।

सांसारिक सुख-मग्नताके अयोग्य हे संसारके लोभियों! बहे मत जाओ। दौड़ मत लगाओ। यहां के सुखमें बहोगे तो उससे कई गुणा दुःख मिलेगा। गरीबसे लेकर बड़े धनिक तक, मूर्खसे लेकर विद्वान् तक किन्हीं भी जीवोंमें देख लो जो संसारका सुख चाहते हैं उनको नियमसे महान् दुःख होगा। इसमें किसीकी सिफारिश नहीं चल सकती। खूब अनुभव करके देख लो। आगे दुःख न हो, तब फिर इसका उपाय क्या है? इसका उपाय यह है कि तुम सुखमें मग्न मत होओ, सुखकी अभिलाषा मत करो। ज्ञान और वैराग्यकी अन्तरङ्गमें अभिलाषा करो। अपने आपके विविक्त ज्ञानानन्दस्वरूपको देखो। हमारा जगतमें कहीं कुछ नहीं है। अरे! जब यह देह ही हमारा नहीं है तो अन्य किसीकी क्यों कल्पना बनाते हो कि यह मेरा है। कर्तव्य ऐसा करो जिससे मन अन्तःप्रसन्न रहे और अपने आनन्दकी उन्नति रहे। यह बात तब सम्भव है जब प्रथम यह तो श्रद्धा लावो कि यह मैं आत्मा अकेला हूं। इस लोकमें मेरा कोई साथी नहीं है। उदय है पुण्यका तब तक दूसरे लोग तुम्हारे साथी बननेकी हामी भरते हैं। उसमें भी हमारा कर्तव्य साथी हुआ, परिजन कोई साथी नहीं होते अपने अकेले धर्मका विश्वास करो।

स्वके एकत्वका चिन्तन बारह भावनामें एकत्व भावनाका वह महत्वपूर्ण स्थान है। अपने आपको अकेला चिन्तन करते जाइए। अकेला ही उत्पन्न होता हूं, अकेला ही मरण करता हूं, अकेला ही सुख दुःख भोगता हूं, और इन सब स्थितियोंमें भी ये सुख दुःख रागद्वेष औपाधिक भाव हैं, ये मेरे स्वरूप नहीं हैं। परमार्थसे मैं केवल चित्स्वभावमात्र हूं, केवल चैतन्यस्वरूप हूं। जो वास्तविक मायने में जैनशासनका पालन करेगा, उसको कभी दुःख हो ही नहीं सकता। काहे का दुःख? अरे, जब अन्तमें हमारी प्रभु होनेकी स्थिति हो सकती है, तब वह तो सर्वथा ही अकेले होंगे। शरीर भी न होगा। मैं आत्मा केवल पूर्ण शुद्ध विकासरूप होऊंगा। अरे उस स्थितिको जो प्राप्त हो जाये अर्थात् अपने आपके अकेलेपनका अनुभव हो जाये तो यह उसका बहुत सुन्दर भवितव्य है। हमेशा अपने आपको अकेला निरखो। यदि एकत्व भावना न हुई तो अन्तमें बड़ा खेद होगा।

आकिञ्चन्य भावका महत्व यहां भी देखो, जो-जो कुटुम्बीजन आज हमारे पास हैं, घर में हैं, उन सबका किसी दिन वियोग भी होगा या वे सदा रहेंगे? ये मनुष्य मरते न होते तो आज जगत्में पैर रखने को भी जगह न रहती। तब अभी से मान जावो कि जो भी समागम मिले हैं, वे किसी दिन अवश्य छूटेंगे। चाहे खुद मरण करके समागमोंको छोड़कर चले जायें, चाहे हमारे जीते जी दूसरे कोई छोड़कर चले जायें, पर वियोग अवश्य होगा। ऐसी बात ज्ञानमें अभीसे रहे तो वियोगके समय दुःख न होगा। इस लोकमें कौन किसका क्लेश मिटा सकता है? खुद ही अपना ज्ञान बनायें, साहस बनायें, जिनेन्द्रदेव की आज्ञा मानें। प्रभुका आदेश है कि तुम समग्र वस्तुओंको भिन्न स्वरूप वाला समझकर उनकी उपेक्षाका भाव बनाओ, इस काममें हठ मत करें। जो हठ करता है उसको पीछे

बड़ा दुःख भोगना पड़ता है। हठ करना अच्छा नहीं है। हठी पुरुष दुःखी ही होता है, और दुःखी होनेके साथ-साथ वह मूर्ख भी है। हठी बुद्धिमान् नहीं होता। जो परपदार्थोंके किसी भी प्रकारके संयोगके लिए हठ करता है वह पुरुष मूढ़ है, पर्यायमुग्ध है, उसे चैन नहीं मिल सकती।

परपरिणतिके हठका दुष्परिणाम एक हठीली स्त्री थी। उसके मन में ऐसा आया कि सासको मजा चखाना चाहिए। झट पेट दर्दका बहाना किया, खाट पर पड़ गई। बड़े-बड़े वैद्य आये, पर वह ठीक न हुई। पति आकर पूछता है कहो देवी! तुम्हारी बीमारी किसी तरह ठीक होगी कि नहीं? तो उस स्त्रीने बताया कि देवता मेरे कानमें कह गया है कि जो तुमसे ज्यादा प्रेम करता हो, उसकी मां सवेरा होते होते ही अपना मुँह काला करके और सर घुटाकर दर्शन दे तो बचेगी, नहीं तो न बचेगी। इसका अर्थ क्या हुआ? स्त्री का प्यारा हुआ पति व पतिकी मां हुई उसकी सास। उसने अपनी सासके लिए ऐसा कहा। पतिने उसके मनकी बातको समझ लिया। सोचा कि इसे छकाना चाहिए। सो एक पत्र लिख दिया ससुरालको कि तुम्हारी लड़की बहुत बीमार है, बचने की आशा नहीं है। देवताने उसे बताया है कि लड़की की मां अपना सर घुटाकर मुँह काला करके सवेरे होते ही दर्शन दे तो बचेगी, नहीं तो लड़की मर जायगी। तो झट उसकी मां ने अपना सर घुटवाया और मुँह काला करके सवेरा होते ही आगयी। अब रूप तो पहिचानमें आता न था, सो वह स्त्री देखकर कहती है 'देखे बीरबानी की चाले, सिर घुटे अर मुँह काले।' तो पति कहता है देखो मर्दोंकी फेरी, अम्मा तेरी कि मेरी॥' तो हठ ही तो एक दुःखदायी चीज है। वैभवकी हठ, यशकी हठ, ये सारे हठ दुःखदायी हैं। यहां हमारा कुछ नहीं है। किसी भी वस्तुके प्रेमसे शान्ति नहीं मिला करती है। शान्ति तो ज्ञानसे मिलती है।

ज्ञानकी देन धर्ममाता चिरोजा बाई जी जिन्होंने बड़े वर्णी जीको पढ़ाया था, छोटी उम्रमें सपरिवार एक बार यात्रा को गईं। 18 वर्षकी उमरमें शादी हो गयी थी। उन्हीं दिनों उस यात्रामें बाई जी के पति गुजर गये। वे विधवा हो गयीं, उसका कष्ट उनसे न सहा गया। सोचा कि कुएमें गिरकर मर जायें, पर विवेकसे काम लिया, साहस बनाया, सोचा कि आत्मकल्याण का हमें सर्वाधिक साधन मिला है। बस लग गयी धर्मसाधनामें। फिर उन्होंने ऐसा अध्ययन किया कि आजका जैनसमाज उनकी चरण वेदना करता है। चीज क्या है? संतोष और शान्ति तो एक ज्ञानकी देन है, परवस्तुकी देन नहीं।

विनश्वरसे अविनश्वरके लाभकी बुद्धिमानी ये समस्त चीजें विनश्वर हैं। जो कुछ मिले हैं, ये सर्वसमागम विनश्वर हैं। इन विनश्वर चीजोंका हम इस तरह उपयोग कर लें कि शाश्वत पद मिल जाय। अविनाशी पद मिले तो यह भली ही बात है। अन्यथा तो यह देह मिटेगा। चाहे देहकी कंजूसी करें, चाहे देहसे परका उपकार करें, मिटेगा जरूर यह शरीर। चाहे इस शरीरको विषयोंमें फेंक डालें और चाहे तपस्यामें लगावें। विषयोंमें इस देहको झोंकनेका फल है संसारमें जन्म लेना, मरण करना, कीट पतंगा बनना पड़े, पेड़-पौधा बनना पड़े, संसारमें जो शरीर नष्ट होना है, उस शरीरसे तप

संयमकी साधना कर ली जाय तो उससे स्वर्ग मिलेगा और अपवर्ग मिलेगा, मोक्ष मिलेगा। ऐसी हिम्मत बनाएँ, ज्ञान जगावें; तप, व्रत, संयममें इस देहको लगानेकी सद्बुद्धि करें हो।

धार्मिक साहसमें धर्मपालनकी सुगमता लोग जरा-जरासे व्रत संयम से घबड़ाते हैं। एक भाई ने प्रश्न किया कि आजके समयमें जैनधर्मका जो रात्रिभोजन त्यागका नियम है यह पालना तो बड़ा कठिन है। अब तो नियम बदल देना चाहिए। हमने बतलाया कि भाई २४ घंटेमें एक बार भी खा लिया जाय तो वही जीवन रखनेके लिए काफी है और फिर मान लो किसी दिन दिनमें दूसरी बार न खा सके तो वह स्वास्थ्यको लाभ ही देगा। सबसे कठिन वेदना तो रोग और प्यास की हुआ करती है, भूखकी कठिन बाधा नहीं होती है। उसके लायक तो दिनमें एक दो बार खाना मिल ही जाता है। एक जल और औषधिके सिवाय बाकी सब पदार्थोंके रात्रिमें खानेका त्याग कर दीजिए तो भी इसमें निभाव भली प्रकार हो सकता है। थोड़ी हिम्मत चाहिए। कायरता है तब तो भोजन करके घरसे निकले कि बाजार में कोई चाट पकौड़ी मिल गया तो दो एक आनेकी खा ही लेते हैं। अरे उसकी क्या जरूरत थी? अरे इस देहको तप व्रत संयममें लगानेकी बुद्धि करो। इस कायरताको त्याग दो।

आत्मोद्धारका यत्न भैया! पुराण पुरुषोंके इतिहास पर भी दृष्टि दो। उन्होंने क्या किया था, इस पर तो कुछ विचार करो। अब तो मरणके सम्मुख भी होते जा रहे हैं इस जीवनमें ५ मिनटको भी चिन्ता नहीं छोड़ना चाहते, रागद्वेष मोहसे परे नहीं होना चाहते। अरे जुलाहे भी पूरा कपड़ा नहीं बुनते, वे भी चार अंगुल छीरा अन्तमें छोड़ देते हैं, पर ये मनुष्य अपने जीवनके ५ मिनट भी नहीं छोड़ना चाहते। अरे मरण करके तो एकदम ही सारी पलट हो जानी है, कुछ देरको भी यदि समता परिणाम कर लीजिए तो भला है। मरण समय जैसी मति होती है तैसी गति होती है। चिन्ता करो अपने उद्धार की। बाह्यपदार्थोंकी चिन्ता करना बेकार है।

आत्मस्वरूप चिन्तनसे जीवनकी सफलता भैया! धर्मपालन से अपना उद्धार करनेके लिए किसी तरह रह जाय जीवन, रहना चाहिए। जीवन भी किसलिए रहना चाहिए कि हम ऐसे दुर्लभ धर्मको पाकर इस धर्मका पालन कर सकें और अपने इस आत्मजीवनको सफल कर सकें। देहसे ममता करना व्यर्थ है। किसी से ममता नहीं होती, अपने भी शरीरसे ममत्व नहीं होता, दूसरे के शरीरसे ममत्व नहीं होता, अपने विभावसे ममत्व होता। चिन्तन करिये, अपनी समस्त इन्द्रियोंको बंद करके अपने आपके अन्तरमें एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप का अनुभव करें। बारबार यह भावना भायें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। जाननका जो स्वरूप है उसे दृष्टि में लें। इससे ही इस ज्ञानतत्वकी भावना बनेगी। प्रत्येक परिस्थितिमें अपने को अकेला निरखो। अपना चित्त अपने पास है, इसका सदुपयोग करें। अच्छे विचारोंकी ओर लग जायें तो हम ही अपने आप सुखी हो सकते हैं और रागद्वेष मोह भरे अपने विचार बनाये रहें तो हमने ही अपने आपको कष्टमें डाला है। मुझे कष्ट देने वाला कोई दूसरा जीव नहीं है। मैं ही कल्पनाएँ बनाता हूँ और दुःखी होता हूँ।

परकी उपेक्षामें लाभ भैया! सुख सुविधासे भी रहने वाला पुरुष किसी समय धन हानि या अन्य प्रकार यश हानिपर दृष्टि डाले तो वह दुःखी हो जायगा। कैसा ही बाह्य संकट आया हो किसी जीवपर, वह अपने आनन्दस्वरूपकी सुधले तो वह सुखी हो जायगा। सुख दुःख अपने आपके ज्ञानपर निर्भर है। अपना कर्तव्य है कि जो भी समागम मिले हैं उनका ऐसा उपयोग करें, ऐसी उदारता रखें कि मोक्षप्राप्तिके पात्र बनें। यदि ऐसा न कर सकें तो यह जानों कि यह दुर्लभ जीवन दुर्लभ समागम बिल्कुल व्यर्थ ही खो दिया। इससे इन विनश्वर समागमोंका आग्रह न करें कि ये मेरे हैं। अपने आकिञ्चन्य स्वरूपकी निरन्तर भावना करनी चाहिए।

**गन्तुमुच्छ्वासनिःश्वासैरभ्यस्यत्येष संततम् ।
लोकः पृथगितो वाञ्छत्यात्मानमजरामरम्॥७१॥
गलत्यायुः प्रायः प्रकटितघटीयन्त्रसलिलम् ।
खलः कायोऽप्यायुर्गतिमनुपतत्येष सततम्॥
किमस्यान्यैरन्यैर्द्वयमयमिदं जीवितमिह ।
स्थितो भ्रान्त्या नावि स्वमिव मनुते स्थास्नुमपधीः॥७२॥**

मरणमें जीवनका भ्रम यह आयु श्वास और ऊच्छ्वासके मिश्रणसे निरन्तर निकलनेका अभ्यास कर रहा है, लेकिन लोगोंकी मूढ़ता तो देखो यह श्वास और उच्छ्वास करके ऐसी आयुसे अपने को अजर अमर हुआ देखना चाहता है। इस जीवको शरीरमें रोकने वाला कारण है आयुकर्म। जब तक आयुकर्मके निषेक उदयमें चल रहे हैं तब तक यह जीव इस शरीरमें बना रहता है और श्वास और उच्छ्वास करके इसका जीवन टिका रहता है। यह आयु प्रति समय खिरने की ओर रहती है। जिस मनुष्यकी आयु ४० वर्ष की निषेकमें निश्चित है उसके १० वर्ष जीने पर यही तो अर्थ हुआ कि अभी उसे ३० वर्ष जीना है। ज्यों-ज्यों समय गुजरता है त्यों-त्यों यह जीव मरणके निकट पहुंचता है। यहां गुणभद्र स्वामी यह बतला रहे हैं कि यह आयु खिरनेके लिए सदा उद्यत रहती है और श्वास लेना, श्वास फैंकना इन क्रियाओंके माध्यमसे यह आयु इस शरीरसे निकलनेकी कोशिश करती रहती है। तो यह श्वासका लेना इस आयुके खिरनेका अभ्यास है। इससे आयु खिरेगी, जल्दी मरण होगा, किन्तु इस मूढ़ की दृष्टि तो देखो यह श्वासके कारण ही अपनेको अजर अमर देखना चाहता है।

गुजरे समयका पुनः आनेका अभाव लोकमें ही तो यही हो रहा है कि यह आयु निशदिन प्रतिपल गल रही है। जैसे रहटकी घड़ियां खिरने के लिए ही आयी हैं। कुंएमें रहटकी घड़ियां पचासों हैं, वे पानीसे भरती जाती हैं और क्रम-क्रम से रीति होती जाती हैं ऐसे ही आयु भी छिन छिन गल रही है अथवा जैसे अंजुलीमें लिया हुआ पानी बूंद बूंद गिर कर खाली हो जाता है ऐसे ही यह आयु भी एक एक निषेक करके खिर जाती है। घड़ी टिक-टिक की आवाज करती है, उसकी प्रत्येक आवाज यह सावधानी देनेके लिए है, मानों कि जो समय अब गुजर गया है वह समय अब आगे न आयेगा। जिसका जो समय गुजर गया वह वापिस नहीं आ सकता है। चाहे कोई धनिक कितना ही व्यय करदे, पर जीवनका बीता हुआ समय वापिस नहीं आ सकता है।

शेष आयुके सदुपयोगका स्मरण बचपनमें तो ज्ञान न सीखा, जब कि ज्ञान सीखनेका अवसर था। जवानीमें धर्म न किया जबकि शरीरमें पौरुष था। यों ही समय बीत गया। अब जीवनका बीता हुआ समय वापिस नहीं आ सकता। विषयोंके सेवनमें, कल्पनाजालोंमें पड़कर जो अपना समय नष्ट किया है, पापबंध किया है वह विपरीत हो जाये अर्थात् नष्टकी तरह हो जाये और मैं शुद्ध कलंकरहित साफ ही रह जाऊँ। ऐसी कितनी भी वासनाएँ बनाए, पर जो समय गुजर गया, वह तो गुजर ही गया। जैसे पर्वत परसे गिरने वाली नदीकी धार जो नीचे आ गयी वह फिर वापिस नहीं जा सकती है। ऐसे ही इस आयुका जो क्षण बह गया, वह फिर दुबारा नहीं आ सकता है। ऐसा जानकर प्राप्त हुई शेष आयुका कुछ उपयोग करें।

दुर्लभ नरदेहसे अपूर्व लाभकी बुद्धिमानी यह मनुष्यजन्म बहुत दुर्लभ है। इसको इन्द्र भी तरसते हैं। इन्द्र अपने वैक्रयिक शरीरको जो कि अनेक समृद्धियोंसे सम्पन्न हैं, वे उस भव और वैभवको भी त्यागकर मनुष्यजन्म पानेकी वाञ्छा करते हैं। ऐसे दुनियावी उत्तम शरीरमें रहकर भी, जहां हजारों एकसे एक विनयशील आज्ञाकारिणी देवियां हैं, उनमें भी वे तृप्त नहीं होते हैं। वे चाहते हैं कि यह मनुष्यजन्म मिले और संयम करके, आत्मध्यान करके निर्वाणको प्राप्त होवें। इस नरजन्मको बड़े-बड़े इन्द्र भी तरसते हैं। इसे पाकर भोगविषयोंमें व्यर्थ न गमावो, किन्तु अपने पाये हुए इस श्रेष्ठ मनका सदुपयोग करो। यह आयु रहटकी घड़ियोंके पानी की तरह निरन्तर गल रही है और आयुके साथ ही साथ यह शरीर भी गल रहा है। जैसे आयु बीतती जाती है, वैसे ही वैसे यह शरीर भी गलता जाता है। इस नरदेहको तप संयममें लगाकर कल्याण करो। इस शरीर पर दृष्टि न करिये।

अन्तस्तत्वकी दृष्टि होने पर पीड़ाका अभाव मैं आत्मा क्या हूँ? शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप निर्विकार अमूर्त अन्तस्तत्व उसे अपने उपयोगमें लिया जाये तो वहां फिर वेदना नहीं रहती है। जहां शरीर पर दृष्टि है वहां अनेक कष्ट हैं। मैं बूढ़ा हूँ, मेरा बल कम हो गया है, मैं अब भोग नहीं भोग सकता, भोजन भी नहीं चबाया जाता। ऐसी शरीरमें दृष्टि रखकर अनेक ख्याल करते जाइए। इससे बेचैनी ही बढ़ेगी। अरे कर्तव्य यह है कि कुछ क्षण अपने अन्तःस्वरूपमें ऐसी दृष्टि ले जायें कि इसका भान तक भी न हो कि यह मेरे साथ लगा है। देखो यह शरीर भी आयुके साथ-साथ गिर रहा है। ऐसी स्थितिमें तू स्वप्न क्यों देख रहा है जीवन के?

भटकन और भ्रम देख सोच, जैसे नावमें बैठा हुआ पुरुष यों देख रहा है कि मैं कहीं नहीं जा रहा हूँ, वहीं का वहीं हूँ और उस नाव पर वह बैठा हुआ चला जा रहा है। निकल गया मीलों दूर नावके चलनेके साथ-साथ, ऐसे ही यह मूढ़ जान रहा है कि मैं ज्योंका त्यों, जहां का तहां पूर्ण स्वरक्षित हूँ। इसे यह पता नहीं है कि यह श्वास निःश्वास जो निकल रही है यह आयु ही तो मानों निकल रही है। यहांके समागमोंमें बड़ा विश्वास जमाये हुए हैं ये मूढ़जन। अरे जब खुदका ही ठिकाना नहीं है, खुद ही को गुजर जाना है तो बाह्यपदार्थोंका तो तुम ठिकाना ही क्या मानते हो? पर मोहका कैसा प्रबल नाच है कि अत्यन्त भिन्न असार वैभव के प्रति इतनी ममता है कि उसके

ही संचयकी धुन बनाये रहते हैं और इस तृष्णाजलके कारण वे अपने आपमें कुछ संतोष नहीं पा सकते हैं।

जीवनकी आशाके असाधन जीनेके कारण ये दोनों ही तो हैं आयु और श्वास। श्वास न रहे तो जीवन मरण समझिये। अब देह नहीं रही, आयु नहीं रही तो मरण समझिए, अब यह देहमें नहीं रह सका ये दोनों ही जीनेके कारण हैं, और देखो ये दोनों ही चंचल हैं। तब जीनेकी ही क्या आशा की जाये? जब जीवनकी ही यह दशा है तो अन्य भिन्न पदार्थोंके समागममें अपने आपको ऐसा रचा-पचा लेना कि कोई समागम में अनिष्ट परिणामन हो जायें, कोई समागमका वियोग हो जाये तो रात दिन उसीमें ही चिंता की जाती है।

स्वपरकी शाश्वत भिन्नता अरे है क्या, सब भिन्न भिन्न हैं। जैसे पानीमें तैल डाल दिया जाये तो तैल तैल की ओर रहता है, पानी पानीकी ओर रहता है, दोनों मिलकर एकमेक नहीं हो जाते। ऐसी ही यहां घरमें बसकर भी प्रत्येक जीव अपनी ओर ही रहता है, आप अपनी ओर रहते हैं, मिलकर एकमेक नहीं हो सकते। रागभावमें आकर कुछ ऐसे व्यवहार वचन बोल लेते हैं, जिससे यह मूढ़ जीव यह भ्रम करने लगता है कि हम और ये जीव सब एकमेक हैं। अरे प्रकृत्या सभी जीव जुदे जुदे हैं, कोई किसीकी रंच भी लाज नहीं रख सकता है। कितने भी उपाय कर डाले जायें, पर कोई द्रव्य किसी दूसरेका नहीं बन सकता है। जगत्में जितने पदार्थ हैं वे सब अपने अपने द्रव्य क्षेत्र, काल, भावसे हैं। जैसे यह चौकी है तो इसका द्रव्य, इसका क्षेत्र, इसका काल और इसका भाव सब इसही में है, चौकीके समस्त प्रदेश कभी पुस्तकमें नहीं समा सकते। पुस्तकके द्रव्य क्षेत्र काल भाव सब पुस्तकमें ही हैं। वे कभी चौकीमें नहीं समा सकते। चौकी की जो दशा है वह चौकीमें ही है। तो जैसे ये भिन्न भिन्न पदार्थ हैं ऐसे ही एक घरमें ठहरे हुए जितने भी जीव हैं, वे सब बिल्कुल न्यारे न्यारे हैं। तीन काल भी ये एकमेक नहीं हो सकते।

व्यर्थका व्यामोह और फिर देखो भैया! अनादिकालसे यह जीव भ्रमण करता आया है। न जाने कहां कहां इसने जन्म लिया? जितने भी जीव हैं, ये सब किसी न किसी रूपमें नाना भवोंमें अपने परिवारके लिए बने हैं, परिजनोंके कुटुम्बके लिए होते हैं। कीड़ा मकौड़ा जो भी दिखते हैं ये सभी जीव किसी न किसी भवके भाई बन्धु हैं। क्या आज उनकी कुछ खबर है? ऐसे ही आज कुटुम्बके भाई बंधु स्त्री पुत्र भी किसी दिन सब गैर हो जावेंगे। मरणके बाद जिस दूसरे भवमें पहुंचेगा, वहां जो समागम मिलेगा, उसमें ही यह मोह करने लगेगा। इस जीवकी आदत मोह करने की है तो जहां जायगा वहां ही मोह करेगा। इसका मोह इस कारण नहीं हो रहा है कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरा घर है, किन्तु इसका मोह अपने अज्ञानके कारण हो रहा है। अज्ञान मिट जायगा तो मोह मिट जायगा। अज्ञानसे इस मोहकी वृद्धि हो रही है। खूब सोच विचार लो, हम आपका दुःखका कारण केवल मोह है। यदि दुःख है तो यह पता लगावो कि हमने किस वस्तुका मोहकर रक्खा है, क्योंकि किसी मोहके लिए बिना दुःख हो ही नहीं सकता। दुःख दूर करना है तो विधिपूर्वक जिसमें उत्तरोत्तर

सफलता मिलती चली जाय ऐसा यत्न करना चाहिए, उसका उपाय यह है कि अपने उस मोहभावको ढूँढ़ो, मुझे किस चीजमें मोह लगा है, जिसके कारण मैं परेशान हूँ, उसका मोह त्याग दो। यही क्लेश मेटनेका उपाय है।

रिश्तेदारीका मूल निमित्त विषयसाधना जीव विषयोंके साधनोंमें मोह करता है, इसी कारण यह मोही प्राणी दुःखी रहा करता है। स्पर्शन इन्द्रियके विषयका साधन है कोमल स्पर्श, इष्ट स्पर्श, विषयप्रसंग, कामवेदना मिटाना उसके साधन स्त्री पुरुष आदिक इनमें मोह रहता है। एक निगाहसे देखो तो दुनियामें जितनी जो कुछ रिश्तेदारी है वह सब एक स्त्रीके नाते से रिश्तेदारी है। एक कामवासनाके व्यवहारसे से ये रिश्तेदारी है, खूब घटाते जावो कोई रिश्तेदारी स्त्रीके नाते साक्षात् है और कोई घुमा फिराकर है। जैसे साला ससुर ये स्त्रीके नातेसे रिश्तेदार हैं, और और भी रिश्तेदारी है मामा भाई ये माताके भाईकी स्त्रीकी रिश्तेदारी है। बुवा यह पिताकी बहिनके नाते रिश्तेदारी है। उलट फेर कर देखते जावो, अन्तमें स्त्री पुरुषका मूल मिलेगा प्रत्येक रिश्तेदारीमें। है क्या यहां? जैसे केलेके पेड़से उसके पत्तोंको हटाते जावो तो मिला मूलमें क्या वहां? वे ही पत्ते तनेभी मोटे बनकर पेड़रूप बने रहते हैं। और पेड़ोंमें तो अन्य मौलिक बात नहीं है वहां कुछ स्कंध हों, शाखायें फूटी हों, उन शाखावोंमें उपशाखायें हों, फिर पत्ते हों, ऐसा कुछ नहीं है। ये तो शुरूसे ही पत्ते हैं और उन पत्तोंका मोटा तना बन गया है। पत्ते हटावो तो वहां कुछ भी सार न नजर आयेगा। ऐसे ही यहां सब कल्पनाजालका विस्तार है। कल्पनाको समेट लो, फिर यहां कुछ नजर ही न आयेगा। ऐसे इन काल्पनिक सांसारिक सुखोंमें आसक्त होकर यह जीव इस दुर्लभ नरजीवनको व्यर्थ खो रहा है।

बाह्यसंचयसे बड़प्पन का अभाव कोई व्यामोही प्राणी धन-धन की धुन में लगा है। हो गया मानो हजारों लाखोंका धन संचय तो आखिर इसके बाद क्या होगा? यह तो सोचिये। इस मायामयी दुनियामें, इन मायामय लोगोंको, मायामय बड़प्पन दिखानेके लिए मायासे जो इतने मायामय परिणाम किए जा रहे हैं, इनका फल क्या होगा? धन खूब जोड़ लिया तो क्या होगा अन्तमें? कुछ लोगोंने बड़ा-बड़ा कह दिया। प्रथम तो यह आत्मा धनके कारण बड़ा नहीं कहलाता। यहांके लोगोंकी कल्पना है। आत्मामें जो बात है, जो गुण है उस गुणका विकास हो तो आत्मा बड़ा है। इस जीवका ज्ञान विशुद्ध हो, आनन्द विशुद्ध हो तो समझिये कि हममें कुछ बड़प्पन आया है। धन वैभव बाहरी चीजें हैं। दूर नहीं रही निकट आ गयीं हैं तो इससे क्या आत्माको लाभ होता है और भिन्न पदार्थोंके सम्बन्धसे आत्मा का क्या बड़प्पन है? क्या लाभ होगा परिवार बहुत हो गया तो? जीवन भर दुःखी रहो और विछोहके समयमें संक्लेश करना पड़े, इसके अलावा और क्या होगा?

परकी अविश्वास्यता बन्धुजन बड़ी प्रीति दिखाते हैं। ये क्या कर देंगे अपना? ज्यादासे ज्यादा इतना उपकार भर कर सकते हैं कि यहांके मरनेके बाद वे तुरन्त जला देंगे, इतना ही तो वे उपकार कर सकते हैं। इससे ज्यादा और क्या कर सकते हैं? अपने निमित्तसे दूसरोंको कुछ विषय सिद्धि हो रही है तो वे कुछ स्नेह करेंगे। आपसे स्नेह वे न करेंगे, बल्कि अपने कषायभावको व्यक्त करेंगे।

कहां रम रहे हो? जब तुम्हारा ही ठिकाना नहीं, तुम्हारी आयु और काय, ये भी जब चंचल हैं, निशिदिन गल रहे हैं, मरणके निकट पहुंच रहे हैं तो फिर अन्य समागमोंका क्या विश्वास किया जा रहा है।

उम्र उपनाम आयुक्षय घरके लोग बड़े खुश होते हैं बालकको निरखकर, अब मेरा बच्चा दो वर्षका हो गया। अरे! उसका अर्थ यह है कि मेरा बच्चा अब दो वर्षका घट गया है। जितना जिन्दा रहना था उसमें अब दो वर्ष कम रह गये हैं। अब मैं ४० वर्षका हो गया हूं। अरे यह समझो कि ४० वर्ष मेरे नष्ट हो गए हैं, अब करीब १०-२० सालका ही हूं। जो बूढ़ा है वह छोटा है और जो बच्चा है वह बड़ा है। बूढ़ेको थोड़ा ही जीना है बच्चेको बहुत। यह आयु और काय क्षण-क्षण पतनकी ओर जा रहे हैं, किन्तु यह मोही जीव आयु और कायसे ममता को नहीं तज सकता। विवेकी पुरुष आयुसे और काय से अपना ममत्व छोड़ देते हैं।

ज्ञानीका आत्मविश्वास व पुरुषार्थ जो ज्ञानानन्द सहज स्वरूप है, शाश्वत अपने आपके कारण उस स्वरूपमें ज्ञानीजन रूचि रखते हैं। वे निरन्तर ऐसा विश्वास बनाए रहते हैं कि मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूपमात्र हूं। मेरा जगत्में मेरे गुणके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है। यों विवेकी पुरुष विनश्वरको विनश्वर जानकर प्रसन्न रहा करते हैं, और अज्ञानीजन विनश्वरको अपनाकर उससे अपना जीवन, बड़प्पन मानकर संक्लिष्ट रहा करते हैं। अपनेमें यह दृष्टि बनाना है कि यह आयु और काय विनश्वर है, इनकी ममता छूटना चाहिए, फिर और वैभव परिजनकी ममता तजना तो पहिलेसे ही योग्य है।

उच्छ्वासः खेदजन्यत्वाद् दुःखमेषोडत्र जीवितम्।

तद्विरामे भवेन्मृत्युर्नृणां भण कृतः सुखम्॥७३॥

जीवनके नातेसे भी जीवनकी दुःखरूपता मनुष्योंको सुख है कहां? जब कभी सुख हो और कभी दुःख आ जाय, तब घबड़ाहट वाजिब है, किन्तु जहां सुख है ही नहीं, वहां फिर घबड़ाहटकी क्यों नौबत आ रही है? जानते जावो कि संसार दुःखमय है, सर्वत्र दुःख ही दुःख है। इस मनुष्यको किसी भी स्थितिमें सुख नहीं है। दो ही तो बातें हैं जीवन और मरण। जीवन जब तक श्वास है तब तकका नाम है। श्वास न रही तो उसका नाम हो गया मरण। सो श्वासकी भी बात देखो खेदसे श्वास उत्पन्न होती है। श्वास लेते समय नियमसे कुछ न कुछ खेद होता है। जब जरा तेज श्वास चलने लगती है तब खेदका स्पष्ट अनुभव होता है। जब मंद श्वास निकलती है। तब भी खेदका अनुभव होता है। तो श्वासका निकलना खेदसे ही हुआ करता है और श्वासके मायने जीवन है। तो लो यों जीवन सरासर खेदसे भरा हुआ है। अभी जीवनमें होने वाली विपदाओंकी व और बातोंकी चर्चा ही जाने दो, श्वासकी ही बात ले लो। श्वाससे ही तो जीवन बनता है और वह श्वास खेदसे उत्पन्न होती है। जब जिस जीवनकी व्याख्यामें ही खेद पड़ा हुआ है तो उस जीवनकी अवधिमें तो सुख कहांसे होगा? यों जीवन दुःखमय है और श्वासका अभाव हो जाय, न

रहे श्वास इसका नाम मरण है। सो मरण भी दुःखमय है। जन्म में भी दुःख, मरणमें भी दुःख, जिन्दा रहनेमें भी दुःख। सुख किधर है?

बाल्यावस्थाकी दुःखरूपता ये तो एक शारीरिक, प्राकृतिक दुःख बताये गये। अब जीवनकी और बातें निरखो छोटे-छोटे बच्चोंके क्लेश अलग हैं कोई कष्ट हुआ रो दिया, अब रोने पर भी उस खेदको उसकी मां वगैरह दूर करना चाहें तो नहीं कर सकती हैं। जब छोटे बच्चेको किसी प्रकारकी पीड़ा हो जाय तो वह रोता है। उसकी पीड़ाको कोई भी नहीं बता सकता है कि इसको क्या पीड़ा है? इतना छोटा बालक अब बतावो कुछ बता ही नहीं सकता। पशुकी तरह है। कुछ बड़ा हुआ तो उसके दुःख अलग हैं। जरा ऊधम किया तो बड़े लोग उसे ललकार देंगे, अबे बच्चे क्यों उधम करता है? उसे जो चाहे ललकार दे। बचपनके दुःख बचपन जैसे हैं, जरासी कोई बात हुई कि मां ने उसे पीट दिया। उन बच्चोंको मन की चीज न मिली तो उसका दुःख उन्हें रहता है।

अज्ञानहट बच्चोंकी हठ भी बड़ी अजीब होती है। एक बालकको ऐसी हठ हो गयी कि मुझे तो हाथी चाहिए। अब बतलावो कहां से हाथी ले आयें? शहरमें जिसके यहां हाथी था, उसे दो रूपये देकर कह दिया कि हाथी लेकर हमारे घरके सामनसे निकल जाना। हाथी वाला हाथी लेकर उसके द्वारसे निकल गया। बच्चेके पिताने समझा दिया कि देख बेटा! यह हाथी तेरा था। तो फिर बालक बोला कि हमें तो यह खरीद दो। अब हाथी कहांसे खरीदें, उसने और दो रूपये दिये, कहा भाई इसे हमारे बाड़ेमें खड़ा करदो ५ मिनटके लिए। बाड़ेमें उसने हाथीको खड़ा कर दिया और कह लो बेटा, इसे खरीद दिया। तो थोड़ी देरमें वह बालक बोला कि इसे हमारी जेबमें धर दो। अब बतावो जेबमें कैसे धर दें? ऐसी हठ अज्ञानी करता है जो बात इसके हाथकी नहीं है, अधिकार की नहीं है, उस पर हठ किया करता है।

स्वाधीन विकासकी उपेक्षा और जीवनके क्लेश अरे आत्मन्! तुम्हारे अधिकारकी बात तो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है उस ओर दृष्टि क्यों नहीं देता? जो तुम्हारे अधिकारकी बात नहीं है, धन इकट्ठा करना, रक्षा करना, यों व्यवस्था करना तेरे अधिकारकी बात नहीं है। उसकी हठ करना अज्ञानता ही तो है। वे उमरके छोटे बच्चे हैं, हम कुबुद्धिके छोटे बच्चे हैं। कहां सुख है, सो ढूँढ़कर बतावो। जरा और बड़ा हुआ, किशोर अवस्था हुई तो वहां और तरहके क्लेश होते हैं। कुछ कुसंगति हो रही है। खोटी जगहको चित्त जाता है, मां बाप रोकते हैं अनेक कष्ट वहां अनुभव करता है और बड़ा हुआ, विवाह हो गया, अब विवाह के निकटके दिनोंमें भी कष्ट व विवाहित समयमें भी कष्ट। जिनका विवाह हुआ है वे जानते हैं, क्या कल्पनाएँ उठती हैं। दो चार साल गुजरे विवाहके तब और तरहके कष्ट। बच्चे हुए तो उनकी संभालका कष्ट। खुद गरीबीसे खायेंगे, पहिनेंगे बच्चे को अच्छा खिलाना पहिनाना चाहेंगे।

इष्टवियोग आर्तध्यानका क्लेश परिवारजन बहुत हो जायें, उनमें से कोई गुजर गया तो उस गुजरे हुएके लिए गृहवासी मरेंगे। संसारमें यह तो होता ही रहता है। बड़ी कुबुद्धि ममता इसे परेशान

कर रही है, उसही इष्टवियोग पर ध्यान बना रहता है। इस आर्तध्यानमें मुख्य आर्तध्यान है इष्ट वियोगज। इष्टपदार्थ के वियोग हो जाने पर जो उसकी पीड़ा का चिन्तन रहता है वह आर्तध्यान है। इससे कोई लाभ नहीं है। मनुष्योंको सुख किस स्थितिमें है, सो बतावो। सुख कहां है? सब अपने-अपने दिलसे सोच लो। किसीका कहीं चित्त है, किसीका कहीं। कल्पनासे सभी कष्ट मानते हैं। तो अपने-अपने ही दिलसे सोचकर बतावो कि सुख कहां है?

तृष्णाकी प्रगति जिस जगहमें यह जीव सुख समझता है उस स्थितिमें पहुंचने पर उसे सुख नजर नहीं आता। यह जगत् एक मरुभूमि की तरह है। जैसे मरुस्थलमें दूरकी चमकीली रेत प्यासे हिरणको पानी की तरह नजर आती है, पर पास जाने पर क्या पानी मिलता है? ऐसे ही जिन-जिन बातोंमें इस जीवने सुख मान रक्खा है, उनके नजदीक भी पहुंच जाय तो भी क्या उन्हें सुख है? जिसे बहुत गरीबी आ रही है, वह यह चाहता है कि मेरे पास 100) की पूंजी हो जाय तो मैं परिवार का खर्चा चला लूंगा। 100) हो जाने पर फिर क्या वह संतोष करता है? अब उसे वहां भी क्लेश दिखने लगा। 100) में आनन्द नहीं है, हजारकी पूंजी हो तब काम बने। हजार हो गये तो वहां भी कुछ आनन्द नहीं नजर आया। इतनेमें तो कुछ भी घरका खर्च नहीं निकलता। लाख हों तो ठीक है। अरे कितने ही हो जायें तो भी खर्च पूरा नहीं पड़ता, क्योंकि व्यर्थकी शान शौकत पोजीशन ये सब बढ़ाने पड़ते हैं। दुनिया में कुछ बड़ा कहलानेके लिए क्या क्या बातें लोग नहीं करते हैं? उनकी पूर्ति कैसे हो? किस चीजमें सुख है?

यशकी तृष्णाका प्रवाह जो लोग यशके होनेमें सुख मानते हैं उनके यशकी भी यही बात है। पहिले तो मुहल्लेके लोग बड़ा कहने लगें, यही चाह रहती है। कदाचित् मुहल्लेके लोग कहने लगे कि यह दादा साहब तो बड़े अच्छे हैं तो अब यह इच्छा हो गयी, मैं इस नगरमें बड़ा कहलाऊँ और धीरे से नगरमें बड़प्पन बन गया तो अब जिलेमें बड़प्पनका भाव आया। जिले के बाद देशमें, देशके बाद विदेश में। सारे विश्वमें चाहता है। जो यशकी चाह करते हैं उनके दुःख विचित्र हैं। उनका यही चित्त रहता है कि कही मेरी पोजीशन घट न जाय। इसही चिन्तामें व्याकुल बने रहते हैं। कौनसी चीजमें सुख है, सो बतावो। न धनमें सुख है, न संतानमें सुख है, न यशमें सुख है, न देहमें सुख है।

देहकी बांधपर क्लेशोंकी बाढ़ देहका जो बन्धन है, इस समय यही साक्षात् दुःख है। अभी देहका बोझ है, इसे ढोये ढोये फिरते हैं। मेरा स्वरूप तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द शक्तिमय है। इसमें किसी प्रकारका कष्ट नहीं, बाधा नहीं, पर देहका जो बन्धन लगा है सो अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं। बतावो मनुष्यको इस जीवनमें सुख है कहां? सभी दुःखी हैं। किसीको किसी तरहका दुःख है, किसीको किसी तरहका दुःख है। बड़े अच्छे सम्पन्न घरानेका मैं भी हूँ, हर एक तरहका आराम है। तो आराम बढ़े, इस भावनामें भी वह दुःख मान लेता है और जो दूसरोंसे अनेकको बड़ा मानकर इतराना पड़ता है, उस इतरानेमें क्या कम दुःख है? इस जीवनमें किसी भी स्थितिमें सुख नहीं है। श्वास ले तो उसमें भी खेद है। सारा जीवन खेदसे भरा हुआ है और उस श्वासका विराम हो जाये

तो मरण कहलाता है, मरणमें दुःख है। सर्वत्र इस जगत्में दुःख ही दुःख है। तब क्या करना है? जो होता हो, सो होने दो। मोह तजो और अपने आत्मा भगवान् पर निगाह रक्खो, सब अशान्ति दूर होगी। यह न कर सके तो फिर शान्तिका उपाय न बनेगा।

व्यर्थके ऊधमका पछतावा कोई एक संन्यासी महाराज थे। वे एक नदी पार करके किसी गांवको जा रहे थे। सो नदी पार करके तीरपर गांव था। वहां पानी पीने चले गए। तो जैसे जो भेषधारी होते हैं, संन्यासी होते हैं उन्हें रातबिरात छने अनछने पानीका कोई विचार नहीं होता है। यों वे संन्यासी जी पानी पीने चले गए। वहां जो एक स्त्री कुंवे पर पानी भर रही थी, उस पर मोहित हो गए। जिससे पानी पिया था अब उसे रख लिया। अब संतान हो गई, खूब घर भर गया। वे घूमते-घामते कहींके कहीं पहुंचे। अपने जीवनका गुजारा तो चलाना ही था। सो उसी नदीको पार करके सपरिवार सभी लोग जाने लगे। नदीमें बाढ़ आयी तो सभी बह गए, सिर्फ संन्यासी जी बच गए। उस नदीके किनारेके गांवके उसी कुंवे पर पहुंचने पर संन्यासी महाराजको याद आया कि यहां ही एक स्त्रीसे परिचय हुआ था और जिसके कारण अनेक नटखट करने पड़े और वे कोई भी अब नहीं रहे, केवल हम ज्योंके त्यों हैं। और इस बीचमें जो पाप किया थे, कर्म बांधे थे वे मुफ्तमें बांधे हैं। ऐसी ही यहां सबकी दशा समझिये। ये सब संसासरी जीव अपनी इच्छाके अनुकूल अनेक आरम्भ और विडम्बना मचाते हैं, दुःखी होते हैं और अन्तमें वही के वही जैसे आये, वैसे ही चले गए। बल्कि जब आये थे तो मुट्टी बांधकर आये थे। अब जब मरण हुआ तब हाथ पसारे जाना पड़ा। जब बच्चा पैदा होता है तो मुट्टी बांधे पैदा होता है। कवि के शब्दोंमें मानों वह पुण्य बांधकर आता है और जब जाता है तो सब कुछ खोकर हाथ पसार कर जाता है।

ज्ञानियोंके मार्मिक प्रश्नोत्तर एक बार कोई जैन मुनि श्रावकके घर आहार करके बैठ गये दो चार मिनटको। बैठते ही हैं प्रायः, सो वहां सेठ की बहूने पूछ लिया कि महाराज! आप इतने सवरे क्यों आ गए? महाराज बोले बेटी समयकी कुछ खबर न थी। अब सेठ सुनकर बड़ा हैरान हुआ कि यह भी गड़बड़ बोल रही है और महाराज भी गड़बड़ बोल रहे हैं। फिर महाराज ने पूछा बेटी तुम्हारी उमर कितनी है? तो बहू बोली महाराज हमारी उमर है ४ वर्षकी। और पतिकी उमर कितनी है? चार माह की। तुम्हारे स्वसुरकी उमर कितनी है? महाराज! स्वसुरतो अभी पैदा ही नहीं हुए। अच्छा तुम ताजा खाती हो कि बासी? महाराज ताजा कहां धरा है? सब बासी ही बासी खा रहे हैं। सेठ सारी बातें सुन कर दंग रह गया। मुनि महाराज तो चले गये। अब सेठ बहूको डाटने लगा कि इतने आदमियोंके सामने तूने ऐसी बेवकूफीकी भरी बातें कीं। सब लोग यही कहेंगे कि इनके घर बेवकूफ बहूयें बसती हैं। तो बहु बोली पिताजी! महाराजके ही पास चलो, वहां सब निर्णय हो जायेगा। तो वहां जाने पर क्या निर्णय निकला, सो सुनिये।

धार्मिक मार्मिक प्रश्नोत्तरोंका विवरण बहूने जो पूछा था कि तुम इतने सवरे कैसे आ गए तो उसका मतलब था कि इतनी छोटी अवस्थामें इस मुनिपद में कैसे आ गए? वे मुनि थे २०, २२

वर्षकी अवस्थाके। तो मुनि महाराजने कहा कि बेटी समयका ध्यान न था। मतलब मुझे उमर का कुछ ध्यान नहीं था, न जाने कब मृत्यु हो जाये? अरे जो बहूने कहा था कि हमारी उमर ४ वर्षकी है तो उसका अर्थ यह निकला कि बहुको ४वर्षसे धर्ममें श्रद्धा हुई। जबसे धर्ममें श्रद्धा हुई, तबसे ही वह अपना जीवन मानती है और पति की उमर चार माह, इसका अर्थ क्या निकला कि पतिको ४ माहसे धर्मकी श्रद्धा हुई। और स्वसुर साहब अभी पैदा ही नहीं हुए, इसका मतलब क्या निकला कि स्वसुर साहब को अभी भी धर्मबुद्धि नहीं जगी है। स्वसुर साहब मनही मन कुड़ते जाते थे। मुनि महाराजसे सेठने कहा कि मैं इतना बूढ़ा हो गया और मुझे यह बहू बताती है कि स्वसुर जी अभी पैदा ही नहीं हुए। तो बहूने कहा देखो ये अभी लड़ रहे हैं, अभी भी इनकी समझमें नहीं आता तो इन्हें पैदा हुआ कैसे कहा जाये? और ताजा खाते कि बासी? इसको बहूने बताया था कि ताजा कहां धरा है, सब बासी ही खाते हैं। इसका अर्थ क्या निकला कि पूर्व भवमें जो पुण्य किया था, उसकी कमाई खा रहे हैं। नई कमाई कुछ नहीं कर रहे हैं तो यह बासी ही तो खा रहे हैं। तो जब धर्ममें चित्त लगे तभी से अपना जीवन समझना चाहिए। इन वैभव समागमोंमें हर्ष मानने से तो केवल क्लेश ही क्लेश हैं।

जीवनका खेदोंसे निर्माण इस जीवनमें सुख हैं कहां? सर्व परिस्थितियोंमें इसको क्लेश ही क्लेश है। जहां खेद न हो उसीका तो नाम सुख है। श्वास लेना हो तो खेद होता है। जब तक श्वास है तब तक ही जीवन समझना चाहिए। तो जीनेमें सुख नहीं रहा। यह तो शरीरकी बात है। फिर सारी जिन्दगीमें रोज-रोजके कितने कष्ट हैं? मरणके समयमें क्लेश देखो जैसे सुनार लोग चांदीके तार छेदोंमें से खींचते हैं ताकि तार पतले हो जायें? इस ही प्रकार मरण समयमें ये जीवप्रदेश खिंचते हैं तो बड़ा कष्ट इस जीवको होता है। खैर, यह भी कुछ कष्ट नहीं है। महाकष्ट तो मोहका होता है। हाय, इतनी मेहनत करके लाखोंकी सम्पदा जोड़ी और यह सब छूटा जा रहा है, इस तरहका उपभोग होनेसे महान् क्लेश होता है इस मोही जीवको तो अब कहां सुख मिला? जन्ममें सुख नहीं, बचपनमें सुख नहीं, जवानी में सुख नहीं, बुढ़ापेमें सुख नहीं, कहां सुख है?

परोपरकारमें भी ज्ञानियोंका निजके स्वोपकारका लक्ष्य भैया! और सोचो हम कौनसा ऐसा काम करें जिसको देखकर सब राजी हो जायें? है क्या कोई ऐसा काम? २० राजी होंगेतो 1० बुरा कहने वाले भी होंगे। उपकार करना, नेतागिरी करना, शासन चलाना, कुछ भी काम करो पर चन्द लोग तो नाराज ही रहेंगे, कुछ लोग राजी भी रहेंगे। उपकार करनेका प्रयोजन यह रहना उचित है कि मेरा चित्त कहीं दूषित विषयवासनामें न भटक जायें। इसलिए परका उपकार करना चाहिए अर्थात् परके उपकारमें निजका उपकार भरा है। अपने ही भलेके लिए ज्ञानी जीव दूसरोंका उपकार किया करते हैं। इसी कारण दूसरोंका उपकार करके ज्ञानी उन पर एहसान नहीं लादता, जबकि अज्ञानी जीव वक्त मौके पर उन्हें ताना मारते हैं। हम तुम्हारे उस समय ऐसे काम आये, पर ज्ञानी जीव ताना क्यों नहीं मारते, क्योंकि उन्हें यह विश्वास है कि मैंने जो दूसरोंका उपकार किया है,

सो खुदकी भलाई के लिए दूसरोंका उपकार किया है। यहां तो जीवनमें समस्त परिस्थितियोंमें दुःख ही दुःख है। तब बतलावो सुख कहां से होय? इस शरीरका सम्बन्ध ही दुःखका कारण है, तब एक ही उपाय है इस देहसे नेह छोड़ना और वीतराग ज्ञानस्वरूप पदमें अपनी रूचि करना। यह ही सबका उपाय है। मोह ममतामें तो नियमसे क्लेश ही क्लेश भरा है। इस कारण समस्त समागमोंका मोह तजे और अपना जो सबसे न्यारा ज्ञानान्दस्वरूप आत्मा है, उस आत्मामें अपनी प्रतीति करें, इससे ही शान्ति प्राप्त होगी।

जन्मतालद्मज्जन्तुफलानि प्रच्युतान्यधः।

अप्राप्य मृत्युभूभागमन्तरे स्युः कियच्चिरम्॥७४॥

प्राणियोंकी वाञ्छा व प्रयत्न संसारके जितने भी प्राणी हैं उन सब के एक ही वाञ्छा है दुःख दूर हो और सुख मिले। सभी प्राणी इसका ही प्रयत्न करनेमें लगे हुए हैं कि किसी प्रकार दुःख दूर हो। जो भी कार्य किये जाते हैं व्यापार करना, साधु होना, और जितने भी सेवा परोपकार नेतागिरी तपस्या आदिके कार्य किये जाते हैं, वे सभी शान्तिके अर्थ किए जाते हैं, किन्तु यह सोचना है कि हमने अनादिसे लेकर अब तक शान्तिके लिए भरपूर प्रयत्न किया, शान्ति प्राप्त नहीं हुई। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि शान्तिका यथार्थ उपाय नहीं किया।

प्राणियोंकी अतीत दशा देखिये यह जीव अनादिसे तो निगोद में बसता चला आया है। जहां एक श्वासमें 1८ बार जन्म और मरण करना पड़ता है। वहांसे निकलकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पति हुआ, वहां भी दुःख सहे। वहांसे निकला तो कीट पतंगा दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय यों विकलत्रयमें उत्पन्न हुआ। यहां भी अनेक कष्ट हैं। कभी पंचइन्द्रिय हुआ तो मनके बिना अज्ञानी रहा। कभी मन वाला पञ्चेन्द्रिय हुआ। जैसे देव मनुष्य नारकी और पशुपक्षी तो यहां भी इस जीवने विषयकषायोंमें ही जीवन गँवा दिया।

जीवनका अल्प समय और फिर देखिये, जैसे कोई ताड़के पेड़से फल गिरे, नारियलके पेड़से फल टूटकर गिरे तो गिर कर वह जमीन पर ही तो आयेगा। गिरनेके बाद जमीन पर आनेसे बीचका कितनासा समय रहता है। ऐसे ही जानों कि जन्मरूपी वृक्षसे निकल कर यह जीव मरणरूपी भूमिमें हो तो आयेगा। अब बीचमें कितने समय तक यह जीवित रहेगा? इतना तो अल्प समय है हम आपका। ये 1०, २०, ५० वर्ष क्या कुछ गिनती भी रखते हैं? भरे हुए बड़े समुद्रमें एक बूँदकी तो कुछ गिनती हो जायेगी। पर इस अनादि अनन्तकालमें इस थोड़े से समयकी कुछ भी गिनती नहीं है। करोड़ों वर्षको भी किसी मापमें नहीं कहा। इतना तो हम आपका अल्प समय है और फिर इतने दिन जीकर अन्तमें मरण ही होगा। लोग यहां भी सोये हुए है मोहकी नींदमें। रात दिन उस ही का विकल्प बनाते हैं।

परके झुकावमें शान्तिकी असंभवता अहो, यह प्रभु समान भगवान् आत्मा व्यर्थमें ही परविषयक प्रीति करके आशा बनाकर परतंत्र और दुःखी हो रहा है। इसके दुःखको कौन मेटेगा? इसे स्वयं

ही मिटाना पड़ेगा। किये तो बड़े प्रयत्न शान्तिके लिए, पर शान्ति नहीं मिली। इसका कारण यह है कि शान्तिका मार्ग और कुछ है और उसे संक्षिप्त भाषामें कहो तो यह है कि शान्तस्वभावी जो निज अंतस्तत्व है, निज स्वरूप है उसकी ओर दृष्टि दो। अपनेको ऐसा मानो कि मैं आनन्दमय तो अपने आप ही हूँ, मैं जब अपने में नहीं ठहर पाता, किसी परजीवके प्रति परपदार्थके प्रति आशा करने लगते हैं तो चूँकि वे परपदार्थ पर ही हैं, उनका परिणामन मेरे विचार के कारण नहीं होता। वे जब रहेंगे रहेंगे, जब जायेंगे जायेंगे, किन्तु परकी आशा कर रखी है, इस कारण दुःखी होना ही पड़ेगा। परपदार्थों, की ओर झुकाव करके कोई भी जीव शान्ति नहीं पा सकता है।

धर्ममार्गकी सुविधा भैया! देखो सुविधानुसार समय-समय पर भव्य जीवोंके भाग्यसे तीर्थके प्रणेता नायक होते रहे हैं। आज जिनका तीर्थ चल रहा है अर्थात् जिनके बताये हुए मार्गपर चल रहे हैं, वे थे भगवान् महावीर। इससे पहिले २३ तीर्थकर और हो चुके हैं। जिनकी यह धारणा है कि जैनधर्म महावीर स्वामीसे चला है उनकी यह धारणा बिल्कुल गलत है। यह धर्म अनादि अनन्त प्रवाहसे चला आ रहा है। महावीर स्वामी तो २४वें तीर्थकर थे। इससे पहिले २३ तीर्थकर और हुए हैं, जिनमें आदि तीर्थकर ऋषभदेव हुए हैं, जिनका जिक्र ८वें या 1०वें अवतारके रूपमें लोकप्रसिद्ध है। प्रत्येक चतुर्थकालमें तीर्थकर उत्पन्न होते आये हैं। विदेह आदिक जो क्षेत्र है, उनमें सदैव तीर्थकर होते रहते हैं।

प्रवर्तमान तीर्थ ठीक है, ये तीर्थके प्रणेता सर्वत्र होते हैं, पर हम महावीर भगवान्की क्यों अधिक भक्ति करते हैं? उन्होंने ऐसा उपदेश दिया है कि जिस पथ पर हम चलें, उसमें नियमसे शान्ति मिलती है। शान्तिके लिए ही भगवान् महावीरका उपदेश है। तब हम ऐसे अभीष्ट तत्परत्व को पाकर क्यों न उनके प्रति न्यौछावर हो जायें? प्रभु जिनेन्द्रका उपदेश है कि वस्तुके स्वरूपका यथार्थनिर्णय किए बिना कोई जीव शान्तिके मार्गको पा नहीं सकता और उसका यथार्थ निर्णय होगा स्याद्वादसे। जैन धर्ममें ऐसी कौनसी विशेषता है जो हमें अपूर्व मिली हो वे हमें खोजने पर अन्यत्र कहीं नजर नहीं आये? वह सबसे बड़ी विशेषता है वस्तुस्वरूपके प्रतिपादन की। वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन स्याद्वाद की शैलीसे करने पर ही यथार्थ हो सकता है। क्या चीज है स्याद्वादकी बहुत मौलिक बात कही जा रही है। जिस विषयके समझनेके बाद और उस रास्ते से वस्तुस्वरूपके निर्णयके बाद मोह न रहे, इसीसे शान्ति होगी।

मोहविनाशका उपाय मोह दूर करने का उपाय यही है कि हम जान जायें कि प्रत्येक पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं। किसी पदार्थपर किसी दूसरेका अधिकार नहीं है। मैं केवल अपने ही स्वरूपमें हूँ, मैं दूसरेका कर्ता भोक्ता नहीं, अधिकारी नहीं, स्वामी नहीं। स्वतंत्रताका भान हो तो मोह क्यों कर बढ़ेगा? वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन स्याद्वादसे महावीर प्रभु ने बताया है। स्याद्वादका अर्थ है अपेक्षावाद। अपेक्षा लगाकर स्वरूप बताना सो स्याद्वाद है। जैसे किसी पुरुष का परिचय कराया जाय तो परिचय करने वाला कहता है कि यह अमुकका पिता है, अमुकका पुत्र है, अमुकका मामा है। एक आत्मामें

कितने रिश्ते थोपे जा रहे हैं, किन्तु अपेक्षा लगाकर समझना यह शंका न करना कि वाह इस पुरुषको पिता भी कह दो, पुत्र भी कह दो, यह कैसे हो सकता है? वह भी कोई एक होगा। लेकिन यह न भूलिएगा, अपेक्षा ले करके जो बात कही जाती है वह निर्णयरूप होती है, याने अमुका का यह पिता ही है, ऐसा नहीं कि अमुकका पिता भी है, ऐसी भी कहेंगे तब इसमें तो लड़ाई हो जायेगी, इसका पिता भी है तो क्या उसीका पुत्र भी हो जायगा? अपेक्षा लेकर बड़े निर्णयके साथ बोलना चाहिए कि इस अपेक्षा से ऐसा ही है। इसका रूप “स्यात् अस्ति एव” इस ढंगसे बताया गया है।

पानीमें मीन प्यासी जरा अपने आपके बारेमें तो सोचो कि मैं कैसा हूँ? अपने आपका उत्तर भी स्याद्वादकी पद्धतिसे आयेगा। प्रथम तो हैरानी की बात है कि जैसे लोग कहते हैं पानीमें मीन प्यासी। कितने अचरजकी बात है? एक गुरु महाराज थे। उनके पास कोई भक्त गया। भक्त बोला महाराज! मुझे ज्ञान नहीं है, सो कुछ ज्ञान दे दीजिए। गुरु ने बताया कि अमुक नदीमें अमुक जगह मगर रहता है, उसके पास जावो वह तुम्हें ज्ञान देगा। यह एक कथानक है। गया वह मगरके पास। बोला मगरराज! मुझे गुरुने तुम्हारे पास भेजा है, मेरे पास ज्ञान नहीं है, सो कुछ ज्ञान दे दीजिए। तो मगर बोला भाई! मुझे बड़ी प्यास लगी है। तुम्हारे पास लोटा डोर है, कुंवेसे पानी भर लावो, पी लें, फिर हम तुम्हें ज्ञान दें। तो पुरुष कहता है कि मुझे तो बड़े आश्चर्यने तुम्हारे पास भेजा है, मगर तुम तो बेवकूफ मालूम पड़ते हो। तुम पानीमें तो डूबे हुए हो और कहते हो कि मुझे प्यास लगी है। तो मगर बोला इस ही तरह तुम भी मूढ़ हो। अरे! तुम स्वयं ही पूर्ण ज्ञानमय हो, तुममें लबालब ज्ञान भरा हुआ है, फिर भी कहते हो कि मुझे आत्माका ज्ञान नहीं है। मुझे ज्ञान करा दीजिए। पानीमें मीन पियासीकी तरह हम सबकी बात भी हंसनेके लायक है। हम आप भी ज्ञानमय हैं, ज्ञान और आनन्दकी हम अपमें कोई कमी नहीं है, अधूरापन नहीं है, लेकिन बन रहा है मूढ़।

सम्यग्ज्ञान, आत्मविश्राम और निर्वाण हम लोग जन्म लेते हैं, मरण करते हैं, भोग भोगते हैं, दुःखी होते हैं, सारे क्लेशोंके बोझ लादे चले जा रहे हैं। यह बोझ एक सम्यग्ज्ञानके बिना दूर नहीं हो सकता। तो अब अपने आपमें साहस लावो ‘यह मैं जीव हूँ और सदा रहने वाला हूँ’ इस कारण द्रव्यदृष्टि से नित्य हूँ, इस लोकमें प्रति समय कुछ न कुछ अपने रूपसे बदलता रहता हूँ। शुद्ध पर्यायमें यही आत्मा प्रति समय नवीन पर्याय करता है, इससे पर्यायदृष्टिसे अनित्य हूँ। जैसा मेरा स्वरूप है तैसा समस्त जीवोंका स्वरूप है, इसलिए मैं एक हूँ। आत्मा एक है, किन्तु अनुभव सब का अपना-अपना जुदा-जुदा है। इस कारण सब भिन्न-भिन्न अनेक हैं। ज्ञान करते जाइए। तात्त्विक बात स्याद्वादके सहारे मिल सकती है और अन्तमें फिर उस विकल्पका भी परित्याग करके परम विश्रामसे रह जायेगा तो इसे निर्वाणका मार्ग मिलेगा।

स्याद्वादसे वस्तुनिर्णय प्रभु महावीर स्वामीने अपने उपदेशमें एक तो स्याद्वादका सहारा लेनेको कहा है। एकान्तका सहारा मत लो, किसी एक धर्मकी हठ मानकर मत रहो। देखो सब धर्मोंमें समन्वय कर सकने वाली कोई कला है तो स्याद्वादकी है। आज धर्मके नाम पर अनेक झगड़े फिसाद

होते हैं, लेकिन स्याद्वाद सब विवादोंको मिटाता है। जैसे अंधे चार पुरुष चले। रास्तेमें एक हाथी पड़ा था, उसे चारों अंधे टटोलने लगे और हाथीका स्वरूप बताने लगे। जिसके हाथमें पेट आया, वह कहता है कि हाथी बड़े डीलडोलका होता है, जिसके हाथमें पैर आया वह कहता है कि हाथी खम्भा जैसा होता है, जिसके हाथमें सूँढ़ आयी वह कहता है कि हाथी मूसल जैसा होता है और जिसके हाथमें कान आये वह कहता है कि हाथी सूप जैसा होता है। वे परस्परमें झगड़ने लगे। एक कोई समझदार व्यक्ति आया। कहा भाई, क्यों झगड़ते हो? तो उन्होंने सारा हाल बताया। उसने कहा सुनो तुम मत लडो सब लोग सच कहते हो, पैरों की दृष्टिसे हाथी खम्भा जैसा है, पेटकी दृष्टिसे बड़े ढोलक जैसा है, सूँढ़ की दृष्टिसे मूसल जैसा है और कानकी दृष्टिसे सूप जैसा है। तुम मत लडो, सब लोग ठीक कहते हो। ऐसे ही पदार्थोंके स्वरूपके बारेमें अनेक सिद्धान्त हैं अपनी अपनी बात सभी रख रहे हैं। जैन धर्म कहता है, स्याद्वाद कहता है कि भाई तुम परस्परमें एक दूसरेसे क्यों झगड़ते हो? अपनी-अपनी दृष्टिसे समझ लो। हम इस दृष्टिसे ऐसा कह रहे हैं, ये दूसरे अपनी दृष्टिसे ऐसा कह रहे हैं।

नयनदृष्टिसे दर्शनोंका अविरोध जैसे वेदान्तमें कहते हैं कि आत्मा ध्रुव अपरिणामी है, उसमें कोई दशा नहीं होती है, उसका कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। उसके विरोधमें बौद्ध दर्शन कहता है कि आत्मा तो क्षण-क्षणमें नया-नया होता है, वह दूसरे समयमें अपना अस्तित्व नहीं रखता। अब ये दो परस्परके बड़े तगड़े विरोध हैं वेदान्त और बौद्धके। स्याद्वाद उन दोनोंका यथार्थ समन्वय कराता है, भाई ठीक कह रहे हो। यह वेदान्तिका आत्मा अपने सत्वसे शाश्वत है। अपने स्वभावका कभी परिवर्तन करता ही नहीं है, यह प्रतिभासात्मक है तो अनेक भवभवांतर होकर भी, कर्म और शरीरके सम्पर्कमें रहकर भी यह प्रतिभासात्मक ही रहा। इसने अपना स्वरूप तजकर अन्यका रूप नहीं रक्खा। ठीक कह रहे हो वेदान्ती भाई! तुम बौद्धोंका क्यों विरोध करते हो? ये बौद्ध एक दृष्टिसे उसे क्षणिक कह रहे हैं, किन्तु कोई भी जो पदार्थ होता है वह पदार्थ इस समयमें जिस दशाको लिए हुए है, वह दशा अगले समयमें नहीं रहती, इस कारण पर्यायदृष्टिसे जीव अनित्य है। यों दर्शनका बहुत बड़ा विस्तार है। उसका समाधान, समन्वय, प्रेम, संगठन, धर्म और दर्शनकी नीतिसे सब स्याद्वादमें बताया गया है।

मोक्षमार्गका प्रतिपादन पहिली विशेषता जैनदर्शनकी स्याद्वाद है और फिर दूसरी विशेषता मोक्षमार्गकी है। भाई तुम्हें मोक्ष दिलाना किसको है? अपने आपके आत्माको। तो पहिले अपने आपके आत्माको सबसे न्यारा अपने स्वरूपमात्र, जानो फिर वैसा श्रद्धान् करें, और अपने ही स्वरूपमें रमण करें, यही है सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र। यही मोक्षका मार्ग है।

प्रभुका मूल उपदेश प्रभुका मूल उपदेश है मोह मत करो। गृहस्थी का काम मोह बिना चल सकता है। हां, राग बिना नहीं चल पाता। मोह और रागमें बहुत अन्तर है। यों समझिये जैसे कोई रोगी पुरुष औषधिसे राग तो करता है, समय पर औषधि न मिले तो झुंझला जाता है, और उसके

लिए पैसा भी खर्च करता है। उसे औषधिसे राग तो हैं, पर मोह नहीं है। वह रोगी यह नहीं चाहता कि जीवन भर मुझे ऐसे ही दवा पीने को मिलती रहे और मरनेके बाद भी भव-भवमें ऐसी औषधि मिले। वह औषधि पीता है औषधिसे छुटकारा पीनेके लिए, रोगसे मुक्त होनेके लिए। ऐसे ही जो सद्गृहस्थ हैं, ज्ञानी पुरुष हैं वे कदाचित् राग करते हैं, पर रागसे राग नहीं करते हैं। इस रागसे हटनेका मनमें संकल्प बना हुआ है। मोह मत करो, सुखी होना चाहते हो तो।

विविक्त अन्तस्तत्वकी रूचिमें जीवनका लाभ भैया! जगत्में नाना जीव हैं, वे सब अपने आत्मासे भिन्न हैं, उनमें क्यों यह व्यामोह करते हो कि यह तो मेरा है और यह पराया है। सभी जीव मुझसे पर हैं ऐसा निर्णय रखो। फिर जगत्में जितने भी जीव हैं वे सब कभी न कभी अपने कुटुम्बी हुए हैं, भाई बन्धु हुए हैं। किससे द्वेष करते हो, किससे मोह करते हो? अपने आपके यथार्थस्वरूपको निरखो तो तुम्हें शान्तिका मार्ग मिलेगा। देखो यह मनुष्यजीवन बड़ी कठिनाई से मिला है। यह जीवन कितनी देरका है? जैसे पेड़से फल गिरा तो वहां से तो टूट गया और जमीन पर आ गया, इसमें कितनी देर लगती है? करीब एक सेकेन्डका ही समय लगा होगा, ऐसे ही एक जन्मसे तो यह जीव निकलता है और मरणकी भूमि पर जा रहा है तो बीचका जीवन उस टूटे फलका जैसा है, थोड़ासा है। इस अल्पजीवनको यदि ज्ञान और वैराग्य में बितायें तो हम बड़ा लाभ ले सकते हैं।

धर्मके बिना मनुष्योंकी पशुवोंसे अविशेषता अरे भैया! विषयकषायोंमें ही इस जीवनको गँवा दिया तो बतावो पशुवोंसे फिर हम आपमें कौनसी विशेषता हुई? कविजन कहते हैं आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये जैसे पुरुषोंमें हैं, तैसे ही पशुवोंमें भी हैं। कौनसी विशेषता है पुरुषोंमें? एक धर्मकी विशेषता है। यदि धर्महीनत्व हो पुरुषमें तो मनुष्य और पशु दोनोंका समान हैं। ठीक है, किन्तु एक एक दृष्टिसे देखो तो धर्महीन मनुष्य पशुवोंसे भी गया बीता है। प्रथम तो यों देखो कि पशुवोंका पेट भरा हो तो वे भोजनको जरा भी ग्रहण नहीं करते, पर यह मनुष्य पेट भी भरा हो तो भी चाट पकौड़ी खानेके लिए कुछ न कुछ जगह निकाल लेते हैं। बहुत अच्छी लस्सी या कोई पेय पदार्थ दिख जाये तो पेटमें जगह निकल ही आती है। आहारके मामलेमें पशु तो संतोष कर लेंगे, पर यह मनुष्य संतोष नहीं करता। भयकी बात देखो पशुवों पर कोई लाठी लेकर आये तब ही भय खाते हैं, मगर यह मनुष्य तो गद्दा तक्की पर बैठा हुआ भी हो, बड़े ठंडे मकानमें आरामसे बैठा हुआ भी डरा करता है। कहीं व्यापार फेल न हो जाय, कहीं सरकार छुड़ा न ले, इस प्रकारका भय बना रहता है। कभी पशुवोंको सोता हुआ भी आपने न देखा होगा। वे सोते हों तो थोड़ीसी आहट पाकर जग जाते हैं। यहां मनुष्यको तो हिला कर जगाना पड़ता है। मैथुन की बात पशुवोंमें 1२ महीनेमें किसी नियत ऋतुमें होती है, पर इस मनुष्यके तो सदैव वासना चलती रहती है। तो इस दृष्टिसे धर्महीन मनुष्य पशुवोंके समान है।

धर्महीनतामें हीनता और भी देखिये एक दृष्टिसे धर्महीन मनुष्य पशुवों से भी गया बीता है। कोई उपमा देता है मनुष्यके किसी अङ्गकी व क्रियाकी तो पशुसे देता है। इसका गला कोयलकी भांति है, इसकी नाक सुवाकी जैसी है, इसकी चाल हंसकी जैसी है, यों अनेक उपमायें पशु और

पक्षियोंसे दी जाती हैं। तो जिसकी उपमा दी जाय वही तो बड़ा हुआ, यों मनुष्यसे पशु बड़ा हुआ। मनुष्यकी विशेषता केवल धर्मसे है।

मोह परिहार और धर्मपालन भगवान् वीर प्रभुका यह संदेश है कि मोहको त्यागो और धर्म करो। मोह त्यागनेका अर्थ है, परवस्तुको अपना न मानना। धर्म करनेका अर्थ यह है कि सबसे न्यारे केवल ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मस्वभावको देखो, उसमें ही प्रसन्न रहो और समग्र परवस्तुओंकी चिन्ताओंको त्याग दो। किसी क्षण तो ऐसी स्थिति बनावो। वहां जो एक अद्भुत विश्राम होगा, बस प्रभुताके दर्शन होंगे, शान्तिका मार्ग मिल जायेगा। तो वीर प्रभुका मुख्य उपदेश यही एक है कि स्याद्वादका सहारा लेकर वस्तुका स्वरूप जानों और मोहको त्याग दो। अपने आपकी ओर लगन हो तो यह उपाय हमारी शान्तिका कारण होगा। विषयसाधनोंका संचय करनेकी कल्पना न बनावो। ये सब अशान्तिके ही कारण हैं। ऐसे हितकारी उपदेशसे अपनी आंखें खोल दो, अपनेको शान्तिके मार्गमें लगा प्रभुके प्रति किसकी भक्ति न जगेगी? उन महावीर स्वामीको सहर्ष वन्दन हो।

क्षितिजलधिभिः संख्यातीतैर्बहिः पवनैस्त्रिभिः।

परिवृतमतः खेनाधस्तात् खलासुरनारकान्॥

उपरि दिविजान् मध्ये कृत्वा नरान् विधिमंत्रिणा।

पतिरपि नृणां त्रातानैको ह्यलंध्यतमोऽन्तकः॥७५॥

उपायोंकी मरणनिवारणमें विफलता यह मनुष्य आयुक्षयके क्षणमें किसी भी प्रकार रक्षित नहीं रह सकता। लोग अपनेको सुखमय जीवित बनाये रहनेके लिए कितने उपाय रचते हैं? धनका संचय, मकान दृढ़ बनाना, मनःप्रिय गोष्ठी सुदृढ़ रखना, अनेक उपाय करते हैं। कोई-कोई तो अपनी मृत्युपर विजय पानेके लिए मृत्युञ्जय आदि जाप कराया करते हैं, फिर भी यह मनुष्य अन्तमें किसी भी विधिसे बच नहीं सकता।

मनुष्यनिवासकी प्राकृतिक रक्षारचना सैद्धान्तिक दृष्टिसे जहां हम आपका निवास स्थान है उसको नजरमें रखकर सुनिये गुणभद्र आचार्य बता रहे हैं कि देखो इस मनुष्यकी रक्षाके लिए कर्मरूपी मंत्रीने कितने-कितने यत्न किए हैं, फिर भी यह बच नहीं सकता। इसमें लोकरचना आ गयी है। आज के लाग जितनी दुनिया मानते हैं। वह इस समस्त लोकके आगे समुद्रके बूँद बराबर भी नहीं है। यह लोक ३४३ धनराजू प्रमाण विस्तृत है। जैसे ७ लड़के एकके पीछे एक करके खड़े कर दिये जायें, सबके सब पैर पसारे हुए अपने हाथ कमर पर रक्खें हों तो उस समय जो सकल बनती है वही शक्त लोककी है। अब उसमें देखिये बीचके चौथे नम्बरके बालकके स्थानमें ठीक सिरसे लेकर नीचे तब जितना कि चौड़ा गला होता है उतनी ही चौड़ी एक लकीर मान लो। उतने को त्रसनाली कहते हैं। इस त्रसनाली के बाहर जितने भी और स्थान हैं उनमें केवल एक इन्द्रिय जीव ही रहते हैं। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंच इन्द्रिय जीव ये त्रसनाली स्थानमें रह रहे हैं। इसके बाहर त्रस जीव जन्म नहीं लेते हैं। उस त्रसनालीमें भी ठीक मध्यका स्थान जैसे कि

नाभि है, उतनेके आसपास एक थोड़ासा कम एक राजूप्रमाण मध्यलोक है। बाकी तो इसके ऊपर ऊर्ध्वलोक है और उससे नीचे अधोलोक है। अधोलोक में तो नारकी जीव रहते हैं, ऊर्ध्वलोकमें देव रहते हैं और सबसे अन्तमें सिद्ध भगवान् रहते हैं। कैसे सुरक्षित मध्यलोकमें मनुष्यकी रचना है, फिर भी यह सुखी नहीं, अमर नहीं, ऐसा निरखिये।

नरलोक के चारों ओर असंख्यातों प्राकृतिक कोट खाइयां मध्य लोकका आकार इतना ही समझिये कि नाभि की जगह तो मेरु पर्वत हैं और उसके चारों ओर गोल-गोल जितनी कि दृष्टान्तमें गले की चौड़ाई है, उतनी चौड़ाई मात्रमें असंख्यात द्वीप और समुद्रकी रचना है। उसमें जम्बूद्वीप सबसे बीचमें है। वह एक लाख योजनका लम्बा चौड़ा है। उस जम्बूद्वीपके चारों तरफ घेरकर लवण समुद्र हैं, जिसकी चौड़ाई एक तरफ दो लाख योजन है, उसको घेरकर दूसरा घातुकी खण्ड द्वीप है। जो एक-एक तरफ ४-४ लाख योजन का है। इस द्वीपको घेरे हुए एक तरफ आठ लाख योजनका विस्तारवाला कालोद समुद्र है। दूना-दूना बढ़ते जाइए। उसके बाद एक द्वीप पुष्कवर हैं जिसकी चौड़ाई १६ लाख योजन है। फिर समुद्र है, उसकी चौड़ाई एक तरफ ३२ लाख योजन है, उसको घेरकर द्वीप हैं और उससे दूने-दूने विस्तार वाले यों समुद्र द्वीप समुद्र द्वीप चले गये हैं। ये द्वीप समुद्र करोड़, अरब भी नहीं, शंख महाशंख भी नहीं, गिनती से परे हैं। गिनतीका जो अन्तिम रूप होगा उससे भी बढ़कर। उतने चौड़े द्वीप समुद्र जितनी जगहमें बन गये हैं, उतनी जगह एक राजू भी नहीं है और वह भी प्रस्तार रूपमें हैं। फिर एक राजू लम्बा, एक राजू चौड़ा, एक राजू मोटा इस प्रकारके विस्तारको एक घन राजू कहते हैं यों ३४३ घन राजू यह लोक हैं। इस समग्र लोकके बीचमें कितनी जगहमें मनुष्य हैं? केवल ढाई द्वीपमें। तो देखो इस मनुष्यको कहां बसाया गया? यह कहां उत्पन्न हुआ? असंख्यात द्वीपसमुद्र मानों इसकी रक्षाके लिए पड़े हैं। उन द्वीपसमुद्रोंके बीचमें ढाई द्वीपमें यह मनुष्य बसा हुआ है, फिर भी इसे मरणसे कोई बचा नहीं सकता।

सुरक्षित स्थानमें भी अरक्षा इस कर्ममंत्री ने कैसा रक्षाका साधन बनाया? कोई राजा अपना महल समुद्रके बीच किसी टापूपर बनाये तो वह अपनी रक्षाके लिए ही तो उपाय करता है। न कोई समुद्रसे तैर कर आ सकेगा, न पहाड़ोंको फाड़कर आ सकेगा। ऐसी सुरक्षाकी जगहमें राजा लोग अपना निवास बनाते हैं। इस कर्ममंत्री ने मनुष्यका निवास कहां बनाया है? इस लोकमें ठीक बीचमें। असंख्यात दीप-समुद्रोंके मध्यमें मनुष्यका निवासस्थान है जिससे कि मनुष्यका जीवन सुरक्षित रहा आये, मरे नहीं। लेकिन फिर भी क्या यह जीवन रह सकता है? नहीं रह सकता है। मरण कर जाता है।

गम्भीर वातवल्योंका सुदृढ़ पहरा पहिली बात तो इस मनुष्य लोककी ही देखिये अनगिनते द्वीप समुद्रद्वीप इस तरहसे बेड़े हुए हैं और फिर उन द्वीपसमुद्रोंके बाहर ३ प्रकारकी वातवल्य है धनवात वलय, धनोदधि वातवल्य और तनुवातवल्य। वातवल्य मायने हैं हवा का पुञ्ज। कोई-कोई लोग कहते हैं कि यह जमीन शेषनाग पर सधी हुई है। क्यों जी यह शेषनाग यदि अपना

फन टेढ़ा करदे तो फिर यह दुनिया क्या बचेगी? अरे शेषनागका अर्थ क्या है इसे ठीक-ठीक निकालो। नागमें तीन शब्द हैं न अ और ग। तीनोंको मिलाकर नाग बनता है। ग का अर्थ है गच्छति इति गः। जो खूब चले उसके मायने हैं ग और अ लगानेमें अगः। यनि जो बिल्कुल न चले उसका नाम अग है। अग मायने पर्वत। फिर न अग जो चले नहीं ऐसा नहीं, किन्तु चलता ही रहे उसका नाम है नाग, मायने हवा। इस नागका अर्थ हुआ हवा। और शेष नाग मायने लोकके अन्तकी शेष हवा। जिसका हम आप सेवन करते हैं। जिन्दा रहते है इस हवा से भी शेष अन्तमें बची हुई जो वायु है उसका नाम शेषनाग है। यह लोक शेषवायु पर, ३ वलयों पर आधारित है।

विधिमंत्रीकी विवशता देखो भैया! मनुष्यको सुरक्षित रखने के लिए इस विधिमंत्री ने कहाँ इसका वास कराया? तीन वातवलयोंसे भिड़ा हुआ असंख्यात द्वीप समुद्रके बीचमें यह मनुष्य लोक है। इतनी सुरक्षाकी जगहमें तो मनुष्य पैदा हुआ है, लेकिन जब मरण समय आता है तो इसको कोई बचा नहीं सकता। और इतना भी नहीं, उस वातवलयसे बाहर अनन्त अलोकाकाश हैं, जैसे कि महाराज लोग अपने किले के बाहर खाई खोद देते हैं, ताकि कोई पार न कर सके। यों अनन्त अलोकाकाश हैं। उसके भीतर ३ वलय हैं, उसके भीतर लोक रचना है, असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, उसके मध्य ढाई द्वीप हैं, वहां मनुष्योंका निवास है। फिर भी यह मनुष्य बच नहीं सकता।

अधोलोकमें मनुष्यनिवास होने पर भी अरक्षा लोग जिससे अपनी अरक्षा समझते हैं, अपना विधात समझते हैं उन दुष्टोंको बहुत दूर नीचे गिरा देते हैं। तो देखो इस लोकमें नरकगतिके जीव अधिक दुष्ट हैं, सो नारकियोंको अधोलोक मिला है। नारकियोंको अधोलोकमें पहुंचा देने की वजहसे मनुष्यका बिगाड़ नहीं होगा, मनुष्य मरेगा नहीं। ये नारकी जीव मनुष्य पर हमला न कर दें, मानों इसके लिए इस कर्ममंत्री नारकियोंको अधोलोकमें पहुंचा दिया, फिर भी यह मनुष्यराजा मृत्युसे बच नहीं सकता।

किसी भी परवस्तुसे अपनी रक्षाका अभाव लोकरचनाएँ देखते हुए यह बताया जा रहा है कि मनुष्य कहां बसता है? और लोककी कैसी रचना है? फिर भी यह मनुष्य बच नहीं सकता। लोग जिन्हें अपना बड़ा समझते हैं, उनकी छायामें रहना चाहते हैं। तो लोकदृष्टिसे चारों गतियोंमें देवगति सबसे ज्यादा सुखकारी गति है। तो देखो इस विधिमंत्री ने उन देवतावोंको, इन्द्रोंको ऊपर नियुक्त कर दिया है, याने स्वर्गमें देव रहते हैं। तो इस मनुष्यलोकके नीचे नारकी हैं, ऊपर देवता हैं और यह मनुष्यलोक चारों तरफसे द्वीप समुद्र, वलय और आकाश से सुरक्षित है। फिर भी यह मनुष्य मृत्यु समय आने पर रक्षित नहीं रह सकता। सबके बीचमें मनुष्योंको रक्खा है इस विधिने, लेकिन मनुष्य मरणसे नहीं बचता। इससे यह निश्चय करो कि इस मनुष्यको विधाता चक्रवर्ती आदिक कोई भी रक्षा नहीं कर सकते, और यह तो मरणके समय की बात है। जीवनमें भी जो जैसी कल्पनाएँ मचाता है, वह उसके अनुसार दुःखी होता है। उस को इस दुनियासे बचानेके लिए कोई भी जीव समर्थ नहीं है। वही अपनी कल्पनाएँ मिटाये, शुद्ध ज्ञान बनाये तो स्वयं सुखी हो सकता है।

स्वर्क्षाका यत्न सबसे पहिली कल्पना तो परवस्तुवोंसे बड़प्पन मानना और परवस्तुवोंके प्रसन्न करने, संचय करनेमें अपनी कल्पनाएँ बनाए रहना ये ही खोटी कल्पनाएँ हैं। इसीका नाम मोह है। अरे किसी क्षण समग्र परवस्तुवोंकी कल्पनाएँ त्याग कर, अपने देहको भी भूलकर केवल ज्ञानानन्दस्वरूप अपने आत्मा भगवान्का दर्शन भी तो करिये, जिससे समग्र बोझ, समग्र संकट दूर हो जायेंगे। अपने आपका रक्षक यह आत्मा भगवान् स्वयं ही है। सुरक्षित तो है ही यह वस्तुस्वरूपके कारण। बस, इसे इतना समझ लीजिए कि यही अपना रक्षक है, मैं कभी विनष्ट न होऊँगा। चाहे कितना भी उत्पात हो, अधिकसे अधिक क्या होगा? शस्त्रसे या अन्य उपायोंसे इस देहका घात हो जायेगा, लेकिन आत्मा जो यह ज्ञानानन्दधन है, यह पूर्ण सुरक्षित है, यह एक स्थानको छोड़कर दूसरे देह स्थानको पालेगा, पर इसका विनाश नहीं होता, और इसका ही क्या, किसीका भी विनाश नहीं है, देहका भी विनाश नहीं है।

परमार्थका अविनाश देहमें जो अणु हैं वे हैं पदार्थ, उनका विनाश नहीं है। देह तो कोई चीज ही नहीं है। उन अणुवोंका जो एक पिंड बन गया है, आने जाने वाले परमाणुवोंका जो एक स्कंध है यह देह है। देह कोईवास्तविक चीज नहीं है। वास्तविक वस्तु तो पुद्गल परमाणु है, उन पुद्गल परमाणुवोंका वियोग भी हो जाये, इस देहको कोई जला दे, जलाकर खाक हो जाये तो भी वह अणु नष्ट नहीं होता। कुछ स्कन्ध धुवाँके रूपमें पतली बन कर बिखर जायेगी, रहेंगे अवश्य कुछ स्कन्ध, राख बन जायेंगी। कोई-कोई अणु मात्रताको पा लेंगे, पर एक भी अणु नष्ट न होगा। जगत्में जो सत् है वह कभी नष्ट नहीं हो सकता। जो असत् है वह कभी पैदा नहीं हो सकता। तब सोच लीजिए कि यह व्यर्थमें ही तो मोहभाव उत्पन्न होता है और हम उसमें दुःखी रहते हैं। यह चंद दिनोंकी जिन्दगी स्वप्नकी तरह है। स्वप्नमें देखी हुई बात स्वप्न की तरह है। स्वप्नमें देखी हुई बात स्वप्नमें झूठ मालूम पड़ सकती है? जैसे निद्रा भंग होने पर ही स्वप्नकी बात झूठ प्रतीत होती है, ऐसे ही मोहका विनाश होने पर ही मोहमें की हुई करतूत झूठ मालूम होती है।

प्रतिक्रमणका प्रयोजन योगीजन अपनी आत्मसिद्धिके लिए प्रतिक्रमण किया करते हैं। प्रतिक्रमणका अर्थ है लगे हुए दोषोंको मिथ्या बनाना। यह योगी जब आत्मस्वरूपका ध्यान करता है यथार्थ, यह मैं आत्मा केवल ज्ञानानन्दपुंज हूँ, अमूर्त हूँ, स्वभावतः इसमें प्रतिभास ही होना चाहिए। रागद्वेष अथवा अन्य उपाधियोंका सम्बन्ध इस मुझ आत्मा में नहीं है। उस शाश्वत पारिणामिक भावरूप चैतन्यस्वरूपकी सुध लेता है तो इसे यह ज्ञात होता है, ओह! इस मुझ आत्मामें तो कोई रागादिक दोष ही नहीं हैं, फिर ये हो कैसे गये थे पहिले? अज्ञानसे, कल्पनाओंसे। तो अज्ञान और कल्पना भी मिथ्या है। ओह! मेरे दोष मिथ्या हों ऐसी दृष्टिसे रखकर किए हुए दोषोंसे अपने आत्माको विविक्त कर देना और इस न्यारे शुद्ध चैतन्यस्वभावमें रमण करना यही तो प्रतिक्रमण है।

अज्ञान विपदा व ज्ञान संपदा इस संसारी प्राणी पर बड़ी विपदा बसी हुई है, और वह विपदा है इस कुबुद्धिकी, मोहकी। मोह न रहे, अज्ञान न रहे तो इसमें इसका क्या बिगाड़ है? कहीं कुछ

बिगाड़ नहीं है, और मोहमें सारा बिगाड़ है। घरमें रहते हुए भी जो किसीमें मोह कर के रहता है उसका वियोग होने पर उसे पागल जैसा बन जाना पड़ता है, उसका चित्त स्थिर नहीं रह सकता। वह घरमें रह रहा है, यथार्थ बात समझ रहा है, सब जीव स्वतन्त्र हैं, अपने-अपने स्वरूपको लिए हुए हैं, सबसके साथ अपने-अपने कर्म हैं। जिस जीवके साथ जितने निषेक वाले आयुर्कर्म हैं वे उतने समय तक शरीरमें रहते हैं, पश्चात् वे शरीरको तज कर आगे किसी दूसरे शरीरको ग्रहण कर लेते हैं। ये जीव मेरे कुछ नहीं हैं, यह शरीर, ये परिजन मेरे कुछ नहीं हैं, ऐसा यथार्थ ज्ञान विचारमें रखते हुए प्रयोजनवश चूंकि गृहस्थीमें हैं तो सब कुछ व्यवस्था प्रबन्ध धन, दुकान सबकी बात करते हुए भी चूंकि यथार्थ ज्ञान हो गया है, इस कारण वे किसी भी परिस्थितिमें दुःखी नहीं होते हैं।

अज्ञानसे पद-पदमें कष्ट भैया! यदि मोह है तो उसके दुःखके लिए अनेक प्रसंग हो जाते हैं। सब कुछ है, सुविधा, सम्पन्न, किसी बातकी तकलीफ नहीं है, फिर भी यह कल्पना उठ जाती है कि मेरेको और अधिक धन चाहिए। यह तो न कुछ है। इतनेमें तो इस लोकमें मेरी इज्जत नहीं हो सकती है। मुझसे तो अनेक लोग बड़े हैं। मेरी शाबासी तो तब है जब मैं सबमें सिरमौर कहलाऊं। तो इतनी मात्र कल्पना भर की कि सारी जिन्दगी अब उसकी क्लेशमें ही बीतेगी। उसे आराम हो ही नहीं सकता। जिसके अज्ञान बसा हुआ है उसके तो पद-पदमें कष्ट है।

बेवकूफकी सर्वत्र फजीहत एक पुरुष था, उसका नाम था बेवकूफ, उसकी स्त्रीका नाम था फजीहत। दोनोंमें अक्सर लड़ाई हो जाया करती थी और फिर सुलह हो जाती थी। एक दिन ऐसी लड़ाई दोनोंमें हो गई कि फजीहत घर छोड़कर कहीं चली गयी। अब वह बेवकूफ अपनी फजीहतको इधर-उधर ढूँढता फिरे। बहुतसे लोगोंसे पूछा, पर कहीं पता न चला। एक बार किसी दूसरे गांवके किसी मुसाफिरसे पूछा कि तुमने हमारी फजीहत देखी? तो वह उसका कुछ अर्थ ही न समझ सका। उसने पूछा कि भाई तुम्हारा नाम क्या है? तो बोला हमारा नाम है बेवकूफ तो मुसाफिर बोला कि बेवकूफ होकर तुम फजीहत को क्यों ढूँढते फिरते हो? जहां ही खोटा बोल बोल दिया, वहीं लाठी घुँसे सब मौजूद हैं। बेवकूफ होकर फजीहतको कहां ढूँढना है? ऐसे ही मोही जीवोंको देखो इसमें दुःख है, इसमें सुख है, उसका सोचना सब बेकार है। मोह है तो सब स्थानोंमें दुःख है। जिसे लोग सम्पन्नता समझते हैं वहां भी दुःख है। कोई करोड़ों का भी धनी हो जाय तो भी मोह होनेके कारण उसे सुख नहीं हो सकता है। जो आज की दुनियामें करोड़पति हैं उनके संगमें कुछ समय तक रहकर देखलो, वे कितने दुःखी हैं? उनका चित्त कभी ठिकाने नहीं रहता है।

धर्मपालनमें मनुष्यजीवनका सदुपयोग अरे भैया! मनुष्यजन्म एक बड़ा दुर्लभ जन्म है। गृहस्थी चलाना है, पेट भरना है, कोई सुविधा रखना है तो इतने मात्रकी ही चिन्ता रखो, धन वैभव का संचय करके रख जाने के लिए यह जीवन नहीं है। यह नरजीवन धर्म पालनके लिए है। इसके लिए क्या संचय करना? सब जीव न्यारे हैं, वे अपने-अपने भाग्यको लिए हैं। पुत्र कुपूत हो जाय तो धनसंचयसे क्या लाभ है? वह तो कुछ ही दिनोंमें उस धनको बरबाद कर देगा। पुत्र सपूत है तो

धनसंचयसे क्या लाभ है? वह स्वयं कमा लेगा। यह धन जिसके उदय है उसके पास रहता है। न उदय हो तो नहीं रहता है। ऐसा जानकर बाह्यवस्तुओंकी चिंताओं को त्याग दो और अपने जीवनको धर्मपालनके लिए समझो, पर धर्मपालन किस विधि से होता है? केवल एक लोकरूढ़िमें हम दर्शन कर लें, कोई उत्सव मना लें और भी धार्मिक कार्य करलें, इससे धर्मपालन नहीं होता। जब तक निर्मोह निष्कषाय शुद्ध ज्ञानपुंजकी झलक न आयेगी तब तक धर्मपालन नहीं हो सकता। विश्वासमें तो यह बसाये हुए हैं कि मैं इतने परिवार वाला हूं, ऐसी इज्जत पोजीशन वाला हूं, इस चिन्तामें यह निरन्तर बस रहा है, तब उस केवल ज्ञानपुंजकी सुध कहांसे हो?

श्रावकके दो कर्तव्य जब तक सबसे विविक्त ज्ञानमात्र अपने आपके स्वरूपका दर्शन न होगा तब तक धर्मपालन नहीं हो सकता। ऐसा दर्शन करनेके लिए आवश्यक है कि अनेक प्रयत्न करके सम्यग्ज्ञानका अर्जन करें। सत्संगमें रहकर, गुरुजनोंसे सीखकर, स्वाध्याय करके अपने ज्ञानको बढ़ायें। ज्ञानवृद्धिके लिए और अपनी निर्मलताके लिए सुगम उपाय ये दो हैं कि रोज आधपौन घंटा, एक घंटा स्वाध्यायमें लगायें और बारह महीनेमें एक महीना घरको त्यागर किसी सद्गोष्ठीमें जायें और वहां ज्ञान सीखें। अरे व्यर्थमें जीवन बिता देनेसे क्या लाभ? अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव करें, अपने ज्ञानबलको बढ़ायें और धर्मपालन करें।

अविज्ञातस्थानो व्यपगततनुः पापमलिनः।

खालो राहुर्भास्वद्दशशतकराक्रान्तभुवनम्॥

स्फुरन्तं भास्वत्तं किल गिलति हा कष्टमपरः।

परिप्राप्ते काले विलसति विधौ को हि बलवान् ॥७६॥

मरणसमयमें बेदखल जब मरणका समय आता है तो उस समय किसी का भी वश नहीं चलता। एक लौकिक उदाहरण देते हैं। राहु सूर्यको डस लेता है। वास्तवमें तो सूर्यका ग्रहण करने वालेका नाम है केतु और चन्द्रमाका ग्रहण करने वालेका नाम है राहु, पर प्रसिद्धि राहुकी है। राहु ही सूर्यको डस लेता है, राहु ही चन्द्रमाको ग्रस लेता है। असलमें ग्रसत कुछ नहीं है। चंद्रविमानके नीचे राहुका विमान आ गया तो राहु है कृष्ण वर्ण का और चन्द्र है श्वेतवर्णका, उसकी रोशनी ढक जाती है। इसी प्रकार सूर्यके नीचे केतुका विमान आ जाय तो सूर्यका प्रकाश ढक जाता है। सूर्य और चन्द्र इनकी गति है कुछ तेज और राहु केतुकी गति है। मंद सो मंद गति से चलते-चलते राहु पर जब चन्द्रमाका नम्बर आ जाता है और केतु पर सूर्यविमान का नम्बर आ जाता है तब उसे ग्रसना कहते हैं।

भूगोलमें आधुनिक मत आधुनिक भूगोलमें पृथ्वीकी छाया उस पर पड़ती मानी गयी है। अब कोई दो चीजें हैं, एक चलती है एक नहीं चलती है तो चलते को न चलता मानकर और न चलते को चलता मान कर भी गणित वही बैठ जायेगा, और चलतेको चलता मानें, न चलतेको न चलता मानों तो भी गणित वही बैठ जायेगी। सो गणितमें अन्तर नहीं आया। इससे आधुनिक प्रसिद्धि यह

हो गयी। दूसरी बात, गणित की सही बात बैठ गयी और जमीन स्थिर है, यह बहुत प्राचीन मान्यतासे चला आ रहा है। किसीने आधुनिक बात रक्खी तो लोककी निगाहमें यह नवीन बात अधिक घर कर गई है।

अचानक विनाश तो जैसे राहु व केतु इनका स्थान किसीको ज्ञात नहीं हैं, हम रातको चन्द्रमाका तो ख्याल कर लेते हैं कि यह चन्द्रमा है। जैसे चन्द्रमा पर मानो कलके दिन ग्रस होगा तो वह चन्द्रमा कलके दिन आया था। रोज वही सूर्य व चन्द्र नहीं आता है। तो जैसे पूर्णमासी का चन्द्रग्रहण होता है तो त्रयोदशीका चन्द्र और राहुका विमान कुछ अधिक अन्तरसे न था, पर किसीने तेरसको भी राहु देखा? उसका स्थान अविदित हैं। अमावसको सूर्यग्रहण होता है। जैसे अमावसको सूर्यग्रहण होगा, वही सूर्य तेरसको था। उससे २ दिन पहिले तेरस को सूर्यके कुछ ही आगे केतु विमान था, पर किसीने केतु देखा? इसका स्थान अविज्ञात है क्योंकि वह कृष्णवर्ण वाला है और उसके शरीर नहीं है। लोग ज्योतिषमें मानते हैं कि कोई एक देवता था। किसी समय किसी कारण उसके सिर का छेद कर दिया गया। राहु तो सिर और सारा शरीर बन गया केतु देवता। अब दो देवता हो गए। उस प्रसिद्धिसे बात कही जा रही है कि राहुके शरीर नहीं है, फिर भी यह अचानक चन्द्रको, सूर्यको ग्रस लेता है। पापमलिन है राहु। लोक प्रसिद्धिमें राहुको पाप माना है, क्योंकि वह चन्द्र सूर्यको ग्रस लेता है। पापसे मलिन है ऐसा यह राहु जब सामने आता है तो सूर्य अथवा चन्द्रको ग्रस लेता है। ऐसे ही जब आयु के अन्तका समय आता है तो जीवको मरना पड़ता है, सब कुछ त्यागना पड़ता है।

होनहारके अनुसार बुद्धि परिवर्तन एक किम्बदन्ती है कि कछुवा और हंसकी बड़ी दोस्ती थी। उस हंसकी जो भगवान्के दरबारमें रहता था उस हंस पर भगवान् बैठते होंगे। भगवान् तो वीतराग होते हैं। वे तो शुद्ध ज्ञानानन्दपुंज अमूर्त तत्व हैं। खैर, लोग जैसा मानते हैं उस दृष्टिसे यह कथानक कहा जा रहा है। हंस कछुवेके पास जब चाहे आये। उसी सरोवरके पास यमराज भी किसी को मारनेके लिए आया। किसी अन्यको वह मारने जा रहा था। जानेका रास्ता यही था। कछुवा देखकर उनकी कुछ हंसी करता था, तो यमराज बोले कि तू क्यों हँस रहा है? परसों तेरी भी मौत है, तुझे भी हम ले जायेंगे। जब वह हंस आया, उस समय कछुवा बड़ा उदास था। हंसने पूछा कि तुम क्यों उदास हो? तो उसने बताया कि यमराज यों कह गया है, वह मुझे भी ले जायेगा। तो हंस बोला तुम घबरावो मत। हम देखते हैं कि वह तुम्हें कैसे ले जायेगा। हंस उस कछुवेको बड़ी दूर जंगलमें एक गुफामें उठा ले गया, और उस गुफामें ईंट भी जोड़ जाड़कर उसका दरवाजा बन्द कर दिया। और हंस चला गया। हंसने कहा कि अब देखें उस कछुवेको यमराज कैसे मारेगा? अब वहाँ जाने पर हंससे भगवान्ने पूछा कि आज देर कैसे हो गई? तो हंसने कहा कि यमराज एक कछुवेके प्राण लेनेके लिए कह आया था, सो उसका छुपाकर हम जंगलमें एक गुफामें रख आये हैं। देखें उसे कैसे यमराज मारेंगे? तो भगवान् बोले ओह! तूने बड़ा उल्टा काम किया। अरे यमराजको तो

वही स्थान बताया था कि उस जंगलकी गुफामें कछुवा होगा उसके प्राण लाना। वह कछुवा तो मर भी चुका होगा। हंस सोचता है कि वहां न रख आता तो सम्भव है कि बच भी जाता। अब जब हंसने वहां जाकर देखा तो उसे मरा हुआ पाया। हुआ क्या? रीछ आया और ईंटे उखाड़कर भीतर घुस कर कछुवे को खा गया था। सिर्फ हड्डी बचीं।

प्रासंगिक दो शिक्षायें इस किम्बदन्तीसे हमें दो शिक्षायें लेनी हैं। जब बिगाड़ होता है, विनाश होता है तो अपना ही मित्र विनाशका कारण बन जाता है। मित्र वास्तवमें खराब नहीं होता कि मैं इसका विनाश कर दूँ, पर ऐसा ही योग हो जाता है कि मित्रकी ही करतूतसे उसका विनाश हो जाता है। दूसरी शिक्षा यह लेनी है कि जो जीवित हुआ है वह तो मरेगा ही अपने समय पर। हम मरण को कहां तक रोकें, कहां तक पैर पीटें? हाय मेरा मरण हुआ। कुछ लोगोंके ऐसा साहस होता है कि मरण आये तो भी घबराते नहीं हैं। स्वतन्त्रताके प्रेमियों और धर्मके प्रेमियोंके अनेक उदाहरण मिलेंगे कि वे जान बूझकर सामने अड़ गए, मुझे गोली मारो, मैं तैयार हूँ। अरे मर गए तो कोई बात मन में थी, किसी तत्वके बारमें साहस तो था।

अकलंक व निकलंक धर्मप्रभावना संकल्प भैया! धर्म वालोंको देखो अकलंकदेव और निकलंकदेव दोनो भाई थे। जब बतायें उनकी घटना सही-सही अपने उपयोग में आती है तो खेद किए बिना नहीं रहा जा सकता। दो आंसू झलक ही जायेंगे। ऐसी उनकी घटनाएँ हैं। किसे धर्मवात्सल्य धर्मपालन कहते हैं और भाई-भाईका भी वास्तविक प्रेम क्या होता है? वह सब उनकी घटनामें घटित है। दोनों भाइयोंको ऐसी रुचि हुई कि संसारका क्या भोग भोगना, क्या वैभव में लिप्त रहना? उन्होंने ब्रह्मचर्यकी ठानी और विद्याभ्यासके लिए बड़े-बड़े कष्ट सहे। बौद्धोंकी पाठशाला में भी अध्ययन किया। उनकी इतनी प्रखर बुद्धि थी कि अकलंकदेवको एक बार गुरुमुखसे सुनते ही याद हो जाता था और निकलंकदेवको दो बार सुननेसे याद होता था। पाठशालामें पढ़ते-पढ़ते एक दिन स्याद्वादका प्रकरण गुरुजी पढ़ा रहे थे। जैनशासनका मुख्य अंग स्याद्वाद है। किसी वस्तुकी भिन्न-भिन्न दृष्टियोंसे खूबियां जानना इसका नाम है स्याद्वाद। उसमें गुरुजी जरा अटक गए, अटकनेका कारण क्या था कि कोई एक शब्द अशुद्ध था। मौका पाकर अकलंकने जो गलती थी उसे ठीक कर दिया। दूसरे दिन गुरुने देखा तो आश्चर्यमें पड़ गए। सोचा कि इस अशुद्धिका ठीक करने वाला तो जैनसिद्धान्तका कोई बड़ा जानकार होगा, वही शुद्ध कर सकता है। मालूम होता है कि इन बालकोंमें कोई जैन है। इस जमानेमें बड़ा आतंक छाया था। कोई कह तो दे कि हम जैन हैं, वह जिन्दा नहीं रह सकता था। उन्हें दूँढने का बड़ा यत्न किया। इस यत्नमें वे बौद्ध गुरु सफल हो गए। रात्रिके समय तीन बजे सब विद्यार्थी सो रहे थे, पचासों थाली पटकी गई, उनकी बड़ी भयानक आवाज आयी। अब बच्चे जाग गए तो अपने-अपने इष्टदेवका वे स्मरण करने लगे। अचानक में उठकर बैठ जाने पर वे दोनों बालक अपना पंचपरमेष्ठीका जाप जपने लगे। पकड़ लिए गए वे दोनों बालक। कैदमें बन्द कर दिये गए।

अकलंक और निकलंककी उदारता कोई देवी उन्हें धर्मवीर जान कर उनकी सेवा करने आई। जेलके पहरेदार सो गए, फाटक खुल गये, अब वे दोनों बालक निकल कर बाहर चले गए। जब सबेरा हुआ तो सारा राज मालूम हुआ। चारों और नंगी तलवार लेकर घुड़सवार भेजे गए, उनसे कह दिया गया कि जहां कहीं भी वे दोनों बालक मिलें, उनका सिर काट कर लावो। जिस समय अकलंक और निकलंकका पीछा किए हुए नंगी तलवार लिए घुड़सवार जा रहे थे, उस समयका दृश्य बड़ा रोमाञ्चकारी था। अकलंक निकलंकसे प्रार्थना करता कि पहिले मुझे मरने दो, तुम कहीं छिप जावो। तो छोटा भाई निकलंक अपने बड़े भाई अकलंकसे कहता है नहीं नहीं पहिले मुझे मरने दो, तुम तीव्र बुद्धिके हो, इस तालाबमें कमलोंके बीच छिप जावों, पहिले मैं मरूंगा, इसकी मैं आपसे भीख मांग रहा हूं। आखिर उस समय कुछ और अवसर न था। अकलंकदेवको छिपा दिया गया, निकलंक आगे भागता गया। उसको भागते देखकर कोई धोबीका लड़का भी उसके संगमें भागने लगा। उन दोनोंके सिर काट दिये उन घुड़सवारोंने। अब देखिये जहां धर्मप्रभावनाके बारेमें अकलंक देवका महत्व है वहां निकलंक देवका महत्व नहीं है क्या? ऐसे-ऐसे धर्मवीर हुए हैं जिन्होंने धर्मके लिए अपने प्राण भी त्याग दिए। और यहां हम आपमें ज्ञान प्रभावना हो, स्वयं ज्ञानमें समर्थ बनें, दूसरे ज्ञानमें समर्थ बनें इस ओर दृष्टि ही नहीं जगती।

मोह और शोकसे अलाभ अहो! यहां मोह, मोहके ही सारे काम होते हैं। धर्मके कोई कार्य करेंगे तो मोहसे भरा करेंगे। चूंकि हमारा परिवार खुश होगा, बच्चे खुश रहेंगे, काम अच्छा चलेगा। पुण्य करते ही रहना चाहिए। ऐसे उद्देश्यके विरुद्ध हो जानेसे वह धर्मकार्य भी कुछ महत्व नहीं रखता। मृत्यु तो सबकी आयेगी। यहां हम आप जितने भी जीव दिख रहे हैं मरण सबका होगा। यहां तक कि जो आज भी पैदा हुआ है वह भी 100 वर्षके अन्दर ही अन्दर मरण कर जायेगा, बचना किसीको नहीं है। ऐसी तो जगत्की स्थिति है। फिर अनेक विकल्प चिंताएँ मचाकर क्यों अपने आपको बरबाद किया जा रहा है? फिकरके मारे क्यों धुने जा रहे हैं? जो होना होगा वह होगा। काहेकी फिकर है? अरे यह पोजीशनन तो साथ जायेगी नहीं। फिकर करके क्यों भीतरमें शोक बसाया जा रहा है? उससे जो पाप बँधेगा वह साथ जायेगा। फिकर करनेसे कोई सिद्धि भी होती है क्या? अपनी कलाएँ खेलते हैं और उससे समझते है कि मैंने धन जोड़ा।

सम्पदाकी पुण्यानुसारिता व शान्तिकी ज्ञानानुसारिता भैया! क्या धनका समागम कलावों पर निर्भर है? कला भी एक निमित्त बन जाती है जब उदय अनुकूल होता है। उदय अनुकूल न हो तो कलाएँ क्या करेंगी? चिंताके लायक बात यहां कुछ भी नहीं हैं, स्वयमेंव ही सुयोग ऐसा होता है कि जो होना होता है, सुगमतासे होता है। नहीं होना होता है तो नहीं होता है। जो भी परिणमन होता हो, हो। इतना साहस हो तब समझिये कि हमने जैनशासनकी यथार्थभक्तिकी है। जैनशासनकी भक्ति करनेका अर्थ है अपनेको शान्त बना लेना। यदि शान्ति न पायें तो समझना चाहिए कि हमने जैनधर्मकी भक्ति नहीं की। बड़े की भक्ति करते हैं तब कुछ मिलता है। सर्वोत्कृष्ट वस्तुरूप का

यथार्थ प्रतिपादन करने वाले जैनशासनकी हमारे चित्तमें भक्ति जगे और हम दुःखी रहें, यह हो नहीं सकता। दुःखका मिटना धनके संचय पर निर्भर नहीं है, वह ज्ञानपर निर्भर है। जहां सम्यग्ज्ञानका प्रकाश हो वहां दुःख नहीं रह सकता। कैसी भी स्थिति हो, पर दुःख ज्ञानसे मिटेगा। धन हो अथवा न हो अथवा धनका त्याग किया हो, सर्वस्थितियोंमें सुख ज्ञानसे ही प्राप्त होगा। न होते हुए भी धनके विकल्पका त्याग करने पर होने वाले सहज ज्ञानसे सुख होगा। इस लिए शान्ति चाहना हो तो ज्ञानके लिए उद्यम करना चाहिए।

मरणकालमें मरणसे बचानेकी अशक्यता हाय! मोहियोंको यह बड़ा कष्ट है कि जब आयु कर्मके पूर्ण होते ही काल आकर प्राप्त होता है तब उससे और बलवान् कौन है, जो इन जीवोंकी रक्षा कर सके? कोई इस जीवकी रक्षा नहीं कर सकता। सूर्य और चन्द्र ये दो दृश्यमान ज्योतिषी देवस्थानोंमें से प्रतापी माने गए हैं, और कोई तो सूर्यकी विशेषतासे पूजा करते हैं और कोई चन्द्रमाकी विशेषतासे पूजा करते हैं।

बहुत दिन गुप्त रहनेके बाद जब चन्द्रमाका पहिली बार दर्शन होता है, सुदी दोजके समय कितने ही लोग बड़ा उत्सव मनाते हैं, और कोई सूर्यका रोज रोज अर्ध उतार कर पूजा करते हैं। ऐसे लोकजन पूजित सूर्य चन्द्र देवताका लोकरूढ़ीसे राहु द्वारा ग्रस होता है तब यहांके लोकजन विषाददि प्रदर्शित तो कर लेते हैं, पर इस ग्रहणको बचाने वाला भी कोई हुआ क्या? जब इतना भी कोई नहीं कर सकता, तब मरणसे बचा सकने वाली बात तो करो ही मत। कोई भी प्राणी किसीको मरणसे बचा नहीं सकता।

सूर्य चन्द्रकी पूजाका सम्बन्ध सूर्य चन्द्रकी पूजा प्रथा भी जैनशासन सम्बंधित थी, किन्तु रूप बदल गया। ये जो सूर्य चन्द्रके विमान हैं, ये इन्द्र और प्रतीन्द्रके विमान हैं। इनमें इन्द्र है चन्द्र और प्रतीन्द्र है सूर्य। सूर्य जरा अधिक प्रचण्ड किरणों वाला है इसलिए प्रसिद्धि इसकी हो गई, पर इन दोनोंमें इन्द्र है चन्द्रमा और प्रतीन्द्र है सूर्य। इन विमानोंमें अकृत्रिम जिनेन्द्र देवकी मूर्ति है। सिद्धान्त बताते हैं, ऋषियों ने बताया है कि भरत चक्रवर्ती का जब समय था तो वे अपने महलपर खड़े होकर प्रातःकाल सूर्यविमानमें रहने वाले जिनेन्द्रकी मूर्तिका दर्शन कर लेते थे। एक तो दृष्टि तीक्ष्ण थी, दूसरे वह महल बहुत ऊँचा था, और वह मूर्ति को देखकर अर्ध उतारते थे। उनकी देखा देखी अनेक लोगोंने अर्ध उतारना शुरू किया। तब आचार्योंने यह कहा कि तुम लोग ठीक कह रहे हो, पर कुछ काल बाद लोग इसका मर्म तो जानेंगे नहीं कि यहाँ वीतराग सर्वज्ञ देव की मूर्ति विराजमान है और लोग यही समझेंगे कि यह जो चमकीला है यही भगवान् हैं और इसे ही भगवान् मानकर पूजेंगे। यह जो पूरा दीख रहा है कान्तिमान् बिम्ब, यह एक पृथ्वीकायिक विमान है। सूर्य और चन्द्रकी प्रसिद्धि है इस लोकमें।

भव भवमें कालका आक्रमण जैसे जब इनके ग्रहण का मौका आता है तो केतु सूर्यको ग्रस लेता है। इसी तरह चन्द्रके ग्रहणके समयपर यह राहु जीवरूपी चन्द्रको ग्रस ले, इसमें क्या आश्चर्य

है? चन्द्र और सूर्य सहस्र किरणों वाले हैं और राहु काला व छोटा होता है, जिसका स्थान किसीको विदित नहीं है, लेकिन वह भी समय पाकर चन्द्र सूर्य पर आक्रमण कर देता है। यों ही यह आत्मा अनन्त किरणों वाला है, अनन्तज्ञान दर्शन सुख शक्ति वाला है, किन्तु इसे यह आयुक्षय, यह मरणकाल इसे बेहताश कर देता है।

विक्र प्रत्येक जीवको यह देह त्यागना ही पड़ेगा। मनुष्य जैसा दुर्लभ देह मिला है तो छूटेगा तो जरूर, किन्तु इसके छूटनेसे पहिले कोई ऐसी विधि बना लो कि संसारके संकटोसे ही छूटनेका उपाय बन जाय। तो यह है बुद्धिमानी अन्यथा यहां रुलते रुलते तो अनन्त काल व्यतीत हो गया। ऐसा ही अब होगा। अपने आत्माको पहिचानों, जानो और उसही रूप अपने आचरण को बनावो, इन विकारराक्षसोंसे छूटकारा पावो और निर्विकार स्थितिमें अपनी प्रसन्नता बढ़ावो ऐसी निर्मलता जोगेगी तो संसारके संकट छूट सकेंगे और निर्मलता न रही, विकारों को ही उपयोगमें स्थान दिया, स्वच्छन्द होकर रागद्वेष मोहकी वृद्धि ही बनाते जायें तो उसका फल संसारमें जन्म मरण करके भटकना ही है। इससे धर्मके लिए जितना जल्दी हो सके लगना चाहिए। अपनेको यों विचारों कि कल भी यह शरीर रहेगा अथवा न रहेगा ऐसा जान कर धर्मपालनके लिए हमारा अधिकसे अधिक उद्यम हो। धर्मपालन भी इस भावमें है कि हम अपनेको चैतन्यस्वभावमात्र जानकर, सबसे भिन्न जानकर एक इस ज्ञानज्योतिमात्र अनुभव करनेमें लगाएँ, इससे ही हम आपकी परलोककी गति सही हो सकती है।

**उत्पाद्य मोहमदविभ्रममेव विश्वं,
वेधाः स्वयं गतघृणाष्टगवद्यथेष्टम्।
संसारभीकरमहागहनान्तराले,
हन्ता निवारयितुमत्र हि कः समर्थः॥७७॥**

विधि द्वारा लोकभ्रमण यह पूर्व उपार्जित कर्म निर्दयी होकर मोह मदको उपजा कर इस जीवलोकको विह्वल कर रहा है। जब आयुके क्षयका समय आता है तो उसे रोकनेमें कोई समर्थ नहीं है। लोकमें ऐसी प्रसिद्धि है कि इस जीवको काल अथवा यम मार डालता है। ऐसा मार डालने वाला काल और यम अलग कुछ नहीं है। यहां ऐसी व्यवस्था है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे परिणमता रहता है। इस जीवके कर्मका सम्बन्ध है। जब तक जिस आयु कर्मका उदय रहता है, तब तक जीव उस शरीरमें है और जब आयु कर्म नहीं रहता तब जीव शरीर को छोड़ देता है और अगली आयुके अनुसार अगला शरीर पाता है।

भेदविज्ञान और अद्वैत अभेदका परिचय यहां इस सम्बन्धमें जानने योग्य मूल बात यह है कि जगत्में जितने भी पदार्थ हैं, वे सब पदार्थ ६ जातिके हैं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। जिन्होंने दर्शनशास्त्र पढ़ा है उन्हें इसका भली भांति विश्वास हो सकता है कि जैन धर्ममें वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन षडद्रव्योंके माध्यमसे कितना यथार्थ किया गया है। भेदमें जाति उस प्रकार

बनायी जाती है कि उसमें उस लक्षण वाले कोई पदार्थ छूटे नहीं, और कोई विपरीत लक्षण वाले पदार्थ उस जातिमें आए नहीं। जीव उसे कहते हैं जिसमें ज्ञान और दर्शन हो, जानने देखनेकी जिसमें शक्ति हो। बालकों को समझानेके लिए यों कहा गया है कि जो खाता हो, पीता हो, उठता हो, बैठता हो वह सब जीव हैं। समझाते हैं, पर जीवका सही स्वरूप यह नहीं है, यह तो बच्चोंको समझानेके लिए व्यवहार दृष्टिसे कहा जाता है। जीवका यथार्थस्वरूप है जिसमें ज्ञानशक्ति और दर्शन शक्ति हो। जानने देखने का जिसमें स्वभाव पड़ा हुआ है, उसे जीव कहते हैं। जो खाता, पीता, चलता, उठता, बैठता, मरता, धरता है वह सब कर्मजन्य दशा है, जीवका स्वरूप नहीं है। जीवका तो वह स्वरूप है कि जीव कर्म सहित रहे तब भी वह स्वरूप बसा रहे, कर्मसे रहित हो जाय तब भी वह स्वरूप बसा रहे। ऐसा स्वरूप है ज्ञान और दर्शनके स्वभावका। अब भी हममें और आपमें जानने देखनेका स्वभाव है। रिश्तेदार वैभव परिजन ये तो सब कल्पनाएँ हैं, मनकी स्वच्छन्दताएँ हैं, इनका अपने साथ वस्तुतः कोई सम्बन्ध नहीं है। परमार्थस्वरूप तो ज्ञान दर्शनका स्वभाव है। जिसमें जानने देखने की शक्ति हो, उसे जीव कहते हैं। अब इस ही शुद्धस्वरूपमें जीव को जो परख ले, उसीके मायने हैं सम्यग्दृष्टि।

अन्तदर्शनकी कार्यकारिता सम्यक्त्व का अचिन्त्य प्रभाव है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थ मोक्षमार्गमें लगा हुआ है। उसका मनुष्य जन्म पाना सार्थक है। जिसने सम्यक्त्व न पाया उसका मनुष्य जन्म पाना, न पाना बराबर है। सम्यक्त्वसे प्रीति करना चाहिए। इस सम्यक्त्वकी बाधक है मिथ्यात्वकी क्रिया। कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुकी मान्यता करना, परमें आत्मत्व की वासना करना यही सम्यक्त्वको ना करनेकी क्रिया है। जिन जीवोंके मोह लगा है, विषयोंसे प्रीति जगी है, वे ही पुरुष कुदेव आदिकसे प्रीति बढ़ाया करते हैं। जो रागी द्वेषी हों किन्तु देवके रूपमें माने जाते हों, वे सब कुदेव हैं। बच्चे बीमार हो गए, अथवा किसी प्रकारका संकट हो गया या संतान नहीं हो रही तो पुरुष अथवा महिलाएँ झट कुदेवकी भी मान्यताएँ करने लगती हैं, किन्तु उससे होता कुछ नहीं है। सिर्फ पापका बंध होता है। जो लोग नास्तिक हैं, न देवको मानें, न कुदेवको मानें उनके क्या धन नहीं बढ़ता? आज की दिखती हुई दुनियामें तो उल्टा यह नजर आ रहा है कि जो न देव मानें, न कुदेव मानें, वे करोड़पति बने बैठे हैं। यह सब उनके पूर्वकृत कर्मका फल है। इन बाहिरी बातोंमें जरा भी न फंसकर आत्मशान्ति का यत्न करें।

शान्तिका आधार शुद्ध जीवस्वरूपका दर्शन भैया! अपनेको चाहिए शान्ति। और शान्ति तब मिल सकती है जब अपनेको अकेला तका जाये। मैं सबसे विविक्त केवल ज्ञानस्वरूपमात्र अकेला ही हूँ। जितना अपनेको अकेला सोचते जायेंगे उतना ही अपनेमें धर्मकी किरण प्रकट होती जायेगी और जितना अपनेको परिजनसे, वैभवसे भरा हुआ मानते रहेंगे उतना ही आकुलतामें बढ़ते जायेंगे। शान्ति चाहिए तो शान्त निज अन्तस्तत्वके दर्शन करें। हां तो जीवका स्वरूप हुआ केवल जानन देखन का स्वभाव। जो ये दीख रहे हैं मनुष्य, पशु, पक्षी ये बस मायारूप हैं। जीवका सम्बन्ध तो

यहां है, पर यह स्वयं साक्षात् जीवस्वरूप नहीं है। इसमें जीवका स्वरूप भी बसा है और कर्म शरीरके स्कंध इनका भी सम्बन्ध है। यह शुद्ध जीव स्वरूप नहीं है।

द्रव्य और पर्यायकी दृष्टिमें आत्मपरिचय हां तो अब देखिये एक तो जीव जातिका पदार्थ है, जिसमें सब जीव आ गए। जो दिखते हैं वे सभी जीव हैं, अरहंत भगवान् भी जीव हैं, हम आप भी, पशु, पक्षी, कीड़े मकौड़े और निगोद जीव भी ये सब एक ही जातिके जीव हैं। फर्क क्या हो गया? हम आप तो दुःखी हैं और प्रभु अनन्त आनन्दमय हैं। उन की हम रोज पूजा करते हैं और हम पूजने वाले बने हैं, यह भेद किस बातका हो गया है? यह भेद इस बातका है कि हम आप रागी-द्वेषी, मोही बने हुए हैं और प्रभुमें राग, द्वेष, मोहादिका अभाव है। जहां राग द्वेष नहीं है वहां शान्ति है और जहां राग द्वेष हैं वहां अशान्ति है। ये राग द्वेषादि क्यों हो गये? इनके होनेका कारण है पुद्गलका सम्बन्ध। मूलमें तो जो न दिखने वाले हैं ऐसे पुद्गलोंका सम्बन्ध है, जिन्हें कर्म कहते हैं और उन कर्म सम्बन्धोंके कारणसे फिर ऐसे पुद्गलों का सम्बन्ध होता है जो दृश्यमान् हो सकता हैं। इस भेदके होने पर भी स्वरूप सब जीवोंका समान है।

वर्तमान व्यञ्जनपर्याय और परमार्थता यह जो कुछ व्यवहारमें जीव है यह तीन चीजोंका पिंड है शरीर, कर्म और जीव। केवल जीव नहीं है। सिद्ध इसीको कहते हैं कि शरीर और कर्म नहीं रहे, केवल जीव ही जीव रह गया उसका नाम सिद्ध है। सिद्धकी हम उपासना रोज करते हैं। उसका अर्थ यह है कि हम ऐसी भावना भायें कि हे प्रभु! जैसे आप शरीर और कर्मसे रहित हैं, ऐसे ही हम भी होना चाहते हैं। स्वाध्याय में, सामायिकमें इतना भाव जरूर आना चाहिए कि हे प्रभु! मैं इस शरीरसे भी न्यारा केवल अपने स्वरूपमात्र रहना चाहता हूं। न रहे यह शरीर तो एक भी क्लेश न रहेंगे। रिश्तेदारीकी मान्यता इस शरीरकी दृष्टिसे है। वैभव सम्पदासे बड़प्पन माननेकी कल्पना इस शरीरके सम्बन्धसे है। भूख, प्यास आदिक शारीरिक कथाएँ इस शरीरके सम्बन्धसे है। किसी बातमें सम्मान अपमान मान लेना, इसका भी क्षोभ शरीरके सम्बन्धसे है। हे प्रभो! कब मेरा भी वह समय आये कि मैं शरीरसे सदाके लिए छुटकारा पा जाऊँ। इतनी बात यदि आप विचार लें तो आपका दर्शन, जाप, सामायिक आदि करना सब सफल है। जरा आशय तो करो ऐसी भावना का। ऐसा मानते जावो तो कभी निजकी दृष्टि भी जगेगी।

प्रयोजनीभूत स्वपर मूल पदार्थ जगत्में जो ६ जातियोंके पदार्थ कहे जा रहे हैं, इनमें जीवजातिमें तो हम आप सब हैं और पुद्गल जाति में वे सब पदार्थ हैं जिनमें रूप, रस, गंध और स्पर्श पाया जाता है। अपने साथ जो कर्म लगे हुए हैं उनमें भी रूप, रस, गंध और स्पर्श है, पर वे इतने सूक्ष्म हैं कि इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं होते। पुद्गल उसे कहते हैं जिस में रूप आदिक पाएँ और लोग भी इस पुद्गलतत्वको मानते हैं, पर वे भौतिक शब्द कहकर मानते हैं। भौतिकमें वह व्यापक अर्थ नहीं है जो पुद्गल शब्दका है। पुद्गलका अर्थ है जो मिल करके पूर जाय, बड़ा धन जाय, और जो गल करके, बिछुड़ करके अलग हो जाय।

जीव व पुद्गलोंकी अनन्तानन्तता जीव अनन्त हैं, अक्षयानन्त हैं, जिनका कभी विनाश न होगा, अभाव नहीं हो सकता। कितने ही जीव मोक्ष जा रहे हैं, अनन्त जीव मोक्ष पहुंच गए हैं, फिर भी उनसे अनन्तगुणे जीव संसारमें हैं, उससे भी अनन्तगुणे, जीव मोक्ष चले जायेंगे फिर भी संसारमें उनसे अनन्तगुणे जीव रह जायेंगे। पुद्गल जीवोंसे भी अनन्तगुणे हैं। अभी देख लो, एक आप जीव हैं, हम जीव हैं, एक जीवके साथ ही कितने पुद्गल लदे हुए हैं। अनन्त परमाणुवोंका पुंज तो यह देह है, इससे भी अनन्तगुणे परमाणुवोंका पुंज भीतरमें तैजस है, उससे भी अनन्तगुणे परमाणुवोंका पुंज कार्माण देह है, कर्मसमूह है, यों एक जीवके साथ अनन्त पुद्गल लगे हैं। फिर संसारमें अनन्त जीव हैं, तब कितने पुद्गल हुए, फिर बाहर पड़े हुए ये पदार्थ भी कितने ढेर हैं, पुद्गल भी अनन्तानन्त है।

धर्म, अधर्म, आकाश और काल धर्मद्रव्य-गमन करनेको उद्यत जीव पुद्गलोंके गमनमें जो सहायक बने, वह धर्मद्रव्य है। धर्मद्रव्य न हो तो हम आप चल नहीं सकते। अधर्म द्रव्य जो जीव पुद्गल को, चलते हुए को ठहरानेमें सहायक होता है उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं। आकाशद्रव्य तो असीम है, लोकसे बाहर भी वही आकाश है। कालद्रव्य जिसकी चर्चा चल रही है, यह लोकाकाशके एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य बैठा हुआ है, वह सदा अवस्थित है, उसका परिणमन समय परिणमनके रूपमें होता रहता है। जिसका सामूहिक रूप सेकेण्ड, मिनट, घड़ी घंटा आदि महीनों लगाते जायें और आगे बढ़कर वर्षों और सागरोंकी मान्यता बनाई जाती है।

प्राप्त सुअवसरमें सावधानी यह कालद्रव्य तो वस्तुके परिणमन का सामान्य कारण हैं, परन्तु आयुर्कर्म, जिसने देहमें जीवके बांध रक्खा है। वह आयुर्कर्म जब क्षयको प्राप्त होता है तब इसका मरण हो जाता है। यह अवस्था सबको आने की है। हमारा कर्तव्य है कि जब तक बुढ़ापा न शिथिल कर दे, रोग नहीं आये, मरण नहीं आये तब तक हम अपनी दृष्टि को निर्मल बनाकर धर्मका पालन कर लें। धर्मपालनके लिए ही जीवन है। विषयोंके लिये या धन सम्पदाके संचयके लिए हमारा जीवन नहीं है।

विनश्वरताके चित्रणपर श्री ऋषभदेवका वैराग्य एक समय ऋषभदेवजी की भरी सभामें बड़े राजावोंकी गोष्ठीमें कुछ कथानक चर्चाएँ आदि करके कुछ मौज लिया जा रहा था। वहां उनका मन रिझानेके लिए मनुष्य क्या, देव-देवियां भी अपनी कलायें दिखा रहे थे। देवांगनाएँ कुछ अपना संगीत प्रदर्शन कर रही थीं। एक नीलाजना नामकी देवी भी वहां नृत्य कर रही थी। तो उसकी नृत्यकला का कौन वर्णन करे? छिनमें पास छिनमें दूर। शरीरकी अनेक मोड़ों सहित बड़ी-बड़ी कलाएं दिखाये, पर उस ही बीचमें नीलाजनाकी मृत्यु हो जाती है। इन्द्रने तुरन्त ही दूसरी देवीको आज्ञा कर दी कि इस ही देवी जैसा भेष बनाकर, इस ही जैसी कलासे नृत्य दिखाकर ऋषभदेव का मन प्रसन्न करो। इस कामको करनेमें उसे कुछ भी समय न लगा। जनताने यह नहीं जान पाया कि वह देवी गुजर गयी है। अब यह दूसरी देवी नृत्य दिखा रही है, लेकिन ऋषभदेव अवधिज्ञानी थे, उन्होंने समस्त

हाल समझ लिया। वे चिन्तन करने लगे, अहो! कैसी अध्रुवता है। यह अभी नृत्य करते करते ही विलीन हो गयी, इसका मरण हो गया, आकिञ्चन्यकी भावना भाने लगे। अपने समस्त समागमोंसे उन्हें वैराग्य हो गया, उस समय ऋषभदेव विरक्त हो गए।

उद्धारार्थ आत्मोद्यमकी आवश्यकता भैया! सभी लोग जानते हैं कि एक दिन इस संसारसे हमें भी मरण करके जाना होगा, किन्तु ऐसा साहस नहीं बनाया जाता कि रोज-रोज ५, 10 मिनट तो ऐसा उद्यम करें कि समस्त परपदार्थोंको उनके ही भाग्य पर छोड़कर निर्विकल्प होकर देहसे भी भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप अपने आत्माको ध्यान करें। पहिले भी जो सद्गृहस्थ हुए हैं उन्होंने घरमें रहते हुए भी मोह न करके अपना धर्म कर्तव्य निभाया था।

धनञ्जय सेठका अपना कर्तव्यपालन धनञ्जय सेठकी बात सुनी होगी। वे बड़े कविराज हुए हैं, आशुकवि हुए हैं। संस्कृत काव्योंके बनानेमें वे अत्यन्त चतुर थे। लोग बैठकर काव्य बनाया करते हैं। गलती होती है तो उनका सुधार करते हैं, पर वे धनञ्जय सेठ तुरन्त सही-सही कविता बनाते जाते थे। एक बार धनञ्जय सेठ मंदिरमें पूजा कर रहे थे। उस ही बीच धनञ्जयके इकलौते पुत्रको सांपने डस लिया। सेठानी को बड़ी विह्वलता हुई। उसके चेहरे पर उदासी छा गयी। हाय! मेरे प्राणोंका आधार यह पुत्र गुजर जायेगा तो कैसे मेरा जीवन व्यतीत होगा? सो उस अधमरे बच्चेको लेकर वह मंदिरमें गयी और सेठसे कहा कि पुत्रको सांपने डस लिया है, मरे चाहे बचे, इसे तुम जानों। ऐसे ही दो चार बार कहा। पर धनञ्जय सेठने अपना पूजन न छोड़ सका। वह तो भगवान्की भक्तिमें ही मस्त रहा। उस ही समयमें उस धनञ्जय सेठने एक स्तवन बनाया, जो स्तवन आज विषापहार नामका है जिस समय उन्होंने भक्तिमें यह कहा

विषापहारं मणिमौषधानि मंत्रं समुद्दिश्य रसायनं च।

श्राम्यन्त्यहो न त्वभिति स्मरन्ति पर्यायनामानि तवैव तानि॥

हे प्रभु! यह लोक मृत्युसे बचनेके लिए विषापहार मणि की खोजमें भटकता है। कहीं मंत्र तंत्र औषधि, रसायन खोजता है, पर उन्हें यह नहीं मालूम कि यह सब तो हम हैं। हे प्रभु! जो तुम्हारा स्मरण करता है उसके सारे संकट दूर होते हैं। जिस समय भक्तिमें उन्होंने यह कहा उसी समय सेठके पुत्रका विष दूर हो गया। देखिये यह सब प्रभुकी अटल भक्तिका प्रसाद है।

देव शास्त्र गुरुकी दृढ़श्रद्धाकी आवश्यकता भैया! हमारी देव, शास्त्र, गुरुके प्रति भक्ति अटल हो। हम कभी कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु के श्रद्धालु न बनें, उससे कभी हमारी कोई सिद्धि न होगी। कोई जरासी घबराहट हो जाय तो अनेक देवी देवताओंकी मान्यतामें न पड़ने पायें ये सब बातें तो प्रभुके दर्शनसे हमें विमुख करने वाली हैं। जिन्हें अपना हित चाहिए है उन्हें चाहिए कि कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुके श्रद्धालु न बनें। यह अविचल श्रद्धा होना चाहिए कि जो निर्ग्रन्थ हों, निष्परिग्रही हों, ज्ञान, ध्यान, तपस्यासे ही जिनका प्रयोजन रहता हो वे ही वास्तवमें साधु हैं, गुरु हैं। जो अनेक आकुलतावोंमें, चिन्तावोंमें रहते हैं, जो अपने घरसे प्रत्यक्ष या परोक्ष कुछ सम्बन्ध रखते हों वे साधु

नहीं हैं। वे तो गृहस्थों जैसे ही हैं। जो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय की साधना करें, ऐसे जो देव हैं, शास्त्र हैं, गुरु हैं उनके ही प्रति श्रद्धा रहनी चाहिए। इन लौकिक कार्योंमें भी देव, शास्त्र, गुरुके माने बिना काम चलता ही नहीं है। जैसे संगीत सीखना हो तो संगीत सीखने वाले के चित्तमें वह संगीतज्ञ बसा हुआ रहता है जो लोकमें प्रसिद्ध हो। हमको तो यों बनना है। हालांकि उससे जिन्दगी भर भेट होनेकी कोई आशा नहीं है, पर उसका ख्याल है और अपने गांवमें कोई उस्ताद मिलता है उसको अपना गुरु मानता है, और सरगम की जो पुस्तकें हैं, भजनकी जो पुस्तकें हैं, जो भी संगीतके सहायक शास्त्र हैं, उनके प्रति उसे श्रद्धा हो जाती है। तो जब इन लौकिक कार्योंमें भी देव, शास्त्र, गुरुकी जैसी श्रद्धा रखनी पड़ती है तो फिर जो मुक्त हुए हैं ऐसे देवकी श्रद्धा, मुक्तिका जहां उपदेश है, ऐसे शास्त्रोंकी श्रद्धा और जो मुक्ति प्राप्त करनेकी ओर उन्मुख हैं, ऐसे साधुवोंके प्रति श्रद्धा क्यों न करनी पड़ेगी? इन सच्चे देव, शास्त्र, गुरुवोंके प्रति यथार्थ श्रद्धा होनी चाहिये।

ज्ञानीकी भावना देव, शास्त्र, गुरुवोंके प्रति श्रद्धा करके ज्ञानी किसी सांसारिक कार्यसिद्धिकी चाह नहीं करता है। धनंजय सेठने ही अंतमें इस स्तवनमें कहा 'इतिस्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वर न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि। छाया तरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः॥' हे प्रभो! मैं तुम्हारी स्तुति करके तुमसे कुछ मांगता नहीं हूँ। तुम तो वीतराग सर्वज्ञ हो, अपने ही आनन्दरसमें लीन रहा करते हो। हम तुमसे क्या मांगें? एक बात और भी है कि छाया वाले पेड़के नीचे बैठकर उस पेड़से छाया क्या मांगना? हे प्रभो! मैं आपकी भक्तिरूपी छायामें बैठा हूँ तो मैं क्यों अपनी नियत खराब करूँ, क्यों व्यर्थके विकल्प करके संताप उत्पन्न करूँ? मैं तो आपकी इस शान्तभक्ति की ही छायामें बैठकर भक्तिमें लीन हो रहा हूँ, शान्तिकी शीतल छाया स्वयं ही प्राप्त हो रही है। और फिर भी मैं आपसे कुछ मांगूँ तो यह व्यामोह मात्र है। जो प्रभुकी भक्तिरसमें डूब जाता हैउसको कभी कोई प्रकारका संकट नहीं रहता। यों अपना जन्म सफल करनेके लिए देव, शास्त्र, गुरुका यथार्थ श्रद्धान करें, और यह भावना रक्खें कि मुझे भी प्रभुकी तरह शरीर और कर्मोंसे रहित होना है। अकेले रहेंगे तो इससे मुझे शान्ति होगी इस अपने विश्वासको दृढ़ बनाएँ।

मोहियोंका औपाधिक परिणमनमें राग इस जगत्में जो कुछ भी स्वभावविरुद्ध काम हो रहे हैं वे सब निमित्तनैमित्तिक योगसे हो रहे हैं। आना, जाना, लड़ाई, लड़ना, राग करना, रेल, मोटर चलाना यह जितनी भी चहल पहल दीख रही है यह स्वभावविरुद्ध है, ये स्वभावके काम नहीं हैं। स्वाभाविक काम वह कहलाता है कि दूसरे पदार्थके निमित्त बिना स्वयं अपने आप हो। यह चहलपहल, यह भाग दौड़, ये नाना क्रियाएँ ये सब अकेले पदार्थके वशकी बातें नहीं हैं। जैसे दूसरे पेंच पुर्जाका सम्बन्ध पाकर दूसरा पेंच पुर्जा सरकता हो तो वह स्वाभाविक नहीं है, नैमित्तिक है। जिसे कहिए एकसीडेन्टल याने स्वयं उस पदार्थमें अपने आप न होना। दूसरे की प्रेरणा मिले तब हो। ऐसे ही आत्मामें जितनी भी हरकतें होती हैं इच्छा हुई, क्रोध हुआ, घमंड हुआ, माया, लोभ

हुआ, मोह हुआ, प्रीति जगी, द्वेष हुआ, किसी को इष्ट माना, किसीको अनिष्ट माना, ये सब हरकतें तरंग निमित्त नैमित्तिक योगसे होती हैं। आत्माके स्वभावकी ये क्रियाएँ नहीं हैं। आत्माका स्वभाव तो केवल ज्ञाताद्रष्टा रहनेका है। जब किसी की दृष्टि इस स्वभावकी ओर नहीं रहती है तो इस मायामय सारे जालको परमार्थ मानकर और इससे अपना सुधार बिगाड़ समझकर इसके प्रति या तो राग करते हैं अथवा द्वेष करते हैं।

गृहस्थोंके यथावसर निर्विकल्पताका उद्यम भैया! गृहस्थीको सब कुछ करना पड़ता है। पर सब कुछ करके भी अपने २४ घंटेके समयमें १०-१५ मिनट ही समय ऐसा सुरक्षित नियत रखें कि जिस टाइममें साहस करके अपने चित्तको ऐसा बनाएँ कि मुझे किसी वस्तुसे कुछ प्रयोजन नहीं, समस्त पदार्थ भिन्न हैं, उन सबका उपयोग छोड़कर एक विश्राम से रहेंगे। सहज विश्रामकी धुन बनाएँ, ऐसा १५ मिनट भी समय लगाएँ तो उसका ऐश्वर्य, उसका बड़प्पन सब सार्थक हो जायेगा। दुनियावी कामोंमें खूब बढ़ गये और मायामय जनसमाज ने कुछ यश गा दिया, लौकिक उन्नति भी बहुत करली तो क्या हुआ, शान्ति तो न मिली। निन्दा सुनने में जैसे भीतरमें अशान्ति रहा करती है ऐसे ही प्रशंसा में भी अशान्ति ही है। वहां कल्याण काहेका? जैसे कोई पुरुष काम करते-करते थक जाय तो उस थकान को मिटानेके लिए आध पौन घंटा सब भारको त्यागकर ढीला ढाला शरीर करके पड़ जाता है, लेट जाता है, थकान दूर कर लेता है। यह विश्राम थकान दूर कर लेने और विश्राम कर लेनेका कारण बन जाता है। ऐसे ही विकल्प कर करके जब आत्मा थक जाता है तो इस थकानके कारण उसकी बुद्धि शान्तिका भी काम नहीं कर सकती। तब इन विकल्पोंकी थकान मिटानेके लिए १०-१५ मिनट भी तो ऐसा उद्यम करना चाहिए कि मैं कुछ विकल्प न रखूंगा।

विनाम अन्तस्तत्वकी प्रतीति परम विश्रामके लिए अपने बारेमें यह भी स्मरण न करना चाहिए कि मैं धनिक हूँ, बुद्धिमान् हूँ, वकील हूँ, अफसर हूँ, अमुक परिवार वाला हूँ, किसी भी प्रकारका हम अपने आपमें परका उपयोग या पर्याय बुद्धि नहीं करें। मैं तो निर्नाम हूँ, फिर और-और चीजें तो अपनेमें आयेंगी कहां? अपने आपको नाम वाला समझें तो इस समयके ऊपर फिर सारी पर्यायबुद्धि आने लगती है। कोई अन्दरसे अपने नामका ही सफाया करदे, उपयोग द्वारा दो तीन मिनट भी तो जहां नामका ही अपना सफाया हो गया, वहां नाम न रहने पर कोई संकट नहीं आ सकता। जहां नामकी बुद्धि करी कि मैं अमुक हूँ, वहां उस पर सारे जाल खड़े हो जाते हैं। तो किसी समय ऐसा अनुभव करें कि मैं नामरहित, देहरहित, आकाशवत् अमूर्त निर्लेप चैतन्यस्वभावी हूँ। कोई चीज किसी न किसी बौडी से बनी हुई है, कुछ तो उसका कलेवर है, किसी चीजसे बनी हुई है। वह तत्व हम आप सबके साथ है। यह आत्मा किसी चीजसे बना हुआ है? इसको जब हम समझते हैं, जानते हैं तो यहां सभी निर्णय होता है कि केवल जानन-जाननके तत्वसे ही यह आत्मा बना हुआ है। इसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि नहीं हैं, केवल जानन तत्वसे ही बना हुआ हूँ यह मैं। उस जाननका नाम क्या?

सम्यक्त्वके बिना जीवनकी रिक्तता जाननका जन्म नहीं, मरण नहीं। जाननमें तो केवल जाननस्वरूप ही है। ऐसे केवल प्रतिभास प्रकाशमात्र अपने आपकी प्रतीति कर सकें तो सारा बोझ इसका दूर हो जाता है। मोहसे जो विभ्रम उत्पन्न होता है, यह बहुत बड़ा बोझ है इस जीव पर। यह अपनेको निर्भार अनुभव नहीं कर सकता, चाहे मन चाहा सब कुछ अनुकूल हो, पर वहां भी भार बना हुआ है, और बिना चाहे प्रतिकूल विरुद्ध बात भी घट रही हो तो वहां भी बोझ बना हुआ है। दोनों प्रकार के बोझोंसे ज्ञानी पुरुष ही दूर हो सकता है। कोई पुरुष द्वेष ईर्ष्यामें ही अपना जीवन बिता दे, कोई पुरुष मौजमें ही अपना जीवन बिता दे तो अन्तमें फैसला दोनोंका एक ही रहा। उसने भी जीवन खोया, इसने भी जीवन खोया। किसीको कुटुम्ब अच्छा नहीं मिला, कलहकारी पुत्र स्त्री आदि हैं, आया भी कुटुम्बपालनके लायक नहीं है, और भी प्रतिकूल बातें हैं, अनेक प्रकारके द्वेष और चिंताएँ बनी रहती हैं, ऐसी चिन्ता और शोकमें अपने जीवनके क्षण व्यतीत कर देते हैं कोई पुरुष धनिक है, सम्पन्नता हैं, परिवार भी सुशील है, स्त्री भी आज्ञाकारिणी है, पुत्र भी होनहार है, सब कुछ ठीक है, सभी समागमोंमें मौज और राग मान कर अपना जीवन व्यतीत कर दिया तो जीवन खोनेकी दृष्टिसे तो दोनों ही एक निर्णय पर उतरे हुए हैं।

शान्त अन्तस्तत्वके परिचय बिना अशान्तिकी प्रेरणा इस ज्ञानानन्दस्वरूपमात्र आत्माकी सुध न हो तो सब कामोंमें अशान्ति ही बनी रहती है। कोई अशान्ति ऐसी होती है कि शान्तिकी मुद्रा धारण कराती है। व्यवहारमें ऊपरसे गम्भीरता जँचे, धीरता जँचे, बड़प्पन जँचे, पर इन सभी बातोंमें एक अशान्तिकी प्रेरणा पड़ी हुई है। कैसी विचित्र अशान्ति है राग और अज्ञानमें कि अन्दरमें अशान्ति और बाहरमें शान्तिका वातावरण बना रहता है। एक अशान्ति ऐसी होती है कि अशान्ति भी है और वातावरण भी अशान्तिका बना रहता है। जब तक 'मैं सबसे न्यारा नामरहित हूँ। खुद ही खुदका शरण हूँ' ऐसी अपने आपके स्वरूपके बारे में दृष्टि नहीं होती है तो उसे सर्वत्र आकुलता ही रहती है। ये पूर्व उपार्जित कर्म ठगकी नाई निर्दयी होकर मोहमद उपजाकर इस जीवको विह्वल कर रहे हैं। आनन्दका भी स्वरूप जुदा-जुदा परख लो। विषय सुख भोगकर, मन माफिक सब लौकिक कीर्ति पाकर जो सुखका अनुभव होता है उसे परख लो और सब जंजालोंसे अपना उपयोग हटाकर, देह तक की भी खबर न रखकर केवल ज्योतिमात्र हूँ ऐसे ज्ञानस्वरूपकी धुन रखकर जो परमविश्राम होगा, सहज भाव होगा उसके आनन्दकी परख कर लो, इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है।

आध्यात्मिक लाभ ज्ञानानुभवके यत्नको चाहे आध्यात्मविज्ञान कहो, आध्यात्म निर्माण कहो। जैसे बाह्यपदार्थोंके संयोग जुड़ाकर हम विज्ञानमें आगे बढ़ते हैं और एक निर्माणको देखकर खुश होते हैं, ऐसे ही कभी अपने आपमें अपने आपकी परख करें। केवल अपने आपका जो स्वरूप है उस स्वरूपकी दृष्टि बनाएं तो वहां भी यह देखो कि क्या निर्माण होता है, कौन सी चीज तैयार होती है, क्या मिलता है? वहां जो शान्ति मिलेगी, उस शान्तिके समक्ष ये सब वैषयिक प्रसंगके आनन्द फीके हैं। मान लो बड़ी ऊंची विज्ञान कलासे बड़ा आविष्कार कर दिया, सब कुछ हो गया, लोकयश

भी मिला, नाम भी चला, पर इस जीवका तो न नाम ही है, न लोकयश ही है। यह तो एक चैतन्तत्व है। ऐसी कौनसी चीज ध्रुव मिले जो इसे शान्ति उत्पन्न कर दे? सब कुछ सभी को करना पड़ता है इसके मायने यह नहीं है कि जब तक साधु पद नहीं है तब तक कुछ भी धर्म नहीं कर सकते। अरे जिस पदमें जो कुछ किया जाने योग्य है उसकी वहां ही शोभा है। लोग बड़े-बड़े करामाती काम करके भी अपने २४ घंटोंमें १०, १५ मिनट विशुद्ध धर्मध्यानके लिए कुछ उद्यम करें तो सारी कमियोंको यह दूर कर देगा। लोकके सब कुछ काम किए जाने पर भी इस एक काम के बिना सब कुछ काम बेकार हो जाते हैं, वह एक काम कर लिया जाये तो सब कुछ सार्थक हो जायेगा।

यथार्थ ज्ञानमें व्याकुलताका अभाव भैया! हममें मोहभाव न जगे इसका बड़ा यत्न करना चाहिए। अन्यथा मोह भावनाका फल अन्तमें बुरा ही होता है। जो मिला है उसका वियोग होगा कि नहीं, पहिले यही निर्णय कर लो। स्त्री है, पुत्र है, घर है, वैभव है जो कुछ भी मिला है इसका वियोग नियम से होगा। इस मिले हुए समयमें यदि मोह रहेगा तो वियोगके समयमें क्या हालत होगी? उन्नति हो जायेगी क्या? इससे मिले हुए समयमें भी यदि सम्यग्ज्ञान बना रहा तो उन्मत्तता न आ सकेगी। जब तक वस्तु है निकट तब तक वह है। ऐसा ध्यान बनायें कि ये तो कभी बिछुड़ेंगे। सही जानकारी होने पर जब कभी बिछुड़ेंगी वह वस्तु तो यह जानेगे कि यह तो मैं पहिले से ही जान रहा था कि यह चीज बिछुड़ जायेगी। यदि किसी चीजसे राग है, मोह है तो उसके वियोगके समयमें बड़ा धक्का लगेगा। और फिर बात क्या करना है? जो चीज जैसी है वैसी समझना है यही धर्मका पालन है। धर्मपालनके लिए हमें कोई कष्ट नहीं उठाना है, भाई जो बात जैसी है, जो चीज जिस स्वरूपकी है उसका वैसा जानते रहे, बस समझो कि हम धर्म पाल रहे हैं।

वस्तुकी स्वतंत्रता प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूपको लिए हुए है, उसका परिणमन उसमें ही है, मेरा परिणमन मेरेमें ही है। यहां तक कि इस देह पर भी अधिकार नहीं है। यों तो हम अलग जीव हैं, आप अलग जीव हैं, फिर भी रागके निमित्तनैमित्तिकसे हम ऐसा मानते हैं कि हमारा आप पर अधिकार है, हमारा इस पर अधिकार है। हम जो बात कहेंगे ऐसा ये मान सकते हैं तो यों अन्दाजन और काल्पनिक अधिकारका भ्रम चलता रहता है, पर स्वरूपदृष्टिसे देखो तो मेरा एक अणु पर भी अणुमात्रभी अधिकार नहीं है। अस्तित्व सबका अपने आपमें है। मेरा परिणमन मेरे में ही है। जब दो चीजें निकट रहनी होंगी, रहेंगी। बिछुड़नी होंगी बिछुड़ेंगी। आयी तो क्या हुआ? गयी तो क्या हुआ? यह मैं तो अपने अस्तित्वसे रचा हुआ चैतन्यमय परिपूर्ण ज्योंका त्यों हूं। किसी परवस्तुके आ जानेसे मुझमें कोई नहीं बढ़ गया है, न किसी परवस्तुके चले जानेसे मेरेमें किसी गुणकी हानि हुई है। यह मैं अपने आपमें पूर्ण हूं, और सभी वस्तुयें अपने में परिपूर्ण हैं, ऐसी स्वतन्त्रता जानो।

गृहस्थके दो भावपुरुषार्थ भैया! जिसके मोह न रहे उसका जीवन कभी कष्टमें नहीं आ सकता। इन सब बातों और इन सब ज्ञानोंको कुछ स्थिर रखनेके लिए मूलमें इस गृहस्थपदवीमें दो बातें तो अभी से कर ही लेना चाहिए। एक तो यह कि वैभव सम्पदा, धन, द्रव्य उसकी जितनी

अटकी हों, हमारे पास आयें, हमें उसमें ही संतोष हो, क्योंकि हममें वह कला है कि हम सब स्थितियोंमें अपना गुजारा कर सकते हैं। हमें अटकी कुछ नहीं है। बाह्यवस्तुओंकी ओर से ऐसा संतोषमय जीवन मिलना प्रथम आवश्यक है। धनसे आत्माका बड़प्पन नहीं होता। बड़प्पन तो वहां है जहां शान्ति हो और शुद्ध विकास हो। इससे जो भी परिस्थिति बाह्यमें आये, हमें तो यही आवश्यकतासे अधिक है। दूसरी बात अपना जीवन धर्मपालनके लिए है यह निर्णय रखना, न कि धन संयमके लिए यह जीवन है। धन जोड़कर किनके लिए रखते हो? भ्रमसे मान लिया कि ये मेरे हैं, अरे जो आज गैर हैं, वे ही कहो पहिले भवमें आपके बड़े घनिष्ठ परिवारजन मित्रजन हों, और जो आज घरमें हैं कहो पूर्वभवमें शत्रुताका काम करते रहे हों। शत्रु अथवा मित्र दोनों ही पैदा होकर आ सकते हैं। एक कवि ने तो यह कहा है कि जो सुपूतको भी सुखी करनेके लिए निरन्तर श्रम करना पड़ता है। कुपूत और सुपूत दोनों ही दुःखी करने के कारण बनते हैं।

एकत्व भावनाकी सत्य नीति जो सामान्यतया गृहस्थीमें करना पड़े उसे करो, किन्तु व्यर्थकी चिन्ताएँ करनेसे क्या फायदा है? यह जीवन तो धर्मपालनके लिए है। अपना यह निर्णय रखना चाहिए कि जो कुछ भी मिला है उसीमें संतोष करो। हमारा जीवन तो सम्यग्ज्ञान बढ़ानेके लिए, आत्मदृष्टि करनेके लिए आत्मनिरत होनेका उपाय बनानेके लिए है। जो किसी भवमें नहीं पाया, ऐसा अपूर्व कार्य करनेके लिए मेरा जीवन है। ये दो नीतियां अपनाए रहें तो इससे ही शान्तिका मार्ग मिलेगा। ये पूर्व उपार्जित कर्म ठगी की नाई मोहमद अपनाकर, इसको विह्वल करके इस संसाररूपी भयानक वनमें इसे पीड़ित कर रहा है। इसी बीच आयु क्षय न जाने कब, किसके, कैसे हो जाता है, यों जन्म और मरणके दुःख भोगता रहता है। हमारा यह विश्वास हो कि इस लोकमें हम अकेले ही हैं। अकेले ही जिम्मेदार हैं, अकेले ही अपने आपके लिए शरण हैं। मेरा जो कुछ भी सर्वस्व है वह मुझमें अपने आप अकेलेमें है। मेरा दूसरा कहीं कुछ नहीं है, ऐसी एकत्व भावना करके हम कभी चंद मिनट इस आत्माकी सुध लेते रहा करें। यही उत्तम सत्संग और इस आत्माकी सुधके प्रतापसे हो हम अपने आप इस जीवनमें भी निराकुल हो सकते हैं।

कदा कथं कुतः कस्मिन्नित्यतर्कः स्वलोऽन्तकः।

प्राप्नोत्येव किमित्याध्वं यतध्वं श्रेयसे बुधाः॥७८॥

व्यर्थ और सार्थ यत्न यह काल याने मरणसमय आ जाता है, कैसे आ जाता, कहां से आता है? इसका कुछ तर्क नहीं चलता है। जब काल आ जाता है तब कितने भी यत्न करें, इसे विफल नहीं किया जा सकता। पर दुष्टकाल बिना विचारे आ जाता है, बिना प्रोग्रामके। इस कारण उस ओरसे तो चिन्ता छोड़ें। चिन्ता करें तो मरण आयेगा, न चिन्ता करें तो मरण आयेगा। चिन्ता करें आत्मध्यान करके अविनाशी पद पानेकी। जो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष हैं वे आत्मकल्याण के लिए यत्न किया करते हैं।

कालकष्टनिवारण देखिये भैया! आत्माका जो सहज सिद्ध ज्ञानस्वरूप है, उस प्रतिभासस्वरूपमें अपने उपयोगको मग्न कर दिया जाये तो स्वरूपमें मग्न रहता है उस समय इसे जीने अथवा मरनेका

विकल्प ही नहीं है। वहां तो केवल एक विशुद्ध चैतन्यस्वरूप ही अनुभव किया जा रहा है, सो ऐसे ही उपायसे कालका निवारण है। फिर इस आत्ममनताके प्रतापसे निकट भविष्यमें सर्वकर्मोंसे मुक्त हो जायेगा, अर्थात् जन्म भी न होगा। जब जन्म नहीं होगा तो मरणका निवारण अपने आप हो गया। इस कालसे बचनेका, इस मरणके दुःखसे हटनेका एक समाधि बिना कोई उपाय नहीं है। आत्मसमाधि तो संसारके समस्त संकटोंके दूर करनेका उपाय है। सुख, दुःख और आनन्द ये तीन अवस्थाएँ जीवके होती है। सुख नाम तो उसका है जहां इन्द्रिय प्रसन्न रहती हैं अर्थात् जो इन्द्रियोंको सुहावना लगे औद दुःख नाम उसका है जहां इन्द्रियों को बुरा महसूस हो। पर आनन्द नाम है शुद्ध निर्वाण दशाका। जहां सर्व ओरसे आत्माकी समृद्धि विकसित हो गयी, बस उसी का नाम आनन्द है। जहां लेश भी आकुलता नहीं है उसे आनन्द कहते हैं। ऐसे आनन्दरसमें जो निकटभय्य मग्न हो रहा हो उसे कहां काल सतायेगा? कदाचित् मग्न होने की स्थिति में मरण भी हो जाये तो उसके लिए मरण नहीं है। जो मरणसमयमें संक्लेश करे, दुःखी हो उसके लिए मरण है। जहां आनन्दमें बाधा आये वही स्थिति तो अनिष्ट है। आत्मसंमग्न निकटभय्य पुरुषको आनन्द ही आनन्द अनुभूत हो रहा है। वहां क्या अनिष्ट है? मरणका दुःख उसे नहीं है।

मृत्युंजय लोग मरणसे बचनेके लिए मृत्युंजय जाप किया या करते हैं। मृत्युंजय जापमें प्रभुका ही तो स्मरण है, ठीक है। प्रभु का स्मरण हो और आत्मतत्व का अनुभव हो तो वहां मृत्यु पर विजय हो ही जाती है। यह बात गलत नहीं है कि मृत्युंजय ध्यानसे मृत्युको जीत लिया जाता है, पर उसका कोई मर्म न जाने और खाली एक ऐसा जाप करा लेनेसे या कर लेने से मृत्यु पर विजय हो जाती है, ऐसा ही कोई माने तो यह बात गलत है। किसका नाम मृत्यु है? देहसे प्राणोंका वियोग हो जाना। यह तो सबके होता है। चाहे ज्ञानी हो, सम्यग्दृष्टि हो, पर जो मृत्यु को मृत्यु न माने, ऐसा अपना ध्यान बना ले, अथवा ऐसा आत्मविभोर हो जाये कि यह विकल्प ही न रहे कि मेरा मरण हो रहा है, मृत्यु पर विजय तो उसने की है।

मरणकालमें व्यामोहका कष्ट इस संसारमें प्रायः क्लेश मरणका नहीं होता है जीवोंको, किन्तु मोह ममता का क्लेश है। किसी को धन छूट जानेका क्लेश ही रहा है, इतनी कठिनाईसे यह धन कमाया और यह यों छूट रहा है। परिजनोंके छूटनेका क्लेश है। और मानों किसीके इस प्रकार का भी विकल्प न हो तो देहसे हम अलग हो रहे हैं, इस ही बातका क्लेश लोग मानते हैं। अरे देह न्यारा हो रहा है, होने दो। देह तो एक फंसाव है, बन्धन है, और फिर यह देह अब पुराना हो गया है, जीर्ण हो गया है। इस जीर्ण तनसे छुटकारा हो रहा है तो कौन सा नुकसान है और हम जीर्ण तनमें बने रहते हैं, कष्ट भोग रहे हैं तो कौन सा सुधार हो गया? कैसा ही कुछ हो, कैसी ही अवस्थामें रहना पड़े, समस्त परिस्थितियोंमें यदि आत्मस्वभावसे रुचि जगी है तो उसे आनन्द है और आत्मरुचि नहीं जगी है तो उसे क्लेश ही क्लेश है। मृत्युसे कोई नहीं बच सकता। कितने ही तन्त्र-मन्त्र औषधि के उपाय कर लिए जायें, पर मृत्युसे कोई बचा नहीं सकता। वैद्य लोग भी यह

कह देते हैं, काल नहीं है तो हम कुछ उपाय करके इसको बचा लेंगे। तो इस कालकी कुछ भी चिन्ता न करो। हां, यदि चिन्ता ही करना है, क्योंकि चिन्ता करनेकी आदत पड़ी है ना, तो एक आत्मकल्याण की चिन्ता करो।

एक समाधिमरण बुन्देलखण्डका एक कथानक है कि एक स्त्रीके बच्चा पैदा हुआ। बच्चा होनेके दो तीन दिनमें ही वह कठिन बीमार हो गई। और उस समय उसके बचनेका भी संदेह हो गया। मरणकाल था उस स्त्रीका। पति उसके पास पहुंचकर रोता है और कहता है कि तुम्हारे मरने के बाद तो हमें सब सूना ही हो जायेगा। ऐसी अनेक बातें की, तो वह स्त्री कहती है कि तुम क्यों चिन्ता करते हो? हमारे मरनेके बाद तुम्हारी दूसरी शादी हो जायेगी। चिन्ता करें तो ये दो तीन बच्चे करें, क्योंकि हमारे मरनेके बाद न जाने इनकी क्या हालत होगी? तो पुरुष कहता है कि हम आज नियम लेते हैं कि दूसरी शादी नहीं करेंगे। तो स्त्री कहती है देखो इस समय यहां हम हैं, तुम हो और भगवान् हैं, क्या तुम सच-सच अपने नियम पर अडिग रहोगे? तो पुरुषने कहा, हां हम सच कहते हैं कि अपने इस नियमसे चलित न होंगे। अब हमें क्या करना है शादी करके, खुदके ही दो तीन बच्चे है। तो स्त्री कहती है कि हमें एक बड़ी शल्य थी, मरनेके समय तुमने हमारी शल्य दूर कर दी। अब तो हमें एक और इच्छा है कि जब तक हमारा मरण न हो जाय तब तक हमारे निकट कोई न आये। और कोई इष्ट मित्र, रिश्तेदार, परिवार कोई मेरे निकट न आये। पतिने ऐसा ही किया। उस अशुद्ध अवस्थामें ही वह समाधि लगाकर बैठ गई। अब आप देखिये कि चार-पांच दिन तो विशेष अशुद्धि रहती है, करीब 10 दिन तक यह अशुद्धि मानी जाती है, पर उसने उसही अशुद्ध अवस्थामें आसन लगाकर, बैठकर आत्मसाधन किया। अब कोई कहे कि ऐसी अशुद्ध अवस्थामें तो ऐसा न करना चाहिए। क्यों न करना चाहिए? अरे मरण आ गया, सारे निर्णय का टाइम है तो उस टाइमको क्यों छोड़ा जाय? उस अशुद्ध अवस्थामें मुखसे पाठ बोले, यह न करे, मगर स्मरण, आन्तरिक जाप सब कुछ किया जा सकता है।

सम्यक्त्व और समाधिमरणकी हितरूपता जन्म और मरण तो दुनियाके जीवोंको लगा ही चला आ रहा है। यह मरण एक बार हुआ है क्या? अरे यह मरण तो अनन्त हो चुका है। फिर मरने का क्या दुःख माना जाय? अनन्तबार मरण हो गया तो यह भी मरण सही। पर इस जीव ने सम्यक्त्व और समाधिमरण ये दो चीजें नहीं पायीं, इससे इस संसारमें अब तक रुलता चला आ रहा है। ये दो खास मुख्य चीजें हैं सम्यक्त्व और समाधिमरण। बाकी जो कुछ होता है उदयानुसार होता है। जैसा होता है होने दो, उसके जानकार रहो और जो परिस्थिति हो उसमें ही अपना गुजारा करो। इन दो बातोंको महत्व दो। मुझे सम्यक्त्व जगे और अन्तमें समाधिमरण हो। भैया! सम्यक्त्व बिना सारी जिन्दगी बेकार है। समागम मिले हैं, उनमें मग्न हो रहे हैं तो उसका फल तो दुःख ही है। इन सारे समागमों को छोड़कर यहां से जाना ही पड़ेगा। सम्यग्दर्शन यदि है तो मिले हुए समागमोंके काम में भी वह दुःखी नहीं रहेगा और जब समागम का वियोग होगा तब भी दुःखी न

रहेगा। उसका जीवन सुखमय बीतेगा और समाधिमरण हो जायेगा और कुछ ही भवोंको धारण करके वह मोक्ष को प्राप्त कर लेगा। समाधिमरणका बहुत अधिक महत्व है। समाधि नाम समताका है।

आवीचिमरण और तद्भवमरण इस जीवका मरण दो प्रकार का है एक आवीचि मरण और तद्भवमरण। तद्भव मरण नाम है एक शरीरसे छुटकारा पाकर आगे किसी दूसरे शरीरमें पहुंच जानेका। इस शरीरसे प्राण निकल जानेका नाम है तद्भवमरण और प्रति समय जो समय गुजरे उस समयकी आयु खत्म हो, ऐसा प्रतिसमय आयुके खत्महो जानेका नाम है आवीचिमरण। यह जीव जबसे जन्मा है तबसे निरन्तर आवीचिमरण कर रहा है। तद्भवमरणके समय तो विधिपूर्व समाधि लेना चाहिए। ठीक है पर यह भी कुछ ध्यानमें रखना है कि हमारा मरण तो प्रति समय हो रहा है। इस समयकी आयु जो निकल गयी, वह वापिस न आयेगी और जो आयु गुजर रही है वह गुजर जायेगी। हमारा मरण तो प्रतिसमय हो रहा है। सो हमारा कर्तव्य है कि प्रति समय समता भाव रखें। समाधिमरण समतापूर्वक मरनेका ही नाम है तो जब हम प्रति समय मर रहे हैं तो प्रति समय समाधि परिणामका यत्न करें।

आनन्दका आधार भैया! आनन्द केवल समतामें है। जब राग और द्वेषकी वृत्ति जगती है तो आनन्दमें भंग हो जाता है। राग हो तो नियमसे आकुलता होती है। सब बातें खुद पर सब पर बीत रही हैं। किसी भी विषयका राग हो पुत्रका, स्त्रीका, वैभवका, इज्जतका पोजीशनका, शरीरका किसी भी तत्वका राग हो वह आकुलता ही पैदा करता है। इसी तरह जब किसी वस्तुमें राग हो तो किसीमें द्वेष होने लगता है। जिसमें राग है उस चीजमें जो बाधक बने उसमें द्वेष होने लगता है। तो जब द्वेष होगा उस समय भी नियमसे आकुलता है। राग और द्वेष ये आकुलता ही आकुलता को उत्पन्न किया करते हैं। हम अपने इस आनन्दघन समताके समुद्र चैतन्यस्वभाव पर प्रतीति किया करें। अपने आपको ऐसा अनुभव करें कि 'मैं केवल ज्ञानपुंज हूं। मेरा स्वरूप मात्र जानन है। इसमें न किसी परवस्तु का प्रवेश है, न किसी परवस्तुका सम्पर्क है।' यह जो शरीरमें बाँधा है स्वयं मोहके कारण अपने आप बाँधा हुआ है। जैसे किसी पुरुषको किसी पुरुष या स्त्री से प्रीति लग जाय तो वह पुरुष स्वयं अपनी कल्पनासे बाँध गया। उसे किसी दूसरेने नहीं बाँधा है। उससे भी विकट परिस्थिति है शरीर और आत्माकी। कोई जीव जब शरीरसे प्रीति रखता है तो चूँकि अत्यन्त गाढ़ी प्रीति है ना, इस कारण स्वयं ही शरीरसे बाँध गया है। शरीरसे परतंत्र हो गया है। यह मैं आत्मा तो अमूर्त हूं। इसको तो शरीर जकड़ता भी नहीं है, पर यह ममता करके स्वयं शरीरके साथ लगा फिर रहा है, बिगड़ा हुआ चला जा रहा है।

आयुबन्धका अवसर आयुकर्मके सम्बन्धमें ऐसी स्थिति है कि आज हम आप जो परिणाम बना रहे हैं उस परिणामके अनुसार अगले भव वास्ते आयु कर्म अभीसे बाँध जायेगा। यह आयुकर्म कर्मभूमिज मनुष्य तिर्यञ्चोंके बाँधता है त्रिभागोंमें। मनुष्यकी आयु जैसे मानों ६६ वर्ष की है तो ६६ वर्ष तक आयु नहीं बाँधेगी। जब ३३ वर्ष शेष रह गए तब आयु बाँधेगी। तब भी आयु न बाँधे तो

३३ के तीन भाग कीजिए जब २२ वर्ष और व्यतीत हो जायें, ११ वर्ष रह जायें तब आयु बंधेगी, तब भी आयु न बंधे तो ११ वर्षके तीन हिस्से कीजिए, उसके दो भाग निकल जायें तब आयु बंधेगी। इस तरहसे आयु न बंधे तो तीन भाग करते जाइये। यों आठ बार अपकर्ष कालमें भी आयु न बंधे तो अन्तिम अन्मूर्तमें अवश्य बंधेगी।

अकालमृत्यु जितनी आयुकी स्थिति अगले जीवनके लिए बंधी है, हिसाब तो यों रहता है कि जैसे मानों आगे फिर मनुष्य हुए और वहां ६० वर्षकी आयु बंधी है, तो इसका अर्थ यह है कि ६० वर्षके जितने समय होते हैं उतनी आयुके निषेक बँध जाते हैं। एक मिनटमें अनगिनते समय हैं। ६० वर्षमें जितने समय हैं उतने आयुके निषेक बन गए और अगले भव में जन्म होने के बाद एक-एक समय में एक-एक निषेक खिरते जायेंगे। कोई मनुष्य २५ सालका हुआ, इतने में किसी ने शस्त्र मार दिया या कोई रोग आदिक की बाधा हो गयी, या आगमें गिर गया तो उस समय बाकीके जो ३५ वर्षके निषेक हैं, वे सब अन्तिम अन्मूर्तमें खिर जायेंगे। इस दृष्टिसे अकाल मौत है। चूंकि उसके निषेकोंकी संख्या इतनी थी कि हिसाबसे समय-समय पर एक एक निषेक निकलता तो वह ६० वर्ष जीता, लेकिन २५ वर्षकी आयुमें ही ऐसा योग जुड़ा कि वे सब निषेक खिर गये, इसीके मायने अकाल मौत है। लेकिन जिस समय जो होना था उस समय वह हुआ, इस दृष्टिसे अकाल मौत नहीं है।

पारमार्थिक साहस ये आयुकर्मके निषेक कब खिरे, किस कारणसे खिरे, कैसे खिरे? यह सब अतर्क्य हैं बिना ही विचारे यह दुष्ट काल इस जीवको हर लेता है। तब बुद्धिमानी इसमें है कि हम आत्मकल्याण के लिए अपना उपाय बनालें। यह शरीर विनाशीक है, नष्ट होगा। इस शरीरको ऐसे तप, व्रत, संयम आदिमें लगाएं कि अपनेको अविनाशी पद मिले। विनाशीक चीजका उपयोग ऐसा किया जाय कि अविनाशी पद मिले, तो यह बड़े विवेकाका काम है। यह मरण आता है, जब आता है, कब आयेगा उसकी हम कुछ चिन्ता न करें, इतना साहस बना लें। वह साहस भेदविज्ञान और आत्मज्ञानसे ही बन सकता है। अपने आत्माको जो ज्ञानमात्र देख रहा हो उसमें ही यह साहस बन सकता है कि वह मरणका भय न करे।

मृत्युभय व सुखवाञ्छाकी हेयता यह सारा लोक मरणका भय कर रहा है, पर क्या भय करने से मरण बच जाता है? यह सारा जगत् आत्मसुखकी इच्छा कर रहा है, पर क्या इच्छा करनेसे यह सुख मिल जाता है? अरे जो भवितव्यता है वह उपादान और योग्यनिमित्त आदि विधियोंसे जो होती है, होती है। यहां तो जो होना है होगा। हम अपनी भावी स्थितियोंकी चिन्ता न करें और आत्मस्वरूपका परिचय पायें, इसकी ही दृष्टि बनाएं और मैं ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानमात्र हूं ऐसी निरन्तर भावना करें, इस ज्ञानसुधा रसका पान करके संतुष्ट होवें। हम सदा अंतः प्रसन्न रहें तो मोक्षमार्ग मिलेगा और हम अंतःनिर्मल न रह सके, अहंकार, ममकार, कर्तृत्वबुद्धि, भोक्तृत्वबुद्धि इनमें ही फंसे रहे तो संसारमें रूतते रहेंगे। अपने ऊपर मृत्यु मंडरा रही है ऐसा जानकर धर्मपालनमें लगनेका शीघ्रातिशीघ्र उपाय करें।

**असामवायिकं मृत्योरेकमालोक्य कञ्चन ।
देशं कालं विधिं हेतुं निश्चिन्ताः सन्तु जन्तवः॥७९॥**

लोकमें सर्वत्र मरण कहते हैं कि मृत्युका कोई देश असामवायिक नहीं है अर्थात् ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा जहां यह जीव मरा न हो। दुनिया बहुत बड़ी है, ३४३ घनराजू प्रमाण है। यह जो आजकी मानी हुई दुनिया है यह तो समस्त लोकके समक्ष इतनी भी नहीं है जितनी कि समुद्र में एक बूँद होती है। जिस द्वीपमें हम रहते हैं वह जम्बूद्वीप एक लाख योजनके विस्तार का है, उससे दूना दो लाख योजनके विस्तारका एक समुद्र है। समुद्र दोनों तरफ हैं और वह जम्बूद्वीपको बेड़कर है। जो समुद्रका निष्कम्भ है हर दिशामें २ लाख योजनका है, उससे दूना द्वीप, उससे दूना समुद्र; उससे दूना द्वीप, उससे दूना समुद्र, इस तरह अनगिनते द्वीप हैं, अनगिनते समुद्र हैं और वे एकसे दूने-दूने होते चले गए हैं, वे समस्त अनगिनते द्वीप समुद्र जितने विस्तारमें हैं उतना एक राजू पूरा नहीं है। यह एक राजू भी प्रस्तार मात्र है, एक समीकरण रूप है। एक राजू लम्बा, एक राजू चौड़ा व एक राजू मोटा गहरा सब ओर से हो उसे एक घन राजू मानों। ऐसे-ऐसे ३४३ घन राजू प्रमाण यह लोक है।

आजकी प्रसिद्ध दुनिया आजकी दुनिया किधर है? इस जम्बूद्वीपमें जो सबके बीच में है, उसमें ६ कुलाचल पर्वत पड़े हैं, जिनकी वजहसे ७ खण्ड हो गए। दक्षिण दिशा वालेका नाम है भरतक्षेत्र, उसके बीचमें एक विजयार्द्ध पर्वत है। हिमवान नामक प्रथम कुलाचल पर्वतसे गंगा और सिंधु नदी निकलती हैं, यहां वाली गंगा नहीं। वे गंगा और सिंधु जहां गिरती हैं वहां एक अकृत्रिम कुण्ड बना है, उसमें अरहंतप्रभुकी एक मूर्ति है। उस मूर्तिपर सबसे पहिले गंगा व सिन्धु की धार गिरती है। वहांसे आगे चलकर वह धार भरतक्षेत्रमें आकर लवणसमुद्रमें गिरती है। उस गंगाकी याद नहीं रही और जो निकट व चमत्कारिणी महानदी मिली, उसही का नाम रख लिया और उसकी ही आज दुनियामें प्रसिद्धि है। कितने ही क्षेत्र जो शास्त्रोंमें लिखे हैं, सम्भव है कि यहां न हों, कहीं और जगह हों, पर चूँकि नाम लिखा है तो उसी नामके क्षेत्र हमें बना लेना चाहिए। ठीक है कुछ भी मान लें। ऐसे ही समझ लो गंगानदी, सिंधुनदी आदिके स्थान शास्त्रोंमें बताये हैं। अब वे हमें आंखों नहीं दिखते, पर जो सुने गये हैं उनको कहीं न कहीं मान लेना चाहिए। सो किसी बड़े विजयार्द्धगिरी है वह हिमवान पर्वतसे गंगा व सिन्धु नदी निकली है, सो उस भरतक्षेत्रके ६ खण्ड हो गये हैं। चक्रवर्ती उन छहों खण्डों पर विजय प्राप्त करता है। उसमें एक आर्य खण्ड है।

भूगोल आर्यखंडकी भूमि अवसर्पिणीकालमें ऊँची उठा करती है। और वह करीब-करीब दो हजार कोश ऊँची उठी हुई है, जो सही जमी हैं उसके ऊपर मलबाके रूपमें दो हजार कोश उठ गयी है। अब वह उठी हुई जमीन गोल है, ऊपर है। आजके वैज्ञानिकों को इस भूगोलके सम्बन्धमें यह मालूम पड़ा कि पूरबसे चक्कर लगावे तो पश्चिममें जाता है। मान लो यह हाथ खड़ा है, इसे पूरबसे पश्चिमको यों घुमायें तो उसी स्थान पर घूम कर आ जायेगा। यों ही हवाई जहाजको एक सीधमें बढ़ाते जावें तो वह फिर घूमकर उसी स्थानमें आ जायेगा, यों ही ऊपरसे नीचे होकर आजायेगा इसलिए यही तो कहा

जायेगा कि यह जमीन गोल है। इसका आकार ऊँचे उठकर भी उत्तर की ओर मुड़ा हुआ है। सूर्य जम्बूद्वीपका चक्कर लगाता है। उस उठी हुई जमीनका जब एक चक्कर लगाता है तो एक ओर तो अंधेरा रहा और एक ओर उजाला रहा। जिससे लोग यह कहते हैं कि आर्यखण्डमें ही जब एक ही खण्डमें यह सूर्य है तो जब भारतमें दिन है तब अमेरिकामें रात है। जब भारतमें रात है तब अमेरिका में दिन है, यह न होना चाहिए। यहां तो बताया है कि जब विदेहमें रात है तो भरतक्षेत्र में दिन है, जब भरतक्षेत्रमें दिन है तो विदेहमें रात है। यह तो ठीक है, पर एक ही क्षेत्रमें, एकही खण्डमें अमेरिका और हिन्दुस्तानमें यह कैसे हो गया कि हिन्दुस्तानमें जब दिन है तो अमेरिका में रात है और हिन्दुस्तानमें जब रात है तो अमेरिकामें दिन है? इसका कारण यह है कि यह जमीन ऊँची उठी हुई है। सूर्य जब चक्कर लगाता है तो समक्षके भागमें उजाला रहता है और ऊपरके भागमें अँधेरा रहता है। ऐसी-ऐसी और भी समस्याएँ सुलझाई जा सकती हैं।

कल्पकालके सर्वसमयोंमें मरण अनगिनते योजना प्रमाण यह दुनिया है। इस दुनियामें ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा जहां इस जीवने अनन्त बार मरण न किया हो। इसी प्रकार यहां ऐसा कोई काल नहीं बचा जिस कालमें, जिस समयमें इस जीवने अनन्त बार मरण न किया हो। कालका हिसाब यों लगाना। सबसे बड़ा व्यापक परिवर्तन लम्बा भाग जिस में रहे वह है अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी। पहिला, दूसरा, तीसरा, चौथा ५वां और ६ठवां ये ६ काल हैं अवसर्पिणीके और ६वां ५वां चौथा, तीसरा, दूसरा और पहिला ये ६ काल हैं उत्सर्पिणीके। ऐसे ऐसे ही अवसर्पिणीकाल और उत्सर्पिणीकाल अनन्त व्यतीत हो गए। तो कितने ही अवसर्पिणीकाल और कितने ही उत्सर्पिणीकाल जनमते और मरण करते व्यतीत हो गए। यह सब चर्चा इसलिए की जा रही है इस मरणका कुछ भी भय न मानो। भय तो उसका करना चाहिए जो घटना कभी घटी न हो और अकस्मात् ही घटित हो जाय। मरण तो अनन्त बार हो चुके हैं, इसका क्या भय करना? साहसी पुरुषको मरणका भी कुछ भय नहीं रहता है। जो-जो भी वीर पुरुष हुए हैं, वे मरणके समय में सम्यग्ज्ञानके प्रतापसे रंच भी भय नहीं मानते।

सर्वविधियोंमें मरण विधियाँ भी ऐसी अनेक होती हैं, जिनमें इस जीवका मरण होता है। मरनेके जितने भी उपाय हैं अग्निमें जलकर मरण करना, रोगी बनकर मरण करना, जलमें डूबकर मरण करना, शस्त्रसे घायल होकर मरण करना आदि। उन सब उपायोंसे हम और आप अनेक बार मर चुके हैं। फिर कोई मरणमें संदेह करने वाली कोई घटना सामने आये तो उससे भी क्या भय करना? ऐसे कोई मंत्र-तंत्र आदिके उपायोंको भी करे तो भी मरणसे कोई बच नहीं सकता है। मान लो किसी भवमें किसी औषधिके कारण बच गये तो किसी भवमें इसही औषधिने मार दिया। ऐसी कोई औषधि नहीं है जिसके होते हुए भी मरण न होता हो। प्रत्येक जंत्र-मंत्र तंत्र सभी उपायोंसे इस जीवका मरण हुआ। ऐसे सभी उपायोंसे सब ही क्षेत्रोंमें यह जीव कालके वश हुआ है। ऐसा ज्ञान कर इस मरणका रंच भी भय न करे। आत्मकल्याणके लिये उद्यमी हों, एक आत्मज्ञान ही ऐसा समर्थ उपाय है जो काल से बचा सकता है। यह जीव अनन्त बार मरणको प्राप्त हुआ है। इसलिए यह आकस्मिक घटना नहीं है। जैसे ठठेरेमें घरमें

कोई कबूतर बैठा रहा करता हो तो अब वह ज्यादा डरता नहीं है क्योंकि यह ठक-ठककी आवाज तो रोज-रोज होती है। रोज-रोज ठक-ठककी आवाज सुनते-सुनते अभ्यास बन गया, अब डर नहीं रहा। ऐसे ही अनन्तकाल मरण करते-करते हो गया, अब इस ज्ञानीको मरणका कुछ भी डर नहीं है।

साम्प्रत कालमें मरणसे अभीत वीरोंका साहस कितना ही तो आजके समयमें भी मरण के सम्बन्धमें साहस देखा जा रहा है। जब आजादी का आन्दोलन चला तो उसमें क्रांतिकारी लोग बिगड़ गए तो किसीकी अंगुली आगसे जलाई जा रही है, मांस भी जल गया है, इतने पर भी घटनाका मर्म पूछा जाने पर उन्होंने नहीं बताया। उन्हें तो एक आजादीकी धुन थी, तो ऐसे साहसी लोग मरणके सम्बन्धमें अब भी देखे जाते हैं। ऐसे ही ऋषि, संत लोगोंको आत्मसमाधिकी धुन थी, उन्हें शेरने खाया, स्यालिनी ने खाया, शत्रुवों द्वारा अनेक घटनाएँ घटीं, किन्तु वे विचलित नहीं हुए, वे समाधिमग्न ही रहे।

व्यर्थका मोह भैया! सबसे विकट पाप है मोहका। मोह होते हुए में मोह बड़ा अच्छा लगता है। हम बड़े सुखी हैं, इस ढंगके हैं, पर मोहका अन्तमें फल क्या होगा? सो तो देखो। बड़े-बड़े पुरुष इतिहासमें, पुराणोंमें सुननेको मिलते हैं। किन-किनसे बड़ा प्रेम किया, मोह किया, राज्य फैलाया, आखिर उनकी दशा क्या हुई? कोई ज्ञानी विरक्त बनकर साधु होकर चले गए, कोई मोहमें संक्लेशमें मरकर चले गए। किसीका कुछ हुआ, लेकिन यह जोड़ा हुआ सारा समागमका फल तो अन्तमें विघटन ही है। मिला क्या? जैसे बच्चे लोग बरसातके दिनोंमें रेतीली जमीन पर पैर रखकर उस पर धूल डालकर घर बनाते हैं, जिसे घरबूला कहते हैं। अरे वह बच्चोंका घरबूला क्या है? थोड़ी देरमें खेलकर वे बच्चे उसे मिटा देते हैं और अपने-अपने घर चल देते हैं। इतना श्रम करनेसे उन बच्चोंको कुछ लाभ नहीं मिला। ऐसे ही मकान बनवाया, दूकान चलाया, अपना यश बढ़ाया, अन्तमें फल क्या होगा? एक दिन साराका सारा समागम वियुक्त हो जायेगा, साफ मैदान हो जायेगा। इस समागमके मोह में इस जीवको क्लेश ही मिलता है।

निर्मोहियोंको मरणमें कष्टका अभाव मरणके समयमें इस जीव को प्राणोंके वियोगका जो क्लेश होता है वह तो उसकी समझमें थोड़ा होता होगा। किन्तु जो धन जुड़ा है, परिजन मिला है, उनमें चित्त रमाया है, बड़ा परिचय बढ़ाया है, बड़ी कीर्ति फैलायी है, उसे छूटता हुआ देखकर उसे बड़ा कष्ट होता है। जिसे मोह नहीं होता उसको मरणके समयमें भी कष्ट नहीं है और जिसे इस देहसे भी मोह नहीं है, देहसे भी भिन्न ज्ञानमात्र अपने आत्माको अनुभवते हैं, उनको तो रंच भी मरण समयमें क्लेश नहीं होता।

मरणकालका दायित्व मरण समयमें जैसी बुद्धि होगी तैसा ही फैसला अगले जीवनका होगा। यह जीव अगले भवमें सुखी रहेगा अथवा दुःखी, इस बातका यह मरण समय परिचायक है। जैसे थर्मामीटरसे नाप कर बता दिया जाता है कि अब इसके इतना बुखार है, ऐसे ही यह मरण का अवसर भी इस बातको सूचित करता है कि यह जीव अपना अगला भव सुखसे व्यतीत करेगा अथवा दुःखसे। अगर जीव

धर्ममय निर्मलतामय अपना समय गुजारेगा तो उसका अर्थ है कि इसका परलोक भी आनन्दमय व्यतीत होगा। अतः यदि चिन्ता ही करना है, चिन्ता ही करनेकी चाह है, चित्त है तो समाधिमरणकी करो। इससे चित्तमें निर्मलता रहेगी। एतदर्थ अपने जीवनमें ज्ञान ध्यान मनन चिन्तन अध्यात्मदर्शन ये सब उपाय करने होते हैं। कहीं ऐसा नहीं है कि इस जीवनमें तो उसकी साधना न करें और मरण समयमें आकस्मिक शुभ भाव बन जायें, शुद्ध परिणाम बन जायें ऐसा नहीं हो सकता। विरल से हो भी सकता है।

अन्तः पुरुषार्थका उत्सर्गमार्ग जैसे किसी अन्धेको मार्गमें चलते हुए पत्थरमें ठोकर लग जाये और उसे निकाले तो धन मिल जाय, तो कहीं इस से सबका रोजगार तो न बन जायेगा कि चलो आंखोंमें पट्टी बांधकर अन्धे बनकर पैरमें ठोकर मारें और उसे खोदें तो धन मिलेगा, ऐसा तो नहीं हो सकता। कोई विरले ही पुरुष ऐसे होते हैं, जो अपने आत्मस्वरूपकी सुधि रखकर सद्गतिको प्राप्त होते हैं। जैसे शेरनीके सुकौशल महामुनिको खाया था। वह सुकौशलकी पूर्व भवकी मां थी। उसे इतना बड़ा रोष आया कि यह मेरा बैरी है, इसकी वजहसे आर्तध्यान होकर उसे शेरनी बनना पड़ा। उस शेरनी ने उपद्रव किया। सुकौशल तो मोक्ष चला गया। उनके पिता कीर्तिधर भी वहां विराजे थे। उन्होंने शेरनीको समझाया कि तूने कितना पाप किया? यह तेरा ही पूर्वभवका पुत्र है उस पर ही तूने आघात पहुंचाया। उसे जब ध्यान आया तो उसके परिणाम अत्यन्त निर्मल हो गये। ओह! अब मेरा खाने पीनेका त्याग है। उसने समाधिमरण धारण किया। समाधिमरण करके देवगति प्राप्तकी। तो इससे इस बातको समझना चाहिए कि हमारे ज्ञानभाव बढ़ें और हम अपने उपयोगको निर्मल बनाकर अपने जीवनको सफल करें।

मरणभयका लाभ मृत्यु किसीको न छोड़ेगी, यह बात बिल्कुल साफ नजरमें रखना चाहिए। कलका भी भरोसा नहीं है। जो भी अचानक मरे हैं क्या उन्होंने कोई प्रोग्राम बनाया था कि हम अमुक दिन मरेंगे? प्रथम तो यह बात है कि जो बहुत-बहुत चिन्ताएँ बनाए रहते हैं, उनका मरण तो इससे भी भयानक होगा। न जाने कब हार्ट फेल हो जाय। देहाती लोग हट्टे-कट्टे होते हैं। वे कभी बीमार होते हैं तो दवा करते हैं। न ठीक हुए तो कुछ दिन वेदना सह कर फिर कहीं वे मरणको प्राप्त होते हैं। धीनक लोगोंका तो धनकी चिन्तामें हार्ट फेल हो जाता है। उस समय तो बड़ा संक्लेश करके मरण होता है। तो इस रही सही जिन्दगीमें अन्यायसे काम न करें, कभी अपने आपको क्लेशोंमें डालनेका काम न करें। सबके प्रति सद्ब्यवहार रहे जिससे हम अपने आत्मदेवके दर्शनके पात्र रहा करें, ऐसा यत्न होना चाहिए।

विकल्पजालोंका क्लेश भैया! किसके लिए इतना धनका संचय किया जा रहा है? पुत्र सपूत है तो धनसंचयसे क्या लाभ? पुत्र कुपूत है तो धन संचयसे क्या लाभ? अगर अपने थोड़ेसे श्रमसे बहुत कमायी हो रही है तो यह समझो कि जिन-जिनके कार्मोंमें यह धन काम आयेगा, उन उनके पुण्यके प्रतापसे यह कमायी हो रही है। मैं नहीं कमा रहा हूं। अपने आप को अहंकार, ममकार कर्तृत्वबुद्धि

व भोक्तृत्व बुद्धि इन चारों अवगुणोंसे दूर रखना चाहिए। जीवको परेशान करने वाले ये चार प्रकारके भाव है। पर चीजमें यह मैं हूं, ऐसा मान लेना अहंकार है। यह तो कोरा अज्ञान है। निज और परका उसने भेद भी नहीं ज्ञात किया, निज और परको उसने एकमेक कर डाला। कोई चीज है परवस्तु और उसको मानें अपनी चीज यह ममकार है, यह भी मोहभाव है कर्तृत्वबुद्धि क्या है? सभी वस्तु स्वतंत्र-स्वतंत्र अपने आपके स्वरूपमें है। किसीका किसीके साथ संबंध नहीं है, फिर भी हम यह मानें कि मैंने अमुक काम को किया, अमुक परवस्तु को यों बनाया, मुझे ऐसा काम करनेको पड़ा हुआ है, ये विकल्प तो क्लेश के ही कारण हो जाते हैं। परपदार्थ जिस रूपमें परिणमते हैं वे अपनेमें ही परिणमते हैं। मैं अपने ही परिणमनको भोगता हूं, परके परिणमनको मैं नहीं भोगता हूं, किन्तु अज्ञानमें यह जीव अपनेको परका भोक्ता मानता है। इन चारों अवगुणोंसे संसारी प्राणी सदा परेशान रहते हैं। अरे इतना भी ध्यानमें रहे कि मृत्यु न जाने किस क्षण आने वाली है। जितना जीवन बचा है उस जीवनमें हम ज्ञानवृद्धि और धर्मपालन शीघ्रातिशीघ्र करलें तो यह भी हमारा विवेक है।

**अपिहितमहाघोरद्वारं न किं नरकापदां
मुपकृतवतो भूयः किं तेन चेदमपाकरोत्।
कुशलविलयज्वालाजाले कलत्रकलेवरे
कथमिव भवानत्र प्रीतः पृथग्जनदुर्लभे॥८०॥**

कलुषित कामान्धकार पञ्चेन्द्रियके विषयोंमें सबसे अधिक निन्दित कलुषित स्पर्शन इन्द्रियका विषय प्रसिद्ध है। यों तो ब्रह्मस्वरूपसे अलग करनेमें सभी विषयोंके साधन बाधा किया करते हैं, किन्तु सबसे अधिक बाह्यदृष्टिका सहयोगी और अज्ञान अंधकारके विस्तार का स्पर्शन इन्द्रियका विषय है। पुरुष है वह स्त्रीके शरीरको देखकर अपनी कल्पनावों से सुन्दरता की कल्पना करता है और उससे सुखका भ्रम करता है। स्त्री हो, वह पुरुषके तनको देखकर अपनी कल्पनासे सुन्दरताकी भ्रांति करती है और उससे सुखका भ्रम बनाये है, लेकिन स्वरूप से देखो ये सब करामात, ये सब कामकी लीलाएँ इस चैतन्य ब्रह्मपर कितना बड़ा प्रहार कर रही हैं? यह आत्मा भगवान् ज्ञान और आनन्दका निधान है। इसे कहीं वेदना नहीं हैं, कोई क्लेश नहीं हैं। यह तो अपने आपमें स्वरूपतः आनन्दका धाम है, लेकिन अपने आपके स्वरूपका परिचय न पाकर बाह्यमें इतना दौड़ गया है कि इस पुरुषको स्त्री, स्त्रीको पुरुष ये ही सब कुछ अपने सुखके साधन जंच रहे हैं।

कामवासनाके अनर्थ कामविषयक प्रीतिसे अनर्थ कितना होता है। प्रथम तो यह देखिये और स्त्रीकी परस्पर प्रीति हो जानेसे चिन्ता, भय, शोक, कायरता ये सब अवगुण इसमें समा जाते हैं। आत्मामें बहुत विशाल सामर्थ्य है। जो कुछ भी जगत् में चमत्कार है, वह चाहे पौद्गलिक चमत्कार हों और चाहे दुनियावी प्रभुके चमत्कार हों, वे सब इस आत्माके चमत्कार हैं। विज्ञानमें जो आज इतनी उन्नति हो रही है, किस तरहके रोकेट और किस तरहके रेडियो स्टेशन, फैलाव आवाज, बेतारका तार, ट्रांसमीटर कितनी तरहकी जो आविष्कारकी उन्नतियां हैं, ये आत्माके चमत्कार ही तो हैं। आत्मामें

विशाल सामर्थ्य है, ऐसे सामर्थ्य वाले इस आत्मा भगवान्को रद्दी कामविषयक वासनामें लगाकर कैसा बरबाद किया जा रहा है? यह विशेष बतानेकी बात न होगी, सभी लोग अपने अनुभवसे परिचित होंगे। फल क्या निकलता है? ये भोग क्या भोगे हैं, इन भोगों ने अपनेको भुगा दिया है। भोगोंको क्या बिगाड़ा? जो भोग भोगे हैं, उन भोगोंका क्या बिगाड़ हुआ? बिगाड़ तो इस आत्मा भगवान् का हुआ।

संतजनोंको प्रतिबोधन ये जो संसारके जीव हैं, ये जन्मते हैं, मरते हैं, इस आत्माको क्या मिला? यह बात तब समझमें आती है जब भोगों से थककर शिथिलता और कायरता बन जाती हैं, शक्तिहीन हो जाते हैं, चिन्तावोंके घर बन जाते हैं तब ध्यान में आता है। ओह! यह कामविषयक भोग मैथुन प्रसंग, ब्रह्मचर्यका घात और ये सब कामलीलाएँ इनसे तो मेरा अनर्थ ही हुआ, लाभ कुछ नहीं हुआ। यह ग्रन्थ साधुजनोंके प्रतिबोधके लिए साधुने बनाया है, इस कारण स्त्रीके शरीरको लक्ष्यमें लेकर यहां इस छंदमें वर्णन किया गया है। यह शरीर घोर नरकका द्वार है। यह न जानना कि स्त्री शरीर घोर नरकका द्वार है। पुरुषमें जो कामविषयक व्यामोह हुआ है, परिणाम बना है उसका ही परिणाम घोर नरकका द्वार है और इसी तरह स्त्रीके लिए पुरुष नरकका द्वार है। क्या रक्खा है इस शरीरमें? यह तभी तक सुहावना लग रहा है जब तक इस शरीरका मल, नाक, थूक लार बाहर नहीं निकले आये अथवा फोड़ा फुंसी हो जाय, खून निकल आये तो वही तो चीज है जो भीतर थी, जिसके कारण खूबसूरती बढ़ रही थी, वही चीज बाहर निकली है। घृणा क्यों की जा रही है? शरीरमें मल, मूत्र, कफ आदिक न हों तो यह सुन्दरता कहां विराजे?

सुन्दरताका मूल रूप एक घटना है। एक राजपुत्र अपने नगरमें घूम रहा था। उसे एक सेठकी बहू नजरमें आयी। उस बहूकी सुन्दरताको देखकर वह राजपुत्र मोहित हो गया। अपने महलमें आकर उदास चित्त होकर वह पड़ गया। बहुत-बहुत पूछा जाने पर आखिर एक दूती को बता दिया। तो दूती बोली कि यह बात तो बिल्कुल आसान है, तुम क्यों उदास हो? दूती पहुंची सेठकी बहूके पास। बोली कि अब तुम्हारा भाग्य जग गया है, तुम पर राजपुत्र मोहित है। बहुत बातें होनेके बाद सेठकी बहूने कहा। अच्छा 1५ दिनके बाद अमुक दिन अमुक तिथिको राजपुत्र हमारे घर आये। उतने दिनोंमें सेठकी बहूने उधार क्या किया कि जुलाबकी गोलियां खा लीं, जिससे कै-दस्त बहुत होने लगे। सारे कै-दस्तको एक मटके में भरती गयी। जब मटका भर गया तो रेशमी कपड़ेसे अच्छी तरह ढांक दिया, और उसे खूब सजाकर रख दिया। वह बहू तो अब अत्यन्त दुबली पतली कमजोर हड्डी निकली फीके चेहरे हो गई। राजपुत्र जब 1५ दिनके बादमें आया तो वह चकितसा रह गया। बहू कहती है कि राजपुत्र! मैं ही वह सेठकी बहू हूं। मेरी जिस सुन्दरता पर आप मोहित थे, चलो उस सुन्दरताको दिखायें। राजपुत्र जब उस मटकेका कपड़ा उठाकर देखता है तो उससे बड़ी दुर्गन्ध निकलती है। उसे देखकर राजपुत्र भागा।

असार शरीर कारागार भैया! क्या है यहां? कुछ भी तो सार की चीज यहां नहीं है, जिस रूपको निरख कर अपने आत्माकी सुध खोई जा रही है, सो रहे हैं, ये जगतके समस्त व्यामोही जीव, यह शरीर मल, मूत्र, खून-पीप इनसे ही तो रचा हुआ है। अरे, यह शरीर तो इस आत्मभगवान्का कारागार बन

रहा है। जैसे कारागार ईंटों से पत्थरोंसे बनाया जाता है यह शरीर कारागार हड्डियोंसे बना है। इसके भीतर आत्मा कैदी पड़ा है, यह इस शरीरसे भाग न जाय। कारागारको गारा से चुनते हैं और यह शरीर खून, मांस, मज्जा, हड्डी, पीप आदिसे बना हुआ है। कारागारके चारों ओर पहरेदार खड़े रहते हैं ताकि कैदी कहीं से भाग न जाये। हमारे आपके कारागारके चारों तरफ स्त्री, पुत्रादिक ये पहरेदार खड़े हैं कि कहीं यह आत्मा स्वतन्त्र स्वच्छन्द होकर भाग न जाये।

विपदाश्रम इस शरीरको तो विपदा मानो, श्रृंगारकी चीज न समझो, शोभाकी चीज न जानों, किन्तु विडम्बना जानों। यह सारा शरीर चाहे मनमोहक भी हो तो भी इस जीव की विडम्बना है। कभी तो यह खुद का देह भी खुदके लिए बोझल हो जाता है, दुःखदायी हो जाता है। पेट बढ़ गया, पेट भीतर कड़ा हो गया, तो यह शरीर बड़ा कष्टदायी मालूम होता है और प्रायः सभी को अपना कोई न कोई हिस्सा कष्टदायी लगता है, पर मोहमें मानते नहीं हैं। इस शरीरको निरखकर कामविषयक वासना की तरंग उठाना यह महामूढ़ताकी बात है। ये सब कल्याणमार्गको भस्म करनेके लिए ज्वाला की तरह हैं। गृहस्थोंको स्वदार संतोष व्रत बताया है। अपनी स्त्री में भी बहुत संतोषसे रहना चाहिए। वहां भी स्वच्छन्दता न बर्ते। स्वच्छन्दता बर्तेगे तो वहां भी अशान्ति है और फिर जो परस्त्री पर कुट्टुष्टि करेगा, वह तो घोर असंतोषकी ओर जा रहा है।

विषयध्यानसे हटकर अन्तर्धानमें पहुंचनेका अनुरोध इस देहका हम कितनाही उपकार करते हैं, कितनी ही प्रकारकी औषधियोंका सेवन करते हैं, पर यह शरीर कुवासनावोंका घर बनकर इस आत्माका अनर्थ कर रहा है। देखो इन इन्द्रियोंमें कर्णविषयक जो ग्रहण होता है, वह कुछ दूरीका सम्बन्ध जैसा हो जाता है। आंखोंके द्वारा जो विषय ग्रहण होता है वह कुछ और निकटसा आकर होता है। घ्राण से और निकटता लेकर होता है। रसनामें और निकट होकर होता है, और स्पर्शन, इन्द्रिय कामादिक विषयोंसे यह जीव और निकटतासे उस भोगका ग्रहण करता है। अरे ऐसी झूठी निकटताओं को छोड़कर सत्य शाश्वत आत्मीय निकटताको लेकर आनन्द पायें तो इसे ध्यानमें आये कि यह सब जाल मेरे लिए बन्धन ही करने वाला है।

शान्तिके दो विपरीत प्रयत्न मनुष्य इन दो बातों पर ही तो तुला हुआ है। एक धन बढ़ जाये और एक भोगविषय कषायके साधन बने रहें, पर दोनों ही उपाय अशान्तिके वर्द्धक हैं। धनी होकर भी आखिर मरना ही होगा और जब तक जीवन है तब तक भी कोई उनका सहाय नहीं है। धनसे तो शान्ति कभी मिल ही नहीं सकती है। क्यों धनसंचयके इतने विकल्प किए जा रहे हैं? जो कुछ अपने पास धन है उसमें भी आराम नहीं माना जा रहा है। वे गृहस्थ भी धन्य हैं, जो गरीबीका स्वागत करते हुए धर्मका स्वागत करें। मनुष्यकी इज्जत, धर्म, परोपकार, ज्ञानसे है, धन से नहीं है। धनी पुरुष यदि मूर्ख है, किसी दूसरेके काममें नहीं आता तो उस धनी पुरुषके प्रति सबका दिल नाराज रहता है। भले ही कुछ कारणोंसे आमने सामने दो मीठी बातें सुना दें, किन्तु हृदय तो उसके विरुद्ध ही रहता है। जैसे आजकलकी वोटिङ्गकी पद्धति है। कोई किसी को कितना ही कहे कि हम तुमको ही बोट देंगे, लेकिन उसका कुछ

विश्वास नहीं है। वह तो वोटिङ्गके घरमें स्वतन्त्र है, कहीं भी अपना वोट डाल दे, ऐसे ही कोई धनिक कृपणकी प्रशंसा भले ही कोई सम्मुखमें कुछ कर दे, पर उसका हृदय तो यथार्थ बात ही कह रहा है।

आकिञ्चन्यका प्रसाद बड़े-बड़े ऋषिजन और आधुनिक नेताजन गरीबीका स्वागत करके ही धर्ममार्गमें बढ़ पाये हैं। एक धर्मकार्य कर दो और ऐसा अनुपम आनन्द लूटलो मनुष्य जन्म पाकर जो कि स्वाधीन हैं। यह आनन्द अपने आपमें केवल एक दृष्टि करने द्वारा ही साध्य है, वह आनन्द है आत्मानुभवका। धर्म और किसी बातमें न समझिये। केवल एक आत्मानुभवमें धर्म है और जो कुछ भी बातें हम आपको करनी पड़ती हैं वे इसलिए करनी पड़ती हैं कि चूंकि हम लोगोंकी आदत पाप, व्यसन, कषाय इनकी ओर लगी हुई है, उससे छुटकारा पानेके लिए ये अनेक व्यवहार धर्मके कार्य करने पड़ते हैं, करना चाहिए, पर धर्म आत्मानुभवमें है। अपने आपको ज्ञानमात्र विश्वासमें लेकर ऐसे ही अनुभवो कि 'मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूं, अपने स्वभावसे भरा पूरा हूं, इससे बाहर मेरा कुछ नहीं है, इससे बाहरमें कोई पदार्थ मेरेमें कुछ करता नहीं, मैं ज्ञानमात्र हूं' इस प्रकार बार बार अपने अनुभवमें लें, इस अन्तःक्रिया प्रसादसे जो अपूर्व विश्राम मिलेगा, बस वही धर्म है। ये नियमसे शान्ति उत्पन्न करता है।

आनन्दके विघ्नसे प्रीतिकी व्यर्थता धर्ममें बाधा देने वाले ये पंचइन्द्रियके विषय और मनका विषय है। इन सब विषयोंमें कठिन और अत्यन्त बाह्यदृष्टि करने वाल मूढ़ता विह्वलता उत्पन्न करने वाला विषय है यह कामविषयक, मैथुनप्रसंग। हे साधु! तू समस्त विषयवासनावोंसे अत्यन्त दूर होकर केवल अपने आपके उस ज्ञानानन्दनिधिको निरख। ऐ उपासक! तू स्त्री के शरीरसे अनुराग करके उसका उपयोग करता है किन्तु वह सदा तेरे लिए विघ्नको ही करने वाली है। विघ्नका करने वाला स्त्री जीव नहीं है, किन्तु जिस दूसरे जीवका आश्रय लेकर हम अपने आप के परिणामों में कलुषता लाते हैं वह परिणाम है। व्यवहारदृष्टिसे यों कहा जाता है कि वह उसका विघ्न ही करती है। ऐसी स्त्रीके तनसे क्या प्रीति करना?

प्रभुके सम्बन्धमें काम और रतिकी वार्ता एक बार कामदेव और रति ये दोनों भयंकर जंगलमें घूमते हुए जा रहे थे। कामदेव कोई देवता नहीं है। कामी पुरुषके मनके जो विचार हैं उन विचारोंका नाम कामदेव रख दिया, और स्त्रीके विचार हुए उसका नाम रति रख दिया। कामविषयक विचारोंका नाम कामदेव और रति है। अलंकारमें कहा जा रहा है। कामदेव और कामदेवकी स्त्री रती ये दोनों बनमें जा रहे थे कि एक जगह कोई तीर्थकर मुनि अपने आसनसे अडिग आत्मध्यानमें लवलीन प्रसन्न मुद्रा सहित विराजे हुए दिख गए। तो रति पूछती है और उसका उत्तर कामदेव देता है क्या उनका प्रश्नोत्तर है? कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी ऊंहूं प्रलपी प्रिय, ऊंहूं तर्हि विमुञ्च कातरमते शौयविले क्रियां। मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किङ्कराः के वयं, इत्येवं रतिकाम जल्पविषयः पार्श्वो जिनः पातु वः।

मोहविजेतापर कामाक्य अप्रभाव मानों पार्श्व जिनेन्द्र अपने आत्मध्यानमें विराजे थे। रति पूछती है कोऽयं नाथ? यह कौन है? काम देव उत्तर देता है जिनः। ये जिनदेव है। रति कहती है भवेत्तव वशी? यह भी तुम्हारे अधिकारमें हैं या नहीं? अर्थात् कामवासनाके जालमें वे भी फंसे हुए हैं या नहीं?

तो कामदेव उत्तर देता है ऊँ हूँ। ये तो नहीं फँसे हैं कामवासनाके जालमें। क्यों? प्रतापी प्रिये हे प्रिये, ये बड़े प्रतापी पुरुष हैं। मैंने और सब जगह तो जीवोंको वशमें कर डाला, पर इन पर हमारा कुछ वश नहीं चलता है। तो रति कहती है ऊँ हूँ तर्हि विमुञ्च कातरमते शैयविलेपक्रियां। यदि नहीं जीत पाया तो हे कामदेव! तू अब अपनी बहादुरी की डींग को छोड़ दे। जो मेरे साथ बहादुरीकी डींग मारा करता है कि मैंने सारे जगत्को वशमें किया है, अब तू उस डींगको त्याग दे। तो कामदेव बोलता है मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किंकराः के वयं, इस योगी ने मोहको जीत लिया है। जब हमही इनके दास हो गए हैं तो कैसे इनको वशमें करलें। ऐसी बातचीत जिसके बारेमें काम और रति करके जा रहे हैं वह पार्श्व जिनेन्द्र हम आप सबकी रक्षा करें।

भोगोंमें अनर्थताकी दृष्टि इस शरीरको अज्ञानीजन दुर्लभ मानते हैं, पर यह कुछ नई चीज है। यह शरीर विपदावोंका घर है। यथार्थ बातको ध्यानमें लो। कर्म प्रेरणासे जितना भोगना पड़े विषयभोगोंको भोगें, पर इतना ज्ञान तो बनाए ही रहिये कि इससे सारा अनर्थ ही है, वियोग बुद्धिसे ही भोगें। यों यह सब मोहजाल कामजाल अकल्याणका ही कारण है ऐसा जानकर इस ओरसे अपेक्षा करके धर्ममय अपनी दृष्टि बनाएँ।

व्यापत्यर्वमयं विरामविरसं मूलेष्यभोग्यचितं।

विष्वक्क्षुत्क्षतपातकुष्ठकुथिताद्यु ग्रामयैश्छिद्रितम्॥

मानुष्य घुणभक्षितेक्षुसद्रशं नाम्नैकरम्यं पुनः-

निःसार परलोकबीजमचिरात् कृत्वेह सारीकुरू॥८१॥

दृष्टान्तपूर्वक नरदेहके सदुपयोगका अनुरोध जैसे कोई धुना सांठ हो तो उसको भोगनेसे यानि खाने से सांठेको भी बरबाद कर दिया जाता है और अपनी जिह्वा भी खराब कर ली जाती है, रोगवेदना उसका फल होता है। सांठेका अन्तिम भाग है तो विरस है और मूल भाग कठोर है, भोग के उचित नहीं है। बीचका भाग सो उसमें घुन लग गया है। ऐसे सांठेका भोगना अनर्थकारी है। ऐसे ही जो मनुष्यजन्म है उसे तुम घुने सांठेकी तरह जानकर भोगोंमें मत लगावो, किन्तु एक अपनेको धर्मसाधना में जुटावो। यदि कोई पुरुष ऐसे सांठे को खाकर बिगाड़ता है तो वह सांठा भी व्यर्थ गया और उसके खाने से अपना मुख भी खराब कर लिया। उसे कुछ लाभ नहीं मिला। यदि उस सांठेको खेतमें बो दिया जाय तो उससे जो नवी सांठे उत्पन्न होंगे उनका रस भोगनेमें आयेगा। ऐसे ही इस असार शरीरको जिसका कि विराम विरस है, विराम याने वृद्धावस्थाका मूल क्या है? बाल अवस्था। बाल अवस्थामें तो भोग होते नहीं, वह अवस्था तो भोगोंकी अनुचित है। विराम अवस्था में नीरसता आ गयी, शरीरके अंग शिथिल हो गये। मृत्यु निकट आ गयी। अब रह गयी जवानी। इस जवानीमें अनेक आपत्तियाँ पायी जाती हैं। क्षुधा, तृषा, पीड़ा, चिन्ता, रोग, शोक आदिक नाना उपद्रवोंने हृदयको छेद दिया। वहां भी सुख नहीं मिला। यह मनुष्यपर्याय भोगके प्रसंगमें सर्वप्रकारसे असार है। इसे विषय सुख भोगनेमें गंवा देना यह असार है।

देहका परमार्थके लिये अनुयोजन कोई पुरुष इस मनुष्यपर्यायिको धर्मसाधना करके परलोक का बीज बना दे तो उसका फल उत्तम होगा। जैसे गन्नेको बोकर अनेक गुणे और गन्ने प्राप्त होंगे, ऐसे ही इस शरीरको कोई धर्मसाधनामें लगा दे तो उसके फलमें वह स्वर्ग और मोक्ष का आनन्द पायेगा। सुख वह है जिसके बाद फिर दुःख न आये। संसारीजन जिस सुखमें रमण करते हैं, वह सुख नियमसे दुःख ही लाने वाला है। खूब निर्णय करके देख लो, कहां सुख है? जिन्दगी व्यर्थ बितायी जा रही है। किसी बातमें सुख मानकर और किसी दंद फंदमें घुसकर बहुत आगे दुःख मिलेगा यह बात तो दूर जाने दो, किन्तु सांसारिक सुख भोगा और दूसरे ही मिनट में दुःख मिल गया। परलोकमें दुःख होगा, यह बात तो ठीक ही है भोगों के फलमें, पर परलोककी बात तो दूर की है, यहीं देख लो। भोगों के फलमें दूसरे मिनटमें इसे दुःख भोगना पड़ता है। कोई भी सांसारिक सुख ऐसा नहीं है जिसके बाद दुःख न हो। इस सुखमें रमण मत करो। इस सुखमें रमने से इस संसारका भटकना ही बना रहेगा।

वैषयिक सुखमें शान्तिका अभाव सांसारिक सुख ६ प्रकार के हैं स्पर्शका सुख, रसका सुख, नेत्रका सुख, शब्दका सुख, गंधका सुख। इस मनसे यश कीर्ति के फैलावमें कल्पना करते जावो, उनके सभी सुखों में अधीरता पावोगे। धीर गम्भीर शान्त बनकर यहां कोई भी सुख नहीं भोगा जाता। अधीर, तुच्छ, उथला सा अशान्त बनकर ये सुख भोगे जाते हैं। उन सुखोंके भोगनेसे पहिले भी क्लेश होता है, भोगनेके समय भी क्लेश होता है और भोगनेके फल में भी अन्तमें क्लेश होता है, सर्वत्र क्लेश ही क्लेशसे भरा होता हुआ व्यवसाय है। ऐसे व्यवसायको बुद्धिमान् जन नहीं किया करते हैं। विषय वेदना वाले सुखोंकी हालत देखो। कई वर्ष पहिले से जबसे विचार बने तबसे ही चिन्ता और कष्ट होता है। बड़ी पराधीनता, बड़े-बड़े यत्न करे, कुछ काल सुख भी मिले, उस कालमें भी आकुलित होकर दुःखी होता हुआ अन्तरङ्गमें क्षोभ करता हुआ, कल्पनावोमें मौज मानता हुआ यह अज्ञानी जीव सुख भोगता है। जहां कुछ दिन स्त्रीके संगमें रहते हो गए वहां स्त्रीसे नहीं पटती। बीच-बीचमें बड़े कष्ट होते हैं, बच्चे बहुत हो गए, कोई बच्चा कुमार्गपर चलता है तो उसका दुःख होता है। यह तो निश्चित ही समझिये कि जो कुछ भी समागम मिले हैं उन्हें पकड़े रहेंगे तो नियम से दुःखी होंगे, रुलेंगे, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। जो परका समागम मिला है वह रुलाने वाल मिला है, चाहे जल्दी रोतें चाहे कुछ वर्ष बाद। फल उसका रोना है।

राग ब्यामोहका फल एक राजाने अपने दरबारमें एक साधु जी को बुलवाने कुछ व्यक्तियोंको भेजा। वह बड़ा ऊंचा साधु था। बड़े सत्कारसे उन साधु महाराजको लिवाकर लानेके लिए सोचा। कुछ लोग साधुके पास जाकर कहते हैं, चलो महाराज आपको राजाके दरबारमें चलना है, बहुतसे लोग वहां पर आपका इन्तजार कर रहे हैं, बड़ा धार्मिक अवसर है, सभी लोग आपके दर्शन करना चाहते हैं। साधु ने कहा, अच्छा भाई चलो। साधु ने क्या किया कि मुख पर काला-काला काजल पोत लिया, और राजाके दरबार में पहुंचा। सब लोग सोचें कि इतने बड़े साधु महाराज जिनके दर्शन को लोग परेशान हैं और ये मुख काला करके आये हैं। राजा पूछता है, महाराज! हमसे कौन सा अपराध हो गया जिससे आप

अपना मुंह काला करके आये हैं? तो साधु महाराज बोले कि हमें तुम्हारे राग और प्रेममें आज फंसना पड़ा, काला मुंह तो हमारा होता ही। अरे हम लोग जंगलके रहने वाले, एकान्तस्थानमें आनन्द लूटने वाले और आप सबके बीचमें आये तो परलोकमें मुंह तो काला करना ही पड़ता। इसलिए हमने पहिलेसे ही अपना मुंह काला कर लिया। यही सर्वसमागमोंकी बात है। जो समागम मिले हैं उन सबमें रोना पड़ेगा, रोनेसे कोई छूटेगा नहीं।

यथार्थतासे मुख मोड़ने के क्लेश भैया! जो कुछ भी मिला है वह किसी दिन तो छूटेगा ही। चाहे अभी छूटे, चाहे कुछ दिन बादमें। चाहे बुढ़िया पहिले मरे, चाहे बूढ़ा पहिले मरे। सबको यह तो खबर है ही कि बूढ़े होने पर तो मरना ही पड़ता है। मर गये तो क्या हुआ? बूढ़ा मर गया तो बुढ़िया यह कहेगी कि वह हमारे कैसे प्यारे थे और बुढ़िया पहिले मर गयी तो बूढ़ा यह कहता है कि वह बुढ़िया हमारी कितनी सेवा करती थी, हाय अब यह कैसे मिलेगी। अरे जो भी समागम मिले हैं वे सब नष्ट तो होंगे ही। इस धन सम्पदाका नाम चंचला है। विशेषण नहीं, चंचला उसका नाम है, जो चंचल हो, चपला हो, वियोग तो उसका होगा ही। साराका सारा भी इकट्ठा करके रक्खा रहा तो अन्तमें मरेगा तो वियोग होगा। जो समागम मिला है इसका फल अन्तमें रोना है, इतनी बात दृढ़ता पूर्वक निर्णय करलो। अब उपाय इसका भला यह है कि हम आप पहिलेसे ही मान लें ऐसी बात कि सर्व समागम भिन्न हैं, परवस्तु हैं, हमारे रखने से रहते नहीं। जब तक रहते हैं तब तक भी हमारे कष्टके यही कारण हैं, उसका विचार करें, चिंता करें, शोक करें तो उससे क्या लाभ?

यथार्थ माननका प्रसाद देखो भैया! अपने आत्माका स्वरूप। इसका ज्ञान और आनन्द ही इसके स्वरूपमें भरा हुआ है, क्यों अपने इस ज्ञानानन्द स्वरूपको नहीं निहारता? अरे चंद दिनोंमें ही ये सर्व परिवारके लोग गैर हो जायेंगे। कुछ ध्यान तो लावो। जो 10-५ वर्षके बादमें गैर हो जायेंगे उन्हें अभीसे गैर नहीं मान सकते। अरे श्रद्धा तो सही बनावो। इसमें क्या बिगाड़ है? कभी सुयोगवश ऐसा भी हो जाय कि पास ही के घरमें अपने घरका कोई मरण करके पैदा हो जाये तो क्या उसे गैर न मानेंगे? अरे जो चीज कुछ दिनके बादमें गैर हो ही जायगी उसे अभीसे गैर मानलो। मुँहसे मत बोलो कि तुम सब गैर हो, हमारा तुमसे कुछ सम्बन्ध नहीं, ऐसा उनसे न बोलो, नहीं तो लड़ाई हो जायेगी। श्रद्धा में यह बात जरूर बनाये रहो कि ये सब गैर हैं। बस दृढ़तापूर्वक इतना मान लेने से ही सुखी हो जावोगे।

व्यर्थका बोझ अहो! भ्रम तथा मोहका संकट और बोझ ऐसा लगा हुआ है व्यर्थका जिससे निरन्तर संक्लेश होता जाता है। उपाय पूछते हैं दूसरों से, उपाय करते हैं नानाप्रकारके, पर किसी उपायमें सफल ही नहीं हो पाते। अरे उपाय तो अधीर होकर न बन पायेगा। एक शाश्वत निर्मल निज ज्ञायकस्वभावरूप अपनेको मान लो, अपनेको अकिञ्चन् समझ लो। खुदकी ही तो बात है, जो बात जैसी है, जिस स्वरूपमें है उसे वैसी माननेमें क्या कष्ट हो रहा है? अरे व्यर्थ की मोह ममता अपने चित्त में बसाये हुए हैं और दुःखी होते रहते हैं। जो मनमें आता है सो ही करते हैं। ठीक है, बसाये जावो मोह ममता। खूब दुःखी होते जावो, खूब रुलते जावो, कुछ बात नहीं है।

भोगोंकी असार वृत्ति यह मनुष्य शरीर सर्व तरफसे देखलो, भोग भोगनेके प्रकरणमें पूर्ण असार है। कल बड़े खुश होकर आपने दाल रोटी चावल चटनी अथवा मिठाई खायी थी, आज भी खूब खुश होकर वही चीजें खाई होंगी और कल भी खा जायेंगे, पर क्या उनसे तृष्णा मिटी? अरे तृष्णा तो ज्यों की त्यों ही बनी रही। उन खाई चीजों को आज भी खायेंगे तो नई मालूम होगी। ऐसा गरीबीका काम रोज-रोज करते जा रहे हैं। इन्द्रिय विषयोंके भोगोंकी आशा करना गरीबीका काम है। जो परवस्तुको अपनी मानता है, उससे अपना बड़प्पन समझता है वह तो गरीब है और जो परवस्तुको भिन्न निहार कर शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप मानता है वह अमीर है। लोग किसी क्षोभमें पड़कर थककर भी उससे अलग होना चाहते हैं, पर यह मोहकी भूल इतनी बुरी चीज हो रही है कि उन्हीं विकल्पोंसे, विषयोंसे थकते जा रहे हैं और मनमें यह नहीं आता कि मैं उन विकल्पोंसे भी निवृत्त होकर अपने शुद्धआनन्दका अनुभव तो करूँ। यह समागम रहना तो किसी के पास नहीं है, न रहेगा। पुराण पुरुषोंकी कथाएँ सुन लो। बड़े-बड़े सम्राट हो गए, किसी ने तो विवेक करके स्वयं अपने आप त्याग दिया और किसी ने न त्यागा तो मरकर त्यागना पड़ा और कोई ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने त्यागा भी नहीं है, उसीमें रहे हैं, पर श्रद्धामें अपना त्याग ही बनाए रहे। सही बात माननी क्यों कठिन लग रही है और गलत बातका मानना सही क्यों लग रहा है?

असार शरीरके सदुपयोगकी बुद्धिमानी इस शरीरको इस छंदमें सांठेकी उपमा दी है। जैसे कोई ऐसा गन्ना होता है जिसमें कीड़ा लग गया हो, सारा पोर के अन्दर लाल पड़ जाता है, तो उस सांठेमें रस तो है नहीं और अन्तमें जो दो चार पोर रहते हैं, वहां रसका स्वाद नहीं रहता है, पानी सा लगता है और नीचे जो जड़े हैं वे कठोर हैं, बीचकी जो पोर हैं उनमें छेद पड़ गए। तो अब यह सारा गन्ना मीठा नहीं है। सर्वप्रकारसे असार है, उसे कौन खावेगा? मगर कोई लोभी पुरुष, रसका लोलुपी पुरुष ऐसे असार सांठे को दांतोंसे छीलकर खानेका यत्न करे तो सांठा भी व्यर्थ गया, पेट भी न भरा, मुँह भी खराब हुआ, पीछे वेदना भी महसूस हुई। अरे हे बुद्धिमान् कृषक! तू उस सांठेकी पोर-पोर अलग करके जितने पोर हैं उतने टुकड़े बनाकर तू खेतमें बो दे तो उससे अनेक गुने मीठे सांठे उत्पन्न होंगे। यों कर लेगा तो तूने सांठे को पाना सफल बना लिया। ऐसे ही यह मनुष्य पर्याय है, इसके बीचमें अनेक आपत्तियां पायी जाती हैं। प्रत्येक मोही जन चाहे धनिक हों, चाहे नेता हो; प्रत्येक मोहीजन निरन्तर कल्पनाएँ बनाता है और दुःखी होता जाता है।

बेइलाज अज्ञानहठ अज्ञानी जन कल्पनामें ऐसी हठ करते हैं कि जिस हठको निभा देना बहुत कठिन लगता है। बतलावो कोई बच्चा कहे कि हमें हाथी लादो। सामने हाथी खड़ा कर दिया गया, फिर कहा कि मुझे तो हाथी खरीद दो। लो उसके बाड़ेमें हाथी खड़ा कर दिया गया। फिर वह कहे कि इस हाथीको मेरी जेबमें धर दो। अब बतलावो इस हठका क्या इलाज किया जाय? ऐसे ही हम आप अज्ञानी जन हठ किया करते हैं कि हमारा ऐसा हो जाय, विवाह हो जाय, बच्चे हो जायें, ठीक हैं। कोई मरे नहीं, सदा संगमें रहें। अरे इन सब हठोंको कौन पूरा करे? मरण तो अवश्य होगा। ये सर्वसमागम

तो तेरे रुलानेके ही कारण हैं। इस बातको अपने हृदयमें लिखकर रख लो। केवल एक स्वतंत्र अपने शुद्ध स्वरूपका उपयोगमें समागम हो जाये वह तो सारभूत बात है, बाकी तो सारा समागम रुलानेके लिए है। इष्ट समागम अधिक रुलायेगा, खोटा समागम कम मिला तो कुछ भगवान् की याद भी रखता रहेगा। दुःखी होगा तो वह भगवान् को याद भी रक्खेगा। अच्छे समागममें भगवान्की याद रखना भी कठिन है। बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है, पागलपन छा जाता है।

मूढ़ताकी होड़ यह मानव मूढ़ोंकी मूढ़तामें होड़ मचाये है। धन वैभव आदिके सर्वसमागमोंमें यह व्यामुग्ध होकर होड़ करता है। दो मित्र चले। रास्ते में एक बुढ़िया मिली। दोनों ने कहा, बुढ़िया मां रामराम। तो बुढ़िया ने आशीर्वाद दिया खुश रहो बेटा। उनमें से एक ने पूछा बुढ़िया मां, तुमने हम दोनोंमें से किसे आशीर्वाद दिया? तो बुढ़िया मां कहती है कि तुम दोनोंमें से जो अधिक बेवकूफ है उसे हमने आशीर्वाद दिया। तो दोनोंने बताया कि देखो बुढ़िया मां हम अधिक बेवकूफ हैं, सुनो। एक ने बताया कि हमारे दो स्त्री हैं। एक बार हम ऊपरसे नीचे उतरने लगे तो एक ने सीढ़ीसे टांग पकड़कर नीचे को खींचा, दूसरी ने ऊपर को खींचा, एक कहे ऊपर लेटो, दूसरी कहे नीचे लेटो तो इस खींचातानीमें मेरी टांग टूट गयी। सो देखो बुढ़िया मां मैं कितना बेवकूफ हूं? दूसरे ने बताया बुढ़िया मां, मेरे भी दो स्त्री हैं। एक बार रात को दोनोंके बीचमें मैं पड़ा था। मेरी दोनों भुजावों पर दोनों के सिर थे। एक चूहा चिरागमें से चलती हुई बत्ती लेकर भागा तो मेरी आंखमें वह पड़ गयी। अब मैंने सोचा कि अगर मैं दाहिना हाथ उठाकर बाती हटाऊँ तो दाहिनी ओर पड़ी हुई स्त्रीको कष्ट होगा और अगर बायां हाथ उठाता हूं तो बायें ओर पड़ी हुई स्त्रीको कष्ट होगा, सो मैंने हाथ भी नहीं उठाया, देखो इसीसे मेरी यह आंख फूट गयी। तो बुढ़िया मां! मैं कितना बेवकूफ हूं? बुढ़िया मां बोली बेटा, मैंने तुम दोनों को आशीर्वाद दिया, झगड़ा न करो। यहां भी हम आप मूढ़ोंकी होड़ मच रही है। हम सबसे अव्वल दर्जेके मोही हैं, हम सबसे अव्वल दर्जेके व्यामोही हैं, किसी परवस्तु की आशा में रात दिन उसका ही ध्यान बनाये रहना यह मूढ़ता ही तो है।

ज्ञानभावनाका कर्तव्य भैया! मूढ़ता न करो। इस शरीरको जप, तप और संयममें लगावो और अपने जीवनको सफल करो। जरा विभिन्न प्रकारके पेड़, कीट आदिक जीव दशाओं पर नजर तो करो और यह निर्णय करो कि आत्मसावधानी बिना ऐसे ऐसे ही पर्यायोंमें यह जीव भटकता चला आया है। आज आत्मसावधानी का विशेष अवसर मिला है। देहसे भिन्न, ज्ञानमात्र आत्मतत्वकी भावना करो। इस ज्ञानभावनाके प्रतापसे मोह तो हटेगा ही, निकट भविष्यमें सहज परम आनन्दका शाश्वत लाभ भी होगा।

॥ इति आत्मनुशासन प्रवचन तृतीय भाग सम्पूर्ण ॥